CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE(Sarayu)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vyamanit Heritage Foundation

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

1-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

४८४

ॐ

दण्डि स्वामी विमलानन्द सरस्वती

राजगुरु मठ.
शिवालाघाट
वाराणसी
२४.७.७६.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidic Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कठोपनिषद्-प्रवचन

प्रथम प्रवाह

[प्रथमाध्याय : १, २ वल्ली]

— प्रवक्ता —

अनन्तश्री

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलनकर्त्री

डॉ० श्रीमती उर्वशी जे० सूरती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक:

सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट

विपुल, २८/१६

बी० जी० खेर मार्ग

बम्बई—६

प्रथम संस्करण । ३०००

गुरुपूर्णिमा : २०३० वै० : १५.७.७३

मूल्य : नव रुपया मात्र

मुद्रक :

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

सी के० ३६/२० ढुण्ढिराज

वाराणसी—१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection, Vamanrao Ubale Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशकीय

पूज्य महाराजश्रीके उपनिषत्-प्रवचनोंके सन्दर्भमें माण्डूक्य-प्रवचन, मुण्डक-प्रवचन तथा ईशावास्य-प्रवचन तथा श्वेताश्वतर-प्रवचन अबतक प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें माण्डूक्य-प्रवचनका प्रथम संस्करण समाप्त भी हो गया है। उसी क्रममें उनका यह कठोपनिषत् प्रवचन (प्रथम भाग) पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नताका अनुभव हो रहा है। इसका द्वितीय भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

प्रस्तुत कठोपनिषत्-प्रवचन पाठकोंको सुलभ होनेका एकमात्र श्रेय डा० उर्वशी जे० सूरतीको है, जिन्होंने महाराजश्रीके प्रवचनके समय उपस्थित रहकर अपनी दृढ़ धारणा और कठोर श्रमसे प्रवचनकारके पूरे भावोंको लिपिबद्ध कर हमें प्रकाशनार्थं दिया। एतदर्थं हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

कठोपनिषत्का मूल पाठ और मूल मन्त्रके अर्थं हमने गीता-प्रेस, गोरखपुरके संस्करणसे लिये हैं, एतदर्थं हम उनके प्रति भी सादर कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

पुस्तकके सम्पादनमें हमें हमारे सहयोगी श्री गोविन्द नरहरि वैजापुरकरजी (एम. ए. न्याय-वेदान्त-साहित्याचार्य)का उल्लेख्य सहयोग प्राप्त हुआ। अनेक कठिनाइयोंके वश पुस्तकके प्रकाशनमें समयका अत्यन्त संकोच हो जानेसे जो भी कुछ कमी रह गयी हो, कृपालु पाठक तदर्थं क्षमा करेंगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Vedic Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय-सूची

प्रथमाध्याय : प्रथम वल्ली

विषय	पृष्ठ-संख्या
प्रस्तावना	१
१. मृत्युकी परिभाषा	१५
२. शान्ति-पाठ	१८
३. वाजश्रवाका परिचय, दानकी महिमा	२२
४. श्रद्धालु नचिकेता	२६
५. पिताके प्रति नचिकेताका निवेदन	२९
६. नचिकेताकी श्रेष्ठता	३३
७. निष्काम कर्म	३८
८. यमके द्वारपर उपवास	४२
९. मृत्युका स्वरूप और अतिथि-सत्कार	४७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri / Mumukshu Bhawan Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय	पृष्ठ-संख्या
१०. नचिकेताको यमराजका वरप्रदान	५४
११. नचिकेताका प्रथम वर : पितृ-परितोष	६०
१२. यमका प्रत्युत्तर	६८
१३. द्वितीय वर : स्वर्गसाधन अग्निविद्या	७०
१४. अग्निविद्या और श्रद्धा	७२
१५. मृत्युकी प्रतिज्ञा और नाचकेत अग्नि	८१
१६. यमराजका विशेष वर-प्रदान	८४
१७. ब्रह्मलोककी प्राप्ति और सिद्धियाँ	८६
१८. मलदोष और अन्तःकरण-शुद्धि	९६
१९. देवदुर्लभ आत्मज्ञान	११३
२०. आत्मवेत्ताकी विलक्षणता	१२०
२१. नचिकेताका वैराग्य	१३१
२२. अधिकारका निर्णय	१४३

द्वितीय वल्ली

१. श्रेय-प्रेय-विवेक	१५०
२. धीर पुरुषको श्रेय प्रिय है	१६४
३. सदसद्-विवेककी प्रक्रिया	१७९
४. ज्ञान और कर्म	१९३
५. अविद्याग्रस्तोंकी दुर्दशा	२०१
६. प्रमाद ही मृत्यु है	२०५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय	पृष्ठ-संख्या
७. ब्रह्मविद्याका ज्ञाता आश्चर्य है	२१३
८. उपदेष्टा वर नर हो	२३१
९. तर्कसे ब्रह्म-विद्याकी प्राप्ति नहीं होती	२५२
१०. कर्मफलकी अनित्यता	२७३
११. नचिकेताके त्यागकी प्रशंसा	२७८
१२. आत्मज्ञानका फल	२७९
१३. नचिकेता उत्तम अधिकारी	२९४
१४. मूल प्रश्न : सर्वातीत वस्तुविषयक	३०६
१५. ॐकारोपदेशसे साधन-निरूपण	३१४
१६. ॐ कारकी सर्वात्मकता	३३९
१७. ॐ अपरब्रह्म और परब्रह्मकी प्राप्तिका आलम्बन	३४४
१८. स्वरूप-निरूपण	३४७
१९. आत्माकी असंगता	३६०
२०. वीतशोक द्वारा आत्म-दर्शन	३६७
२१. सर्वरूप परमात्मा-स्वरूपका वर्णन	३७८
२२. पुरुषका हर्ष-शोकसे मुक्त हो जाना	३८७
२३. परमात्माकी अभिव्यक्तिके दो रूप	३९९
२४. आत्मवरण	४१०
२५. अधिकारी द्वारा परमात्म-प्राप्ति	४१८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रस्तावना

वेदका प्रयोजन और विभाग

वेदकी व्याख्या दो भागोंमें विभक्त की गयी है। पहले भागको 'विधि-भाग' कहते हैं। उसमें हमारी रहनीके विषयमें उपदेश है—'हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं ?'

प्रश्न होगा : 'इसके लिए उपदेशकी क्या आवश्यकता है ? मनुष्यको स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय तो आगमें हाथ डालने पर वह जलेगा और फिर आगे कभी आगमें हाथ नहीं डालेगा। दूध पीनेसे जीवन ठीक-ठीक चलेगा तो वह दूध पीता रहेगा। इसमें अनुशासनकी तो कोई आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती ?'

लेकिन गहराईसे देखने पर इसका रहस्य ध्यानमें आ जायगा। संसारमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसके अन्तरमें पहलेसे राग-द्वेष न रहते हों। वह रागवश पक्षपात करता है तो द्वेषवश निर्दयता। लेकिन मनुष्यको चाहिए कि वह राग-द्वेषके वशीभूत हो अपनी रहनी न बनाये, विधानके वशीभूत होकर ही बनाये। मर्यादा हो तो आप रास्ते पर ठीक-ठीक चलेंगे, नहीं तो दाहिनी ओर रास्ता खुला देखकर वहीं मोटर दौड़ायेंगे। एक-दो बार निकल जायँगे, पर कभी-न-कभी ऐसी आकस्मिक घटना घटेगी कि घायल हो जायँगे। इसलिए मनुष्यका जीवनमें अनुशिष्ट होकर रहना-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय	पृष्ठ संख्या
७. ब्रह्मविद्याका ज्ञाता आश्चर्य है	२१३
८. उपदेष्टा वर नर हो	२३१
९. तर्कसे ब्रह्म-विद्याकी प्राप्ति नहीं होती	२५२
१०. कर्मफलकी अनित्यता	२७३
११. नचिकेताके त्यागकी प्रशंसा	२७८
१२. आत्मज्ञानका फल	२७९
१३. नचिकेता उत्तम अधिकारी	२९४
१४. मूल प्रश्न : सर्वातीत वस्तुविषयक	३०६
१५. ॐकारोपदेशसे साधन-निरूपण	३१४
१६. ॐ कारकी सर्वात्मकता	३३९
१७. ॐ अपरब्रह्म और परब्रह्मकी प्राप्तिका आलम्बन	३४४
१८. स्वरूप-निरूपण	३४७
१९. आत्माकी असंगता	३६०
२०. वीतशोक द्वारा आत्म-दर्शन	३६७
२१. सर्वरूप परमात्मा-स्वरूपका वर्णन	३७८
२२. पुरुषका हर्ष-शोकसे मुक्त हो जाना	३८७
२३. परमात्माकी अभिव्यक्तिके दो रूप	३९९
२४. आत्मवरण	४१०
२५. अधिकारी द्वारा परमात्म-प्राप्ति	४१८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रस्तावना

वेदका प्रयोजन और विभाग

वेदकी व्याख्या दो भागोंमें विभक्त की गयी है। पहले भागको 'विधि-भाग' कहते हैं। उसमें हमारी रहनीके विषयमें उपदेश है—'हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं ?'

प्रश्न होगा : 'इसके लिए उपदेशकी क्या आवश्यकता है ? मनुष्यको स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय तो आगमें हाथ डालने पर वह जलेगा और फिर आगे कभी आगमें हाथ नहीं डालेगा। दूध पीनेसे जीवन ठीक-ठीक चलेगा तो वह दूध पीता रहेगा। इसमें अनुशासनकी तो कोई आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती ?'

लेकिन गहराईसे देखने पर इसका रहस्य ध्यानमें आ जायगा। संसारमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसके अन्तरमें पहलेसे राग-द्वेष न रहते हों। वह रागवश पक्षपात करता है तो द्वेषवश निर्दयता। लेकिन मनुष्यको चाहिए कि वह राग-द्वेषके वशीभूत हो अपनी रहनी न बनाये, विधानके वशीभूत होकर ही बनाये। मर्यादा हो तो आप रास्ते पर ठीक-ठीक चलेंगे, नहीं तो दाहिनी ओर रास्ता खुला देखकर वहीं मोटर दौड़ायेंगे। एक-दो बार निकल जायँगे, पर कभी-न-कभी ऐसी आकस्मिक घटना घटेगी कि घायल हो जायँगे। इसलिए मनुष्यका जीवनमें अनुशिष्ट होकर रहना-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चलना अत्यावश्यक ही है। कोई भी देश, जाति या सम्प्रदाय अनुशासनके बिना जीवन धारण नहीं कर सकता।

इस प्रकार हमारे कर्तव्य-अकर्तव्यका निर्णय करनेवाला वेदका यह विधिभाग शब्दराशि-प्रधान है। कानूनमें अक्षर ही देखे जाते हैं।

वेदका दूसरा भाग यथार्थ वस्तुका अनुसन्धान करनेके लिए है। लोक-व्यवहारमें यह बात देखनेमें आती है कि किसी भी पदार्थके बारेमें प्रथम इन्द्रियोंसे अनुभव कर फिर अपने चित्तमें एक संस्कार धारण करते हैं। डॉक्टर लोग अमुक रोग पर अमुक ओषधिका प्रयोगकर अनुसन्धान करते हैं कि अमुक रोगमें शरीरमें क्या-क्या कमी या अधिकता होती है और शरीर के भीतर अमुक रस-ओषधि रक्तमें मिलने पर कौन-कौन-सी कमी पूरी होगी और कौन-कौन-सी अधिकता घटेगी ? तभी वे उस रोग और उस दवाके बारेमें निर्णय करते हैं।

सृष्टिमें जितने पदार्थ हैं, वे इन्द्रिय, मन तथा बुद्धिसे ज्ञात होते हैं, मालूम पड़ते हैं। किन्तु जिसे ये मालूम पड़ते हैं, वह किसी भी इन्द्रिय, मन या बुद्धिसे मालूम नहीं पड़ता। आँख केवल रूप देखेगी, सुनेगी नहीं। कान केवल शब्द सुनेंगे, रूप नहीं देख सकते और न गंध सूँघ सकते हैं। ये इन्द्रियाँ संपूर्ण वस्तुका दर्शन नहीं करातीं, अधूरी वस्तुका दर्शन कराती हैं। चित्तमें जिन वस्तुओंका संस्कार हो, उन्हींको हम जान सकते हैं। बुद्धिसे हम अन्वय-व्यतिरेक द्वारा निश्चय कर निर्णय करते हैं कि 'कौन किससे पैदा हुआ और कौन किसमें लीन होता है ? इसके बिना भी यह चीज रहती है तो यह कारण है और इसके बिना यह चीज नहीं रहती तो कार्य है।' लेकिन यह कारण और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipramesh Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कार्य, यह पैदा होना और लीन होना भी बुद्धिके सामने है। बुद्धि भी स्वयं पैदा और लीन होती है। ऐसी अवस्थामें अपनी बुद्धि, अनुभूति या विचार द्वारा साक्षीका पता लगानेका प्रयत्न निष्फल हो जाता है।

साक्षीकी लम्बाई-चौड़ाई कितनी है? उसकी उम्र, आयु और वजन कितना है? असलमें वह क्या है? उसका स्वरूप कैसा है अद्वितीय या सद्वितीय? यह पता लगाने लगते हैं तो सारी इन्द्रियाँ जवाब दे देती हैं। स्वयं साक्षी भी अपनेको देखना चाहे तो बुद्धि-वृत्तिसे तादात्म्य कर इतना तो जानेगा : 'अहमस्मि' अर्थात् 'मैं हूँ।' किन्तु इस वृत्तिका भी वह साक्षी रहेगा। 'अहं नास्मि' ऐसा कभी नहीं जानेगा। जाग्रत्-अवस्थामें 'मैं हूँ' यह वृत्ति रहेगी; स्वप्नावस्थामें भी यह वृत्ति रह सकती है, परन्तु सुषुप्ति-अवस्थामें कभी नहीं रह सकती।

इस तरह साक्षीका स्वरूप 'मैं हूँ' और 'मैं नहीं हूँ' इन दोनों वृत्तियोंसे विलक्षण मालूम पड़ता है। वह अनन्त है या सान्त, विभु है या परिच्छिन्न, अद्वितीय है या सद्वितीय—यह बात किसी भी युक्तिसे स्वयं साक्षी भी नहीं जान सकता। साक्षी अपनी अनन्तताको दृश्य नहीं बना सकता, तो साक्षीकी अनन्तताका ज्ञान कैसे हो? इसीके लिए वेदान्तकी आवश्यकता पड़ती है।

जितने उपासनाके मार्ग हैं, वे सब वक्ताकी प्रधानतासे हैं। वक्ता कितनी ऊँची स्थिति पर है, किसने कहा और क्या अनुभव कर कहा? यह सब इसीसे ज्ञात होता है। मुहम्मद, ईसा, जरथुस्तने अमुक बात कही, उनका यह अनुभव था, यह श्रद्धा-प्रधान होनेके कारण उपासना है।

किन्तु वेदका कोई वक्ता नहीं, वर्ण्य वस्तुकी ही प्रधानता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है कि 'जो वर्णन किया गया, वह सत्य है।' किसने प्रवचन किया ? यह महत्त्वपूर्ण नहीं। वेदमें यदि **अग्निर्हिमस्य भेषजम्** कहा गया, तो वह वेदकी महिमा नहीं। वह तो लौकिक व्यवहार है। जिस बातको हम देखते-सुनते या दूसरी तरहसे जान पाते हैं, उसका वर्णन करनेमें वेदकी विशेषता नहीं। जिसे लोकमें अनुभव या इन्द्रिय-प्रमाणसे न जान सकें, जिसमें भ्रम-प्रमाद न हो, ठगनेकी इच्छा न हो, ऐसी वस्तुको ठीक-ठीक बता देना ही वेदकी विशेषता है।

वेद ब्रह्मको बताता है। ब्रह्म सब देश, सब काल और सब वस्तुओंमें रहकर भी उनसे परे है। भेदोंकी प्रतीति होनेपर भी वह भेदसे रहित है। उसमें 'मैं' और 'वह' का भेद भी नहीं है। ऐसी वस्तुको 'ब्रह्म' कहते हैं। किसीके कहनेसे ब्रह्म मान बैठोगे तो अपरोक्ष साक्षात्कार नहीं होगा। मन-बुद्धि-इन्द्रियोंका विषय न होनेके कारण उसे उनसे देख नहीं पायेंगे। यह अपरिच्छिन्न ब्रह्म वस्तु किसीका विषय नहीं होगी। विषय हो तो दो होंगे, जाननेवाला और वह। इसे मात्र वेदसे ही जाना जा सकता है। जितने तत्त्वज्ञ हैं, वे अपने गुरुका का नाम लेकर नहीं कहते कि 'यह वस्तु अमुकने कही है, इसलिए सच्ची है।' वे कहते हैं : 'यह वस्तु ऐसी है, इसलिए सच्ची है।' ब्रह्म हमारा या अन्तःकरणका विषय नहीं। इसलिए 'नेति-नेति' की प्रक्रियासे एकता सम्पन्न होती है। हमें ब्रह्म दिखाई पड़े, तो ब्रह्म दूसरा होगा और हम भी दूसरे। इसी कारण 'ब्रह्मात्मैक्य-बोध' कराने के लिए उपनिषद्की परम्परा चली आ रही है।

उपनिषद्का अर्थ है ब्रह्मविद्या। इस 'उपनिषद्' शब्दमें तीन पद हैं : उप+नि+सद्। प्रत्येक पद पर ध्यान देने पर इसका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Varanasi. Digitized by eGangotri. Funding: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहस्य ध्यानमें आ जाता है। इनमें 'उप=उपसङ्गम्य' का अर्थ है, विधिपूर्वक गुरुकी सेवामें उनके पास उपस्थित होकर।

उपनिषद् की व्याख्या

ट्यूशनके लिए मास्टर बुलाये जायँ तो बच्चे उन्हें धमकाते हैं। लेकिन वेदान्तका स्वाध्याय कोई इस तरह करना चाहे तो नहीं होगा। तदर्थ अभिमान त्यागकर गुरुके निकट जाना पड़ता है। 'जाना' ही अभिमान छोड़नेका लक्षण है। नहीं तो बड़प्पन-वाले कहेंगे : 'बुला लाओ गुरुजीको' और आनेपर उनसे कहेंगे, 'बैठो, करो वेदान्तका उपदेश !' वेदान्त-स्वाध्यायके लिए यह क्रम कदापि मान्य नहीं।

एकबार श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर किसी सन्तके पास गये। वहाँ ब्रह्म-चर्चा हुई। रविबाबू उनसे बड़े प्रभावित हुए। वे महात्मासे बोले : 'आपके पास इतना बड़ा ज्ञान है जो सृष्टिमें कहीं शायद ही हो। तब आप इसका प्रचार क्यों नहीं करते ?' महात्माने उत्तर दिया : 'देखो भाई, प्यासा कुँएके पास जाता है। जिसे ज्ञानकी प्यास होगी, वह हमारे पास आयेगा।' रविबाबू पर इसका इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि वे बार-बार उस संतके पास जाते और ब्रह्म-विद्या प्राप्त करते।

भगवती श्रुतिमाता भी यही कहती है :

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

अर्थात् 'ब्रह्मके विविक्त ज्ञानके निमित्त हाथमें समिधा या कुश आदि लेकर (खाली हाथ नहीं) श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके निकट पहुँचे।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajpayee Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'नि' यानी निष्कृष्य (सार-सार)। शंकराचार्य कहते हैं : 'नि' अर्थात् 'निश्चयेन शीलयन्ति' इन्द्रिय-मन-बुद्धि द्वारा ग्राह्य, साक्षी-भास्य, सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत् और पंचकोशोंके जितने घट-पटादि-विषयक ज्ञान हैं, उन सबको निचोड़कर (उपसद्) गुरुके चरणोंमें बैठकर उसमें जो एक-रस वस्तु होती है, उसमें 'सद्' यानी 'सदनम्, अवस्थानम्'—अर्थात् अभेदरूपसे अवस्थित होना। यह जानना कि 'यह मेरा स्वरूप है' यही बात उपनिषद् बताती है।

'सद् = सदनम्'। सत् अर्थात् ज्ञानम्' सद्लृविशरणगत्य-वसादनेषु। सद् यानी विकीर्ण कर देना, उजाड़ देना, हिंसा, गति।

गुरुके चरणोंमें बैठकर और सम्पूर्ण दृश्य पदार्थ, ज्ञाता-ज्ञेय जितना भासता है, जितनी भी त्रिपुटी है, उसे निचोड़कर उसमें जो एक-रस ज्ञानस्वरूप आत्मा है, वह यह आत्मा है, यह अद्वितीय है—यह बात उपनिषद् बताती है। अन्य सभी ज्ञान तो इन्द्रियोंसे हो जाते हैं। लेकिन जो इन्द्रियोंसे परोक्ष होता है, उसे बतानेके लिए शब्दकी आवश्यकता पड़ती है। कुछ चीजें सूर्य-चन्द्रके प्रकाशमें मालूम पड़ जाती हैं, तो कुछ वाणीसे बोलकर। परोक्षका ज्ञान तो मात्र शब्दसे होता है; लेकिन अपरोक्षके ज्ञानके लिए भी क्या शब्दकी आवश्यकता पड़ती है ?

आँखसे नाककी नोक दीख जाती है, नाकसे गंध मालूम पड़ती है। हमने अपने मन-इन्द्रियोंके सहयोगसे जान लिया कि इसका नाम नाक है। क्या इस तरह आत्माको जान सकेंगे ? नहीं। जहाँ भ्रान्ति होती है—जहाँ वस्तु तो साक्षात् अपरोक्ष हो, पर मालूम न पड़ती हो—वहाँ शब्दसे साक्षात् अपरोक्ष हो जाता है। कोई मनुष्य हमारे सामने बैठा हो, पर उसका नाम न मालूम हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vanamali Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो किसीके बता देने पर कि 'इसका नाम यह है' मालूम हो जाता है। दस आदमियोंमें-से एक आदमीको गिननेमें भूल हुई तो बता दिया कि 'दसवाँ तू है' तो उसको ज्ञान हो गया। इसी प्रकार सबको गिननेवाला दशम पुरुष जो आत्मा है, वह ब्रह्म है, अद्वितीय है, यह बतानेके लिए ही 'उपनिषद्' है।

प्रश्न होगा: 'उपनिषद्-द्वारा अपना सच्चा स्वरूप जाननेसे हमें क्या लाभ ?' यदि किसी सच्चे साधुको कोई भोग देने लगे तो वह कहेगा: 'हम साधु होकर यह भोग स्वीकार नहीं कर सकते।' सच्चे ब्राह्मणसे कोई कहे: 'आप सन्ध्यावन्दन मत करो, ताश ही खेलते रहो' तो वह कहेगा: 'मैं ब्राह्मण होकर सन्ध्यावन्दनके समयपर ताश खेलूँ? नहीं, मैं तो सन्ध्यावन्दन ही करूँगा।' अपनेको 'सिपाही' जाननेका फल चौराहे पर ड्यूटी करना है। अपनेको कर्ता जाननेपर यह ज्ञान-फल निकलेगा कि हमें पाप नहीं, पुण्य करना चाहिए।' इसके विपरीत अपनेको भोक्ता जानने पर तो यह फल निकलेगा कि 'हमें दुःख नहीं, सुख मिलना चाहिए।' यदि आप अपनेको द्रष्टा जानेंगे तो राग-द्वेषकी निवृत्ति हो जायगी। और यदि अपनेको ब्रह्म जान लें तो सारे भेद-भ्रम ही मिट जायँगे।

सारे भेद-भ्रम मिट जाने पर साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता, परस्पर संघर्षकी सृष्टि करनेवाली राष्ट्रीयता आदिका व्यामोह, कम्यूनिज्म, सोशलिज्म जैसे वाद—जिनके कारण आयेदिन लड़ाइयाँ होती हैं, जिन भेदभावोंके कारण द्वन्द्वकी सृष्टि होती है वे सब अनर्थ—अपने आप दूर हो जाते हैं। अपनेको अद्वितीय ब्रह्म जान लेने पर एक ब्रह्माण्डके निवासी नहीं, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके निवासी, सम्पूर्ण मायाकी सृष्टि ही अपना स्वरूप सिद्ध हो जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijinath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। इसमें न कहीं अहंकार है, न स्पर्धा और न राग-द्वेष। ऐसा जीवन्मुक्त, शान्त जीवन व्यतीत करने, सम्पूर्ण कलहोंसे विमुक्ति पाने और पापों-दुःखोंसे मुक्त होनेके लिए यह जानना आवश्यक है कि 'मैं कौन हूँ ?' इसके बिना घेरेमें, भ्रान्तिमें भटकते रहेंगे !

यह कोई साधारण ज्ञान नहीं। यह फूल, इत्र या भोजनका ज्ञान नहीं। लोग अपनी नाकके लिए खास तरहका इत्र, जीभके लिए खास तरहका भोजन बना लेते हैं, यह भी एक प्रकारका ज्ञान ही है। तरह-तरहकी रूपछटा—फैशन आँखोंको भोग देनेके लिए एक प्रकारकी रसोई है। कठोर-मुलायम स्पर्श त्वचाकी और तरह-तरहके आलाप—गांधार, भैरवी आदि राग-रागिनियाँ कानकी रसोई हैं। यह सब दूसरेकी तृप्तिके लिए होता है। हम दूसरोंके भोगके लिए अपने शरीरको परोसते हैं कि 'मैं कितना बढ़िया हूँ, तुम मुझे देखकर तृप्त हो जाओ।' यह सारी भोगकी लीला, मोहकी महिमा, लोभका लालच, क्रोधकी करतूत और कामकी क्रीड़ा है। यदि अपने आपको जानो तो हृदयमें शान्ति ही शान्ति रहेगी। ऐसी शान्ति, जो मनुष्यकी सरल रहनीमें बाधा नहीं डालती। कपट-माया-छलकी रहनी तो बाधा डालनेवाली है। वेदान्त-ज्ञानके बादकी रहनी सरल, सहज और निष्कपट होती है। तब किसीके प्रति हृदयमें अन्याय या विद्वेषकी भावना नहीं रहती। शान्ति ही शान्ति रहती है।

उपनिषद् अर्थात् बिलकुल पास जाकर नितान्त अज्ञानको दूर करनेवाली ब्रह्मविद्या। यह चीज पोथीमें नहीं रहती। अक्षर चाहे लाल-काले-हरे हों, लिपि और भाषा चाहे लैटिन, बंगला, नागरी या तमिल हो, आत्मविषया विद्या हृदयमें होगी, ग्रन्थमें नहीं। जिसकी विद्या ग्रन्थमें रहती है, वह समय पर काम नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijinath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देती। क्या वह समझदारी है ? नहीं। समझदारीको धारण करनेके लिए बाहर-भीतर एक-सा ज्ञान चाहिए। बाहरकी पुस्तक भीतरकी विद्याको जगानेमें निमित्त है। इस शक्तिके कारण इस ग्रन्थको भी उपनिषद् कहा गया। वास्तवमें यह ग्रन्थ हमारे हृदयमें है।

ज्ञानप्राप्ति ही मुक्ति

'साधन-सम्पन्न होकर ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लो कि 'ब्रह्मविद्या प्राप्त हो और अविद्याकी निवृत्ति हो जाय।' साधनदशामें ब्रह्मविद्या साधन है, अविद्या-निवृत्ति साध्य और जन्म-मरणरूप संसारकी निवृत्ति फल है। ये तीनों अविद्या-दशामें कल्पित हैं। परब्रह्म परमात्माकी दृष्टिसे स्वरूपका ज्ञान हो जाने पर तो कुछ भी नहीं करना है, क्योंकि अविद्या पहले थी ही नहीं। जो वस्तु ज्ञानसे प्राप्त होती है, वह पहलेसे मिली होती है। जो वस्तु अविद्यासे प्राप्त है, वह तो पहलेसे ही अनमिली होती है। कोई वस्तु खो जाय तो दिया जलाकर प्रकाश करने पर मिल जाती है। पहचान न होनेके कारण ही अनमिली रहती है। ज्ञान या अज्ञाननिवृत्तिसे परमात्मकी प्राप्तिका अर्थ है: 'परमात्मा पहलेसे मिला हुआ है।' नहीं तो वह परमात्मा ही नहीं। वह अपना स्वरूप है, नित्य-प्राप्त है, अप्राप्त बिलकुल नहीं। केवल अविद्यावश अप्राप्तिका भ्रम हो रहा है। इसे प्राप्त करो तो मृत्युसे छूट जाओगे। घरमें बैठकर पढ़नेसे हमारी बुद्धिमें समझका प्रवेश नहीं होता। पूर्ण स्वतंत्रता पानेके लिए वेदान्त-विद्या है। उसे प्राप्त कर लेने पर धर्म-कर्म भी हमें विवश कर स्वर्ग-नरक नहीं ले जायँगे! ईश्वर भी हमें कहीं जानेको विवश नहीं कर सकता। इतनी स्वतन्त्रता न हो तो वेदान्तसे क्या लाभ ? तत्त्वज्ञको कोई कर्म अपना फल देनेमें समर्थ नहीं हो सकता कि 'तुमने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijaymeet Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह काम किया है तो तुम्हें उसका यह फल भोगना पड़ेगा।' वेद भी उसे आज्ञा नहीं कर सकते कि 'तुम्हें यह कार्य करना पड़ेगा!' कर्ताके लिए वेदकी आज्ञा है, अकर्ताके लिए नहीं। ईश्वरके राज्यमें तुम तबतक अनुशासित हो, जबतक तुम माया-प्रकृतिको पकड़े हुए हो। ईश्वर अपने स्वरूपभूत चैतन्यका नहीं, उपाधिका नियन्ता है।

चोर चोरी करने गया तो उसने घरमें चढ़ने-उतरनेके लिए अपने गलेमें रस्सी डाली। गलेमें रस्सी होनेके कारण मालिकने उसे देखते ही पहचान लिया कि यह चोर है। उसे पकड़ लिया। रस्सी न होती तो न पकड़ा जाता। जीव अन्तःकरणकी उपाधिसे 'मैं-मेरा'की रस्सीसे बँधा है। ईश्वर कर्मानुसार उपाधिका नियन्त्रण करता है। जीवका उपाधिसे तादात्म्य होने पर ईश्वर अपना नियन्त्रण मानता है। आत्मा इनसे असंग होनेके कारण उसका कहीं कोई सम्बन्ध नहीं।

अशुद्ध अन्तःकरण : अशुद्ध अन्तःकरणका अर्थ है—इन्द्रियोंसे कोई वस्तु दीखे यह तो ठीक, पर उसे अपनी मान बैठना बुद्धिका भ्रम है।'यह हमेशा मेरी बनी रहे, अप्रिय हमारे पास न आये' ऐसी भावनासे मनमें राग-द्वेष आते हैं। इन्द्रियाँ दिखायें, वह अशुद्धि नहीं है, भ्रम और राग-द्वेष ही अशुद्धि हैं। इनके वशीभूत होकर मर्यादाके विपरीत आचरण करना भी अशुद्धि है।

(आचरणकी अशुद्धि कर्म-मल है, राग-द्वेष वासना-मल है, चित्तका चांचल्य विक्षेप है, बुद्धिका भ्रम आवरण है।) इन्द्रियोंसे देखना या बुद्धिसे सोचना-समझना बन्द नहीं करना है। इन्द्रियाँ एक चीजको पाँच बताती हैं। इन्द्रियकी बनायी चीजको सच्चा मान लेना बुद्धिकी कमजोरी है। चीजें पाँच हैं हो नहीं; उन्हें पाँच

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijay Vasant Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मान बैठना बुद्धिका भ्रम है। चश्मे या मोटरके काँच द्वारा बताये रंगको जानकर बुद्धिका भ्रम मिटाना पड़ता है।

पूर्वमीमांसाने पूर्व-अपूर्वको और सांख्यने अनुमानको तथा योगियोंने अभ्यासजन्य निरोधको महत्त्व दिया है। वेदान्तमें तत्त्व-रूप होनेके कारण निरोधरूप समाधिकी आवश्यकता नहीं है। 'नेति-नेति' द्वारा अन्यका निषेध कर अपनेको एक अद्वितीय ब्रह्म-रूप जाननेवाली वृत्तिको जगाना चाहिए।

बौद्धोंने कहा : 'यह संसार मिथ्या है, प्रपञ्च और जीव दोनों शून्य हैं।' वेदान्ती भी प्रपञ्च और जीव दोनोंको शून्य मानता है। फिर दोनोंमें अन्तर क्या? वेदान्ती संसार और जीव-भावको मिथ्या तथा ब्रह्मको परम सत्य, अधिष्ठान, स्वयंप्रकाश और अपना आत्मा जानता है। बौद्धोंका प्रपञ्च जीवाभाव, निरधिष्ठान है। वेदान्तमें प्रपञ्चका अधिष्ठान स्वयंप्रकाश अपना आत्मा है। इसलिए इन सबसे वेदान्तका मत विलक्षण है। इनमें-से किसीने दृश्य-द्रष्टाके विवेकसे ब्रह्मको नहीं जाना। जबतक स्वयं-प्रकाश ब्रह्मका ज्ञान हो, तबतक अविद्याकी निवृत्ति नहीं होगी, स्वरूपभूत ब्रह्मका ज्ञान न होगा।

अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा इसी परमात्माकी प्राप्तिमें उपयोगी होनेके कारण, देहातिरिक्त आत्माका वेदक होनेसे, अन्तःकरणकी शुद्धिमें उपयोगी और ब्रह्मविद्यामें सहायक होनेके कारण अग्नि-विद्याको मुख्य माना है। यह हृदयमें उत्पन्न होती है।

कठोपनिषद् : प्रतिपाद्य वस्तु

चारों वेद बुद्धके समय विद्यमान ही थे। यह कठोपनिषद् बुद्धसे बहुत पहलेकी और पुरानी है। मुख्य उपनिषदोंकी गणनामें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसका तीसरा स्थान है। कृष्ण यजुर्वेदकी यह एक खास संहिता है। यह तैत्तिरीय-आरण्यकमें एवं काठकारण्यकमें भी है। एक काठक ब्राह्मण, काठक आरण्यकके अन्तर्गत होनेके कारण यह 'काठकोपनिषद्' नामसे भी प्रसिद्ध है। 'कठ' ऋषि इसके प्रवचनकार हैं।

हमारे शरीरमें आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा-रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श ग्रहण करनेवाले अलग-अलग गोलक अपनी-अपनी मर्यादामें रहकर अपना काम करते हैं। हृदय भी एक गोलक है और उसे 'अनाहत-चक्र' कहते हैं। यह द्वादश-दल चक्र है। उसपर 'क' से 'ठ' तकके बारह अक्षरोंका विन्यास है।

इस उपनिषद्में हृदयमें विद्यमान परब्रह्मका निरूपण होनेके कारण इसे 'हृदयोपनिषद्' भी कहते हैं। प्रपञ्चकी सृष्टि और प्रलयकी कल्पना करनेवाली शक्ति 'माया' और इस मायाकी कल्पनाके आधाररूप हृदयदेशसे अवच्छिन्न ब्रह्मका इसमें निरूपण होनेके कारण इसे 'कठोपनिषद्' कहते हैं। हृदयदेशसे अविच्छिन्न ब्रह्मकी अद्वितीयता समझानेके लिए इस उपनिषद्की प्रवृत्ति हुई है।

'संसारकी मृत्यु' इस उपनिषद्का मूलतत्त्व है। प्रपञ्चके सम्बन्धमें चिन्तन करते-करते सबका निषेध हो जाता है। ब्रह्म-दृष्टिसे उस अवस्थाको मृत्यु, निषेध, महाप्रलय, नेति-दशा बोलेंगे। नाम-रूप वहाँ न रहनेके कारण स्वयंप्रकाश आत्मज्ञानका प्रकाश होता है।

नचिकेता यमके दरवाजे पर तीन दिन बैठता है। इसका अभिप्राय है कि जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति; विश्व-तैजस-प्राज्ञ; अधिभूत-अधिदेव-अध्यात्म; विराट्-हिरण्यगर्भ-मायाविशिष्ट ईश्वर तीनोंका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निषेध कर अपने स्वरूपमें बैठना। तीन दिनोंके उपवास का अर्थ है विषय-ग्रहण न करना, विषय-चिन्तनका सर्वथा परित्याग। उसे मरनेकी चिन्ता छूट गयी। 'परमात्माका ज्ञान प्राप्त करके ही उठेंगे' यह आग्रह कर वह मृत्युके दरवाजे पर बैठ गया। अन्तमें वह यमको भी प्रसन्न कर लेता है और परमात्म-ज्ञानकी प्राप्ति करता है।

कथा

यहाँ नाचिकेता नाम है। उनके पिता उद्दालकने नदीके तट पर जाकर नित्यकर्म किया। वे वृद्ध थे। भजनके उपरान्त वे अपना आसन, कुश और अग्निहोत्रकी सारी सामग्री वहीं भूलकर घर आये। उन्होंने अपने पुत्र नचिकेताको वह सामग्री जाकर ले आनेकी आज्ञा की। उसने नदीतट पर जाकर बहुत ढूँढा, पर वह नहीं मिली। सारी सामग्री नदीकी बाढ़में बह गयी थी। जब पुत्र खाली हाथ घर लौटा, तो थके, भूखे-प्यासे पिताको पुत्र पर क्रोध आ गया।

यह क्रोध शाश्वत वस्तु है। सृष्टिके प्रारम्भसे ही है। ब्रह्माजीके कथनानुसार उनके पुत्रोंने सृष्टि नहीं की तो ब्रह्माजीको उन पर भी क्रोध आया था और उनको उन्होंने शाप दिया था। इस ऋषिको भी अपने पुत्र पर क्रोध आया, तो उनके हृदयसे वात्सल्य और हितैषिताकी भावना निकल गयी और उसे शाप दे दिया : 'मर जा!' लेकिन किसीको ऐसा नहीं बोलना चाहिए। कभी-कभी बड़े-बूढ़ोंके मुँहसे जो बात निकल जाती है, वह सत्य हो जाती है।

अब पुत्रने सोचा : "हमारे पिताके मुँहसे निकल गया,

RajGuru Math, Shivalaya Suman Math Collection, Varanasi. Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'मर जा' तो अब जीवित रहकर क्या करेंगे? वह मूर्च्छित हो गया। वह मरकर यमराजके लोकमें गया। वहाँ यमने उसका स्वागत करते हुए कहा : "तू तो अभी आयु शेष रहते ही आ गया है। तेरे पिताने जान-बूझकर नहीं कहा था कि 'मर जा।' उन्होंने तो कहा : 'यमं पश्य!—जा तू यमराजका मुँह, यमपुरी देख आ!' वह तू देख चुका, अब लौट जा।"

नचिकेता : 'हम ऐसे नहीं लौटेंगे। हमें दिखाओ कि मरनेके बाद यहाँ मनुष्यकी क्या गति होती है? जिससे हमारे पिताजीको विश्वास हो जाय कि मैं यमपुरी हो आया हूँ। साथ ही हमें वह विद्या भी बताओ कि फिर मरनेका मौका न आये।'

यह कथा महाभारतके अनुशासनपर्वमें कई अध्यायोंमें विस्तार-से आयी है। तैत्तिरीयारण्यमें भी है। यह भी कृष्णयजुर्वेदका ही है। दोनों काठक होनेका आभास होनेके कारण परंपरा नष्ट होने लगी तो तैत्तिरीयारण्यकमें काठकारण्यक जोड़ दिया गया। इसमें भी यह कथा थोड़े परिवर्तनके साथ ज्यों-की-त्यों आयी है। कथाका वह परिवर्तित रूप आप आगे पायेंगे।

ग्रामे-ग्रामे काठकं कालापकं च उच्यते।

पहले साहित्य-कला, संगीतको भी 'काठक' कहा जाता था।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Funding IKS-MoE-Grant-2 Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'कठोपनिषद्' का प्रारम्भ

१. मृत्युकी परिभाषा

भगवान्ने सबसे पहले किसे ज्ञान दिया ? गीता कहती है :

> इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
> विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

श्री शंकराचार्यने इस उपनिषद्के भाष्यका प्रारम्भ ही विलक्षण ढंगसे किया है : "ॐ" उच्चारणपूर्वक हम भगवान् वैवस्वत और नचिकेताको नमस्कार करते हैं ।" वे मृत्युदेव यम और ब्रह्मविद्याके आचार्य नचिकेताको प्रणाम करते हैं । इसलिए कि मृत्युदेव दिव्यलोकके आचार्य हैं, तो नचिकेता मृत्युलोकके आचार्य ।

मृत्यु : अत्यन्त भौतिकवादी डॉक्टरोंके लिए मृत्यु अनुसन्धानका विषय है । इस पर वे लोग 'थीसिस' (शोध-निबन्ध) लिखनेके लिए वृन्दावन आते हैं और श्रवण-अध्ययन कर हमारे प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करते हैं कि 'यहाँ आये तो हमें यह मालूम हुआ ।' उन्हें उनकी भूमिका पर उतरकर मृत्युका अर्थ बताना पड़ता है : 'उन दिनों धरती पर वैवस्वत नामके एक विद्वान् रहते थे । उनके पास जाकर नचिकेताने यह विद्या पढ़ी ।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एकबार एक सज्जन वृन्दावनमें आकर श्री शंकराचार्यकी रीतिसे 'थीसिस' लिखते थे। बरसोंतक सत्संग कर उन्होंने थीसिस लिखी और युनिवर्सिटीमें अपने प्रोफेसरके पास ले गये। प्रोफेसरने कहा : 'तुमने जो बात लिखी है, उसे हम ठीक मानते हैं। किन्तु लिखना होगा मान्य नियमके अनुसार।'

'सृष्टि जड़से नहीं, चेतन ईश्वरसे पैदा हुई है' यह सर्वथा मौलिक तत्त्व है। यदि सृष्टि जड़से उत्पन्न हुई हो, तो हम अपने बापसे ज्यादा ज्ञानी होंगे। यदि चेतन ईश्वरसे उत्पन्न हुई तो हमारे गुरु हमसे ज्यादा ज्ञानी माने जायेंगे। जड़वादमें विकास है, तो सर्वज्ञवाद-चैतन्यवादमें विकृति।

उस प्रोफेसरने बताया : 'वैज्ञानिककी मान्यताके अनुसार यदि तुम सृष्टिको जड़से उत्पन्न लिखोगे, तो तुम्हारी थीसिस स्वीकृत होगी। तब लोग बहुत देवता मानते थे। विकासवादको तुम्हें स्वीकार करना ही होगा।'

वे सज्जन बोले : 'हम ऐसा मानते ही नहीं तो लिखें कैसे ?'

प्रोफेसर : 'अमुक-अमुक वैज्ञानिकने ऐसा मत स्थापित किया है। वैदिक रीतिसे ऐसा मत है। इस तरह मत-मतान्तरके रूपमें उल्लेख करोगे तो चलेगा।'

नचिकेताकी कथा : भौतिक पक्ष : 'नचिकेता नामक एक जिज्ञासु था। वैवस्वत यम गुरु थे। वह गुरुजीके घर गया तो गुरुजी मिले नहीं, कहीं बाहर चले गये थे। उनके घरवालोंने उसे खाने-पीनेको भी नहीं पूछा। गुरुजीने आने पर जब यह जाना कि 'नचिकेता तीन दिनोंसे भूखा-प्यासा दरवाजे पर बैठा है,' तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection, Vanamali Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आध्यात्मिक पत्त : (योगवासिष्ठकी रीतिसे जब मनुष्यको संसारसे वैराग्य होता है, महाप्रलय होता है, तो सृष्टिमें कुछ बाकी नहीं रहता। जवान बूढ़ा होता है; गरीब राजा और राजा गरीब हो जाता है। काले बाल सफेद हो जाते हैं, दाँत टूट जाते हैं। इस परिवर्तनसे दुनियामें कोई अछूता नहीं रह सकता। इसे ही 'मृत्यु' कहते हैं।)

RajGuru Math, Shivalaya, Gurudwara, Vijaya Mahadev Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२. शान्ति-पाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(१) अवतु : हम-तुम गुरु-शिष्य, वक्ता-श्रोता दोनों जो यहाँ बैठे और अध्ययन-प्रवचन कर रहे हैं, साथ-साथ दोनोंकी काम-क्रोधसे रक्षा हो।

(२) भुनक्तु : हम दोनोंके हृदयमें शान्ति, दान्ति आदि सद्गुण आयें। हम उनका पालन करें।

यहाँ 'रक्षा' और 'पालन' दो बातें कही गयीं। जैसे : आमके पौधेको पशु चरने आये तो उसे डण्डेसे भगा देना रक्षा है और खाद-सिंचाई आदि उसका पालन है। मनमें संशय, काम या क्रोध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vyarnamrit Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आये तो उनका निवारण करना रक्षा है और आवश्यक पोषण पाकर उन्नति करना, आगे बढ़ना, मनमें संशयकी जगह ज्ञान भर देना, काम-क्रोधकी जगह शम-दम, उपरति-तितिक्षा, श्रद्धा-समाधान-संपत्ति भर देना, इष्टकी प्राप्ति करना पालन है। केवल रक्षासे काम नहीं चलता, पालन भी होना चाहिए। जैसे : दोषापनयन और गुणाधान संस्कारों द्वारा शरीरका मैल मिटाया जाता और उसे स्निग्ध भी बनाया जाता है।

(३) सह वीर्यं करवावहै : गुरु शिष्य दोनों ज्ञानके आदान-प्रदानमें ही अपनी शक्तिका प्रयोग करें, एक दिशामें दोनोंकी बुद्धि चले। बालकी खाल न निकालकर वस्तुको समझने-समझानेमें दोनों एक साथ प्रवृत्त हों। वक्ता ब्रह्मका प्रतिपादन करे और श्रोता उसमें-से संसार निकाले, ऐसा न हो। गुरु अनुकूल सोचे और शिष्य प्रतिकूल समझे, यह भी न हो।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

अर्थात् कदम-से-कदम मिलाकर चलो, एकस्वरसे बोलो, एक लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए मिल-जुलकर विचार करो। क्योंकि पहले भी जब-जब देवता विजयी हुए, शक्तिशाली हुए, तो मिलकर काम करनेसे विजयी हुए। विघटन नहीं, संघटनकी शक्तिको ही प्रबल करना चाहिए। दोनों अपनी बुद्धि और वाणीको ब्रह्मप्राप्तिके लिए लगायें।

(४) तेजस्वी नावधीतमस्तु (नौ आवयोः अधीतम् तेजस्वि अस्तु) : हम दोनोंका अध्ययन अविद्याकी निवृत्तिमें समर्थ हो; कहीं अँधेरेमें न चला जाय। कहीं असावधानीमें–तमोगुणमें खो न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Jalgaon Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाय। हृदयमें ऐसा प्रकाश हो जाय कि संशय-विपर्यय, अज्ञान दूर हो जायँ।

(५) मा विद्विषावहै : हम आपसमें विद्वेष न करें, हमारे हृदयमें राग-द्वेष न हो। विद्वेष जलन है। द्वेषको सबसे बड़ी विशेषता यह है कि द्वेष करनेवाला समझ नहीं पाता। जब कोई रोज-रोज रेलके इञ्जनमें काम करने लगता है तो अभ्यासवश गरमी लगते-लगते उसे वह नाचोज़-सी हो जाती है, मालूम नहीं पड़ती। विद्वेष आग है। आगका स्वभाव है कि जिस लकड़ीसे वह पैदा होती है, प्रथम उसीको जलाती है। उस पर रखी बटलोई, पानी या पड़ोसीका घर बादमें जलाती है। जिसके हृदयमें द्वेष आता है, वह प्रथम जलता है। तुम्हें किसीके लिए हृदयमें आग लगती ही तो पहले अपनी रक्षा करना, दूसरेकी नहीं। अपने कपड़े-सिरको आगसे बचाना। श्रोता-वक्ताके बीच आग जलती रहे तो वेदका प्रवचन समझमें नहीं आ सकता। इसलिए हम कभी द्वेष न करें।

व्यापारी, पंथाई, जातिवादी, प्रान्तवादी, राष्ट्रवादी एक-दूसरेसे द्वेष करते हैं। मानवतावादी भी मानव-प्राणीकी रक्षाके लिए, दूसरे प्राणियों—चूहों, बन्दरों और मेंढकोंको दुश्मन बनाता है। एक ब्रह्मवादी न राष्ट्रवादी है, न मानववादी, न ब्रह्माण्ड-वादी है। वह न प्रान्तवादी है, न जातिवादी, न सम्प्रदाय-गुट-वादी और न व्यक्तिवादी ही। जो सबके हृदयमें एकसरीखा रहता है, उसे पाना ब्रह्मज्ञान है। इसलिए साधन द्वारा हृदयको स्वच्छ करना चाहिए। परमार्थके मार्ग पर चलना हो तो पहले अपने हृदयको सुरक्षित रखना पड़ेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रक्षत रक्षत कोषानामपि कोषं हृदयम्।
यस्मिन् सुरक्षिते सर्वं सुरक्षितं स्यात्॥

'सब खजानोंका खजाना तुम्हारा हृदय है, दिल है। सब पूँजियोंकी पूँजी तुम्हारा हृदय है। यदि हृदय सुरक्षित है तो फिर वहाँ धर्म, ज्ञान, भक्ति भी आ जायँगे। लेकिन यदि हृदय ही जल-गया तो ये कहाँ आयेंगे? बाहरका शरीर आगसे जलता है, तो भीतरका द्वेषसे मुक्त रखना चाहिए। इसीलिए उपनिषद्के प्रारम्भ-में शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः तीन बार आता है।

शान्तिः! स्थूलशरीर शान्त हो। श्रवण-मनन करते समय बार-बार आसन न बदला करें, आँखें स्थिर हों, पड़ोसीसे बात-चीत और इशारे न हों। ब्रह्मविद्याके ग्रहणके लिए स्थूलशरीर शान्त हो।

शान्तिः!! सूक्ष्म-शरीर, मन पड़ोसीके घर या दूकानमें न भेजें, तत्त्वश्रवण-मननमें एकाग्र हो।

शान्तिः!!! कारण-शरीर अज्ञान है। शरीर और मन अशान्त हों, अज्ञान-निवारणकी इच्छा न हो तो यह प्रवचन किस काम आवेगा?

इसी एक मन्त्रमें काम-क्रोधादिकी निवृत्ति, शमादि सद्-गुणोंकी प्राप्ति, एक साथ ब्रह्मविद्याका श्रवण-मनन-निदिध्यासनका प्रयत्न, ब्रह्मविद्यासे अविद्याकी निवृत्ति और राग-द्वेषरहित जीव-न्मुक्ति, ये पाँच बातें है।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vasant Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

३. वाजश्रवाका परिचय, दानकी महिमा

ॐ उशन्ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥ १ ॥

वाजश्रवाके पुत्रने यज्ञफलकी इच्छासे अपना सारा धन दान कर दिया । उसके नचिकेता नामका एक पुत्र था ।

वाजश्रवस—वाजश्रवाका पुत्र=वाजश्रवसः । 'वाज' यानी अन्न और 'श्रवस्' यानी यश, जिसने गरीबोंको अन्न दे-देकर खूब यश कमाया, वह हुआ 'वाजश्रवा' । वास्तवमें अन्न केवल गरीबोंको ही देनेकी चीज नहीं । यह तो लोकमें भ्रान्ति फैल गयी है, वृत्ति बाह्य हो गयो है । जो लोग विद्याजीवो हैं, उनके जीवनका निर्वाह करना भी आवश्यक है । केवल भिखमँगे, गरीबको अन्न दिया तो मात्र जीनेका साधन दिया ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो अपने धर्म, संस्कृति, प्राचीन विद्याको, लोगोंके चित्तमें आनेवाले काम-क्रोधादिको निवृत्त करनेकी विद्या बताते, और उस विद्याको सुरक्षित रखते हैं, उन्हें अन्न देना क्या हमारा कर्तव्य नहीं? सैनिक देशकी सीमाके रक्षणमें अपना शरीर अर्पित करता है, जो विद्वान् अपने जीवनको प्राचीन विद्याके रक्षणमें अर्पित करता है, उसकी आजीविकाका निर्वाह भी हमारा कर्तव्य है। साधु-ब्राह्मणको दान देनेकी प्रथा इसी आधारपर चल पड़ी है।

क्या चिन्तनप्रधान बौद्धिक जीवन, जीवन नहीं है? संग्रह करना, कमाई करना, बच्चा पैदा करना ही सब कुछ है? क्या त्याग-वैराग्यका कोई महत्त्व नहीं? जो संसारमें दूसरोंको भी कामना, चोरी, लोभ, बेईमानीसे बचनेकी प्रेरणा देते हैं, निश्चय ही उनके जीवनका निर्वाह करना हमारा कर्तव्य है। जो अन्न-वस्त्रको एकसे दूसरी जगह पहुँचाते हैं, क्या उन्हें खानेका अधिकार नहीं?

वाजश्रवाने अन्न देकर यश कमाया। वे खानदानसे दानी थे। अपना सर्वस्व दान कर दिया। इसलिए वह चमक गया।

उशन्ह : सकाम भावसे दान दिया। पहले यह पद्धति थी कि अपना सब धन दे दिया जाय अर्थात् माँ-बाप, बेटे आदिके हिस्सेका धन अलग कर अपने हिस्सेका सारा धन दानमें दिया जाय।

दान : लोग दानमें अक्सर गड़बड़ी करते हैं। चार-पाँच वर्षसे एक आदमी हमारे लिए फल लाता है, पर वह हमारे काममें न आ सके ऐसा—सबसे सस्ता, सड़ा, दागीदार होता है। अपने पुण्य और धर्मलाभके लिए वह हमारे पास कभी-कभी

RajGuru Math, Shivalaya, Jamnagar Collection, Vijaymant Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहुँचा देता है। हम सुपारी खरीदने जायँ तो दुकानदार पूछता है 'देवताके लिए चाहिए या घरमें खानेके लिए, हम देवताके लिए माँगें, तो वह बतायेगा कि 'सस्ती सुपारी ले जाओ।' सड़ी सुपारी देवताको और बढ़िया सुपारी आदमीको। यह मनुष्यके मनमें अविवेक है—"अपनेको 'धर्मात्मा' कहलानेका खयाल और दूसरेको या देवताको देनेमें कंजूसी।" इस निम्नकोटिकी वृत्तिसे धर्म कभी उत्पन्न नहीं होता।

'सर्ववेदसं ददौ : वाजश्रवाने अपना सारा धन दे दिया। उसने बढ़िया-बढ़िया वस्तुएँ अपने माँ-बाप और बेटेको दे दीं। अपने हिस्सेमें खराब रख ली और उनका दान किया। मनमें परिवारके प्रति राग होनेके कारण उसने ऐसा पक्षपात किया।

'तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस : उसका एक बेटा था। उसका नाम था नचिकेता। उसने सर्वस्वदान वाला यह यश देखा। वेदोंके मूलमन्त्रमें 'सर्वमेध' और 'विश्वजित्' शब्दोंका प्रयोग है। इसका अर्थ है सारी दुनियाको जीतनेवाला यश। तुम अपना सर्वस्व दे दो, तो विश्वविजयी होओगे। दुनियाको जीतने की यही पद्धति है। किसीको मारकर, दबाकर, लूटकर ले लिया, तो विश्वविजेता नहीं। आज भले तुमने किसीको जीत भी लिया हो, जब उसका बेटा प्रबल होगा, तो वह तुम्हें जीतेगा।

श्रीहर्षके पिताने कश्मीरी पंडितोंको जीत लिया तो कश्मीरी पंडितोंने श्रीहर्षके पिताको जीत लिया! तब श्रीहर्षने प्रतिज्ञा की, 'कश्मीरके एक-एक पंडितको हरायेंगे।' कोई उसे राजाके पास नहीं जाने देता। फिर उसने ऐसा चमत्कार दिखाया कि बड़ा सिद्ध हो गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह परंपरा तो हमेशा चलती रहेगी। यह संघर्ष सृष्टिमें कभी नहीं मिटेगा। विजय प्राप्त करनेका यह तरीका नहीं है। सत्य तो यह है कि अपनेको दे दिया जाय !

पहले 'सर्वमेध' यज्ञ किया जाता था। सर्वमेध यानी एक परमात्माके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं। केवल ज्ञान रहा, सब बाधित हो गया—'तुम प्रभु जीओ और मैं मर जाऊँ !' यह उत्तम है। यह न बने तो दूसरे नंबरकी बात है—कार्यको कारणमें लीन कर दो। घड़ा मिट्टीमें और जेवर सोनेमें लीन कर दो ! इस प्रक्रियासे भी अन्तमें परमात्माके सिवा कुछ नहीं रहेगा

संन्यासी, अवधूत और राजा लोग भी पहले सर्वमेध करते थे। श्रीरामचन्द्रने अपना सर्वस्व दान कर दिया था। धोतीके सिवा उनके पास और कुछ नहीं था। सीताजीने भी सर्वस्व दान कर दिया था। उनके शरीर पर सौभाग्यचिह्नके आभूषण और साड़ीके सिवा कुछ नहीं था। उनका सर्वस्वदान देखकर प्रजाने कहा—'हमारे राजा तो तुम्ही बनोगे। उन्हें फिर राजा बनाया गया।

ये वाजश्रवस् थे तो बड़े महात्मा, पर मनमें रागद्वेष था। लोग रसोइयेको भोजन-दक्षिणा देते हैं और मनमें उम्मीद करते हैं कि वह ठीक रसोई बनायेगा। मनमें स्वार्थ आने पर धर्म-भावना लुप्त हो जाती है। विस्तार और स्वजनार्पणसे भी धर्म-भावना शिथिल पड़ जाती है। वहाँ हृदयमें श्रद्धाका उदय नहीं होता। यही इन वाजश्रवस्के साथ हुआ।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vimarsh Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४. श्रद्धालु नचिकेता

संगति :

दानधर्मके रहस्यको सहजस्वभावसे जाननेवाला, स्पष्टवक्ता, सत्यप्रेमी, पितृभक्त नचिकेता अपने पिताके किये कर्ममें जो दोष था, उसके निवारणके प्रयत्नमें लगा। वह पिताके दानका श्रद्धापूर्वक विवेक करता है। यही बात आगेके दो मन्त्रोंमें कही जा रही है।

तँ ह कुमारँ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश-सोऽमन्यत ॥२॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥३॥

'कुमार' नचिकेता इतना छोटा बालक था कि माँ अभी उसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्भालती थी। होता और अन्य ऋत्विजोंको जब गौएँ दी जाने लगीं, तो नचिकेताके हृदयमें धर्मश्रद्धाका उदय हुआ।

श्रद्धा हृदयकी पवित्रताका लक्षण है। तर्क, संशय नहीं। संशयात्मा विनश्यति। श्रद्धा यानी सद्‌गुण-संपन्न हृदय। वस्त्रके बिना शरीर नंगा होता है तो श्रद्धाके बिना हृदय श्रद्धाके अभावमें मनुष्य जिसे जो चाहे बोल देता है। श्रद्धा 'हृदयमंदिरकी देवी' है। श्रद्धा होने पर मनुष्य किसीको अपनेसे श्रेष्ठ स्वीकार करता है। मनुष्यके जीवनमें गुरु, शास्त्र, सन्त और धर्मके प्रति श्रद्धा अवश्य होनी चाहिए।

वेदमें एक श्रद्धासूक्त है: **प्रातः श्रद्धां हवामहे।** अर्थात् "हे श्रद्धादेवी, आ जाओ, हमारे हृदयमें बस जाओ! हमें छोड़कर कहीं मत जाओ। हम प्रातःकाल श्रद्धाका आवाहन करते हैं।"

उस बालकके हृदयमें श्रद्धाका आवेश हो गया। वह पिता द्वारा दिये जाने वाले दानके बारेमें सोचने लगा—"जो गौएँ चल कर पानी पीने या घास चरने जानेमें समर्थ नहीं; जो दूध नहीं दे पातीं, जिनकी इन्द्रियाँ काम नहीं देतीं, ऐसी कमजोर गौओंकी दक्षिणा देनेसे मेरे पिताका क्या कल्याण होगा? ऐसी गौओंका दान करनेसे तो मेरे पिताजीको ऐसे लोकमें जाना पड़ेगा जहाँ उन्हें कोई सुख या आनन्द नहीं मिल सकता। दूसरेके उपभोगमें आ सके ऐसी चीज का ही दान देना चाहिए।"

'दानकी वस्तु अपने उपभोगसे भी श्रेष्ठ होनी चाहिए'—यह श्रद्धाका अभिप्राय है। हम जिसे दान दे रहे हैं, उसे अपनेसे बड़ा मानेंगे, तो श्रेष्ठ वस्तुका दान करेंगे और छोटा मानेंगे, तो गरीबको देते हैं, वैसे देंगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipanant Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कल्याण-गीताप्रेसमें मैं कई वर्ष रहा। हमारी बुद्धि बड़ी तेज थी। उन लोगोंके पास पहुँचनेके पहले भी हमारी निष्ठा तो वेदान्तकी थी। वर्षों तक निष्काम-कर्मयोगियोंके बीच रहने पर भी, उस पर भी असर न पड़ा। यह हमारी वेदान्तनिष्ठाकी शक्तिका लक्षण है। वृन्दावनमें रहे तो वहाँ स्त्री-पुरुषोंको सखा-सखी भाव से रहते देखा। उनका भी अपनी निष्ठा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वहाँ एक बात प्रायः देखनेको मिलती थी : सेठ श्री जयदयालजीको जब किसीको पाँच रुपये भी दान देना पड़ता तो पहले वे अपने मनमें गीताका यह श्लोक बोलते थे :

'देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।'

'मानो भगवान् ही आ गये' ऐसी भगवद्बुद्धिसे वे देते। किसीको दो रुपया देनेके लिए उसके जीवनके सारे इतिहासको अपने दिमागमें क्यों भरें? जितना जानते हैं उसीसे दिमाग खराब हो-रहा है तो जो नहीं जानते उससे अपना दिमाग भरना और दो रुपये भी देना? यह दो तरहकी वात है धर्मदान और भक्तिदान।

अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए दान दिया जाय तो हम न परमेश्वरको देते हैं, न गरीबको। 'आत्मानात्मविवेक कर अनात्म वस्तु आत्मामें तुच्छ है, है ही नहीं, मिथ्या है, इस दृष्टिसे परित्याग करना चाहिए। वेदान्त-ज्ञानमें जो परित्याग है, भक्तिज्ञानमें वह भगवान्‌की पूजा है। धर्मदानमें पात्रको दिया जाता है। कोई धर्मदानकी दृष्टिसे सर्वस्वदान करते समय अच्छी वस्तु बेटेको दे और खराब वस्तु ब्राह्मणको दे, तो श्रद्धाका अभाव होनेके कारण दानका फल नहीं मिलता। पिताको दान देते देखकर नचिकेताके चित्तमें श्रद्धायुक्त यह विवेक जागृत हुआ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

५. पिताके प्रति नचिकेताका निवेदन

संगति :

[अपने पिताके कल्याणके लिए नचिकेता श्रद्धापूर्वक दान देनेके लिए पितासे निवेदन करता है :]

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति ।
द्वितीयं तृतीयम् तँ होवाच—मृत्यवे त्वां ददामीति ॥४॥

नचिकेताके मनमें ऐसा विचार उठा कि 'सत्यकी रक्षा हो और पिताका कल्याण हो, ऐसा किया जाय।' सत्यका प्रेमी परमार्थमें भी सत्यका अनुसन्धान कर सकता है। जिसके व्यवहारमें असत्यका आश्रय है, स्त्री पाने या रुपया कमानेके लिए झूठ बोल लिया, इज्जत या कुर्सी के लिए झूठ बोल लिया, उसका काम तो धर्मसे नहीं बना, झूठसे बना। उसके चित्तमें असत्यके प्रति आदरबुद्धि और साधनबुद्धि है। उसके दुःखको मिटानेवाला और आनन्द देनेवाला, इष्टकी प्राप्ति करानेवाला असत्य है। उसकी परमार्थ-प्राप्तिकी इच्छा शिथिल होती है, क्योंकि वह परमार्थको मिथ्या समझता है।

परमाथ-सत्यकी प्राप्तिके लिए सच्ची चीजको पकड़नेवाली बुद्धि चाहिए, जिसके बिना दुःख नहीं मिटता। नचिकेता सत्यका ऐसा पक्षपाती था कि स्वयं पिता भी असत्य करें तो उन्हें भी सुधारनेके लिए तत्पर हो जाता है। इसीलिए उसे 'नचिकेता' कहते हैं। नचिकेता = अग्नि। अग्निका काम है, दान-यज्ञ-धर्म करनेवालेको ऊर्ध्व-लोकमें ले जाना 'अग्रे नयति'। अपने पिता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vishnu Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वमेध-विश्वजित् यज्ञ कर रहे हैं और उनका परलोक विगड़ जाय, यह बात नचिकेताको सह्य नहीं हुई। अग्निका यह कार्य नचिकेता कर रहा है।

जिज्ञासुमें अग्निके तीनों गुण होने चाहिए (१) दोषदुर्गुणको जलाना या दाहकत्व, (२) दूसरेको रास्ता दिखाना या प्रकाशकत्व और (३) किसीसे न दबना अभीत्व अर्थात् ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होना।

जिज्ञासुमें यदि ये गुण न हों तो वह दोष-दुर्गुणमें फँस जायगा। वह दूसरेके पतनका भी कारण बनेगा। जिज्ञासु तेजस्वी होना चाहिए। नचिकेताने सोचा—'ऐसे दानसे तो पिताजी का परलोक बिगड़ता है। रागके कारण पक्षपात करनेसे इनका किया यज्ञ व्यर्थ होरहा है। इसलिए पिताजीसे निवेदन करना चाहिए।' देखिये, कितनी सुन्दर शैलीमें नचिकेता अपने पितासे निवेदन कर रहा है?—

तत कस्मै मां दास्यसीति? "जैसे गाय-बछड़े आपकी संपत्ति हैं, वैसे मैं भी आपकी संपत्ति हूँ। मेरे लिए तो आपने पक्षपात-कर अच्छी-अच्छी गौएँ रख लीं और ब्राह्मणोंको खराब गौएँ देरहे हैं। तब बतायें कि आप मुझे किसे दान करेंगे?"

दान ज्ञानसाधनकी प्रक्रिया है : दान और त्याग, अपवाद और बाध एक मार्गमें हैं। इसके सोपान हैं।

(१) पहले आदमी दान करे। जिस वस्तुको वह अपनी समझ-रहा है, उसमें उसकी ममता और महत्त्वबुद्धि है। वही चीज दूसरे-को दे देने पर उसे अपनी ममता घटनेका और दूसरेको सुख पहुँ-चानेका संतोष मिलता है।

(२) दूसरे सोपान पर त्याग आता है। तब वस्तुमें महत्त्व-बुद्धि नहीं रहती। अपनी ममता-अहंता घटानेकी प्रवृत्ति होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijnath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैराग्य सम्मिलित त्यागमें ममता छोड़नेकी वृत्ति रहती है। बिना हृदयमें वैराग्य हुए त्याग नहीं होता।

(३) फिर अपवाद होता है। 'असलमें यह चीज पहले मेरी ही नहीं थी; यह वस्तु 'न मैं, न मेरी'—यह अपवाद हो गया। 'जो वस्तु अपना स्वरूप है, वह तो ब्रह्म है। ब्रह्ममें 'यह वस्तु है ही नहीं' इस प्रकार अपवाद होजाने पर ज्ञान होता है। इसलिए दान ज्ञान-साधनकी प्रक्रिया है।

हम प्रत्येक धर्मके विषयमें इस ढंगसे विचार करते हैं कि यह हमारी आत्मज्ञान-प्राप्ति और अविद्या-निवृत्तिमें कैसे उपयोगी है? दुनियाके लोग धर्मकी दृष्टिसे सोचते हैं कि 'हम इसे देंगे तो वह खुश होगा, हमें पुण्य मिलेगा!' अन्न उपयोगी है, क्योंकि वह देनेसे भूखेका पेट भरेगा। सेठ दाता बनकर धन देते हैं तो परोपकार या सेवाकी दृष्टिसे देते हैं और वस्तुमें उनकी महत्त्व-बुद्धि बनी रहती है—'इस ब्राह्मणको धन देंगे तो वह वेदान्त-विचार करेगा, योगाभ्यास करेगा, अन्तर्दृष्टिसे सम्पन्न होगा, उसका उपकार होगा।' किन्तु कोई आदमी या साधु आत्मज्ञान अथवा भगवद्भजनके लिए त्याग करता है तो वह वस्तुमें महत्त्वबुद्धि रखकर दान नहीं करता। आत्मज्ञानके लिए किये गये दान पर विचार करनेसे पहले अपवाद होगा, फिर बाध हो जायगा। इस प्रकार दानकी प्रक्रिया ठीक समझमें आ जाय तो दान भी आत्मज्ञानमें उपयोगी है।

द्वितीयं तृतीयं तँ होवाच : नचिकेताने तीन बार पितासे वही प्रश्न किया कि 'हमें आप किसे देंगे?' पिताने पहली और दूसरी बार तो पुत्रके प्रश्नकी उपेक्षा कर दी। जब तीसरी बार भी वही प्रश्न किया तो उन्हें पुत्र पर क्रोध आ गया।

बड़े लोगोंको अपने बड़प्पनके अभिमानके कारण क्रोध आता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnaath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है कि 'यह हमारे बड़प्पन पर चोट करता है।' दूसरेका अपराध दिखानेके लिए यह क्रोध नहीं होता। दुनियादार लोग समझते हैं 'हमने उसे दण्ड दिया, दुनिया उसका अपराध जान गयी।' यह क्रोधी लोगोंका भ्रम है। जिसके हृदयमें बहुत ज्यादा कामनाएँ होती हैं और 'हमारे मनके अनुसार ही हो' ऐसा आग्रह रखते हैं, वे समझते हैं कि 'दूसरेको मन है ही नहीं; और है तो वह मन नहीं, तिनका है।' ऐसी बुद्धिके कारण वे क्रोध करते हैं। क्रोधी मनुष्य अपनी इच्छाओंको, अपने अहंकारको जाहिर करता है और दिलमें भरी आग उगलता है।

अन्तर्ज्वालाकी अभिव्यक्तिका नाम 'क्रोध' है। क्रोधका निमित्त बाहर नहीं, भीतर ही होता है। पुरुष आफिसमें जलकर आता है और घरमें क्रोध करता है। 'ठोकर लगी पहाड़में और फोड़ी घरकी सील'। क्रोधका सम्बन्ध हृदयके विकारसे है।

नचिकेताके पिताको अपने अभिमान पर चोट पड़नेसे क्रोध आया कि 'इतना छोटा होकर सिर उठाता है? मेरा बेटा होकर ऐसे बोलता है? मैंने तुम्हें पैदा किया, पाल-पोसकर बड़ा किया। मेरे सामने तुम्हें ऐसे बोलनेका कोई अधिकार नहीं।' पिताने क्रोधावेशमें कह दिया :

मृत्यवे त्वां ददामीति : 'मैं तुझे मृत्युको देता हूँ और गौएँ ऋत्विजोंको देता हूँ।'

नचिकेताके मनमें तो पिताके लिए हितभावना थी। चाहिए तो यह कि पिताके हृदयमें पुत्रके लिए हितभावना हो और पुत्रसे यदि गलती भी हो जाय, तो उसे सुधार ले। यह लौकिक दृष्टि-कोण है। यहाँ हो गया उलटा। नचिकेता पिता बन गया, पिता पुत्रके स्थान पर आ गया। पुत्र ही पिताका भला चाहता है।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

६. नचिकेताकी श्रेष्ठता

संगति :

नचिकेताने सोचा—'मेरे पिताजीको यज्ञका फल नहीं मिलेगा। इनका अनिष्ट होगा, यज्ञ व्यर्थ जायगा क्योंकि यज्ञमें सबसे बड़ी गलती पक्षपात है। यज्ञमें क्रोध करना दूसरा अपराध है। तीसरे-यज्ञमें बैठकर मेरे दानका संकल्प किया—'ददामि !' यज्ञकी दीक्षा लेकर 'ददामि' कह दिया। अब मैं यदि न दिया जाऊँ तो इनके यज्ञका फल और बिगड़ जायगा। वह न बिगड़े, इसलिए सोच रहा है—पिताने मेरा दान कर दिया। दान भी किसी सत्पात्र या ब्राह्मणको नहीं, मृत्युको !'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection, Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः ।
किं स्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ॥ ५ ॥

मैं बहुत-से [शिष्य या पुत्रों] में तो प्रथम (मुख्य वृत्तिसे) चलता हूँ और बहुतोंमें मध्यम (वृत्तिसे) जाता हूँ। यमका ऐसा क्या कार्य है, जिसे पिता आज मेरे द्वारा सिद्ध करेंगे ॥ ५ ॥

कुछ लोग एक नम्बरके होते हैं और कुछ दो नम्बरके ! तीसरे नम्बरके लोग गिनती करने लायक नहीं होते। नचिकेता सोचता है : 'मैं बहुतोंमें एक नम्बरका भले न होऊँ, दो नम्बरका तो अवश्य हूँ, तीन नम्बरका कदापि नहीं।'

जो पिताका संकेत समझकर जान ले कि उन्हें क्या चाहिए या उसे क्या करना चाहिए, वह बहुत पुत्रोंमें-से एक नम्बरका है, उत्तम है। मध्यम यानी दूसरे नम्बरका वह है जो पिताकी आज्ञा होने पर आज्ञाका पालन करे। तीसरे नम्बरका पुत्र वह है, जो आज्ञा देने पर भी उसका पालन न करे ! वह असलमें 'पुत्र' नहीं, 'मूत्र' है।

नचिकेता सोचता है : 'मैं मूत्र अर्थात् अधम नहीं उत्तम या मध्यम हूँ। ऐसे पुत्रको भी पिताने मृत्युके लिए दान कर दिया ! दान करते तो मैं मर जाता। किन्तु मैं अपराधी नहीं, मेरे प्रारब्ध अभी पूरे नहीं हुए हैं। मैं मृत्युदेवके सम्मुख जाकर उपस्थित होऊँगा तो वे मेरा क्या कर लेंगे ?'

इस प्रसंगमें दो बातें हैं। पहली बात है, आज्ञापालन। धर्म, स्वर्ग, पुराण आदिको समझनेके लिए मनुष्यको सम्पूर्ण वेद-दर्शनका ज्ञाता होना चाहिये। एक होता है, अपनी वासनाके अनुसार चलनेवाला तो दूसरा होता है, दूसरेकी वासना और आज्ञाके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidehi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुसार चलनेवाला। जो आदमी बड़ोंकी आज्ञाका उल्लंघन करता है, उसके दिलमें अपनी वासना प्रबल होती है। वह भगवान्, गुरु और शास्त्र को नहीं मानता, अपनी इच्छाके अनुसार चलता है। ऐसा व्यक्ति 'स्वतंत्र' नहीं, 'अतंत्र' है, उच्छृङ्खल है। वह न अपने काबूमें है, न दूसरे के। मनने गड्ढेमें डाला तो वहाँ गिरे। मनने कहा, 'नशा पियो' तो नशा पिया। 'नश्यति अनया'—नशा बुद्धिका नाश नशा है।

आदत बिगड़ने पर मनुष्य अतंत्र हो जाता है। तब वह जो बोलना न चाहिए वह बोलेगा, जिसे मारना नहीं चाहिए उसे क्रोध-में आकर मारेगा। उसकी बुद्धि उसे अभक्ष्य भक्षण करनेसे रोकेगी, पर सामने आने पर वह उसे खा लेगा। वह समझता है: 'मैं स्वतंत्र हूँ.' पर वास्तव में स्वतंत्र नहीं अतंत्र है। वह गुरुकी, शास्त्र, माँ-बाप या अपनी अन्तरात्मा तककी आज्ञा नहीं मानता। अपनी इन्द्रियाँ और अपने मनके अधीन चलता है। वह पराधीन है। जो गुरु, शास्त्र, माँ-बाप और अपनी अन्तरात्माकी आज्ञा मानकर चलता है, उसका मन अपने वशमें रहता है।

आज्ञापालनकी भी एक मर्यादा है। व्यक्तिको अपने अफसरकी आज्ञा माननी चाहिए या नहीं? इसकी कसौटी है—जो आज्ञा दी है वह नियमके अनुसार है या विरुद्ध? संविधानके विरुद्ध दी गयी आज्ञाका पालन नहीं करना चाहिये। धर्मात्मा व्यक्ति इसमें निर्भय होकर व्यवहार करेगा।

बिना अन्तःकरणवाले पुरुषके द्वारा बोली गयी वाणीको 'अपौरुषेय वेद' कहते हैं। अन्तःकरणवाला पुरुष बोलता है, तो उसमें श्रम, प्रमाद और फलकी इच्छा होनेके कारण उसकी वाणी समझमें नहीं आती। अपौरुषेय वेद शाश्वत संविधान है—सनातन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Jalgaon Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कानून है। वस्तुके गुण-दोष देखकर उसके कानून नहीं बनते। जो अज्ञाकारी नहीं है वह वासनाकारी है, क्योंकि वह अपनी वासनाके अनुसार चलता है। हमारे जीवनमें अनुशासनकी, आज्ञाकी भी आवश्यकता है।

हम लोग तो पुराने खंडहरकी रक्षा करनेके लिए जैसे लोग होते हैं वैसे हैं। लखनऊमें बड़ा इमामबाड़ा, छोटा इमामबाड़ा, आगरामें ताजमहल दिखानेवाले लोग उन स्थानोंकी सुरक्षा करते हैं कि कोई तोड़-फोड़ न करे। प्राचीन संस्कृति, भारतीय संस्कृति, वैदिक धर्ममें कौन-सी बात किस अभिप्रायसे रख दी गयी थी उसकी हम व्याख्या करके बताते हैं। अब तुम किस अभिप्रायसे किस रास्ते पर चलते हो उसकी व्याख्या कर लो।

एक धर्म हुआ आज्ञापालन, जिसमें सबसे प्रेम और त्यागकी प्रधानता है। दूसरा है, पिताके हितकी बुद्धि और पुत्रके कर्तव्यका पालन। आज्ञापालनके साथ-साथ निर्भयता भी है। मौतके सामने पिताने भेज दिया तो पुत्र वहाँ भी निडर होकर जानेको तैयार होगया।

'अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।' —गीता

जिज्ञासुमें यह दैवीसम्पत्ति रहनी चाहिए। यह आज्ञापालन अन्तमें तत्त्वज्ञान करा देगा। यदि तुम्हारी बुद्धिने कभी तत्त्वको ग्रहण नहीं किया तो वेद और गुरुकी आज्ञासे ग्रहण कर सकोगे। तुम्हारे पास यह एक अखण्ड सम्पत्ति स्थायी रूपमें है। अनुशासन प्रबल शक्ति है। आज्ञा भी मनुष्यको तत्त्वके द्वार पर पहुँचा देती है।

निर्भयता क्या है? जो अकेला रहनेका अभ्यास करेगा, वह निर्भय हो जायगा। ब्रह्मचारी गुरुके पास रहता है, इसलिए वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अकेला नहीं है। गृहस्थ भी अकेला नहीं है। वह गृहमें रहेगा या बाजारमें। वानप्रस्थके साथ पत्नी रहेगी। संन्यासीका जीवन अकेला होगा —

'चलो रे संन्यासी अकेले, हरि ॐ तत्सत्।' अकेले रहनेका अभ्यास किस संस्कारकी ओर अग्रसर करेगा? अद्वितीय ब्रह्मकी ओर चलनेकी प्रेरणा देगा। अद्वितीय ज्ञानका प्रेरक होगा, क्योंकि तुम कभी अकेले नहीं। संन्यासी अकेला होगा? नहीं, कमरेमें भी मच्छर-मक्खी होंगे। पेड़के नीचे संन्यासी रहेगा तो वहाँ भी चिड़िया-कौए होंगे। बीट करके वे अपना निशाना लगा जाते हैं। गंगामें मगर, मछली, कछुआ, अजगर होते हैं। तो कैसे अकेले रहोगे? किसीकी ओर देखोगे ही नहीं? ध्यान लगाकर बैठोगे? ब्रह्मलोकमें जाओगे तो वहाँ भी तुम अकेले नहीं होओगे! जब तुम अपनेको अद्वैत-स्वरूपसे जान जाओगे और द्वैतका वध हो जायगा, तब असली एकान्त होगा। बिना द्वैतकी निवृत्तिके कोई निर्भय हो नहीं सकता।

योगीलोग इस ब्रह्मपदकी प्राप्तिसे डरते हैं—'क्या कोई नहीं रहेगा?' केवल मैं ही मैं? भक्त लोग भी डरते हैं—

बत विभेमि कैवल्यतः!

भयको भी मिटानेका प्रयत्न करना। वह भी परमात्माकी प्राप्तिमें बाधक है। बड़े कौशलसे, उत्तम शैलीसे जिज्ञासुमें होनेवाले सद्गुणोंका यहाँ वर्णन किया गया है—सत्यका पक्ष, न्यायका पक्ष, आज्ञाकारिता, हितैषिता, निर्वासनिकता, निर्भयता—ये सब-के-सब इस नचिकेता-अग्निमें मौजूद हैं।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

७. निष्काम कर्म

संगति :

श्रेष्ठ सद्गुणोंसे सम्पन्न जिज्ञासु नचिकेता पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए और पिताकी कल्याण-कामनासे प्रेरित यमके द्वार पर पहुँच जाता है।

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥६॥

जिस प्रकार पूर्वपुरुष व्यवहार करते थे, उसका विचार कीजिये तथा जैसे वर्तमानकालिक अन्य लोग प्रवृत्त होते हैं, उसे भी देखिये। मनुष्य खेतीकी तरह पकता (वृद्ध होकर मर जाता) है और खेतीकी भाँति फिर उत्पन्न हो जाता है ॥ ६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुपश्य = आलोचय, पूरी तरह देखो, गौरसे हर बात पर विचार करो। रत्ती-रत्ती, इंच-इंच नाप-जोख कर देखो। जो गति पहलेके लोगोंकी हुई (जैसे वे मर गये) वही गति बादके लोगोंकी भी होगी। पिता-पितामहकी जो गति हुई, वही पुत्र-पौत्रोंकी भी होगी। यदि धर्मका निर्णय करना है तो लाभ पर दृष्टि नहीं होनी चाहिए। रोज़-रोज पाँच मिनटका संध्या-वन्दन क्यों ? बिना कामना और बिना लाभके भी निष्काम कर्म करनेकी आदत जीवनमें डालनी चाहिए। तुम्हें कोई टॉच दे, विद्या-बुद्धि दे तो उसके प्रति कृतज्ञ होते हो या नहीं ? इसी तरह ईश्वर सूर्यका प्रकाश दे तो उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए या नहीं ? एक आदमीने किसीको भोजन कराया, रास्ता बताया, अंधेरेसे उजालेमें पहुँचा दिया तो एक बार 'थैंक यू' तो बोल दो! क्या यह करेंगे कि 'अब तो पहुँचा ही दिया तो क्या बोलें ?'

हम पूछते हैं: 'हमारे बाप-दादाने जिस धर्मका अनुष्ठान किया, उसे हम क्यों न करें ? क्या तुम्हें ताश खेलना है, सिनेमा देखना है, पैसा कमाना है, क्लब जाना है इसलिए नहीं करोगे ? किस कारण इनकार करते हो ? ऐसा कौन-सा महत्त्वपूर्ण कार्य तुम्हें छोड़ना पड़ता है कि निष्काम कर्मका परित्याग करते हो ?'

धुआँ पूर्ववर्ती आगका होता है, पर अग्नि धुएं और लकड़ी दोनोंको प्रकाशित करती है। यह नचिकेता-अग्नि जिस पितासे पैदा हुआ है उसीको प्रकाश दे रहा है—

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे।

"तुम्हारे बाप-दादाने सचाईसे धर्मका पालन किया है। मैं तुम्हारा बेटा हूँ। मेरे बाद जो होनेवाले हैं, वे भी सचाईसे धर्मका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पालन करेंगे। छोटे-बड़े सब सचाईसे धर्मका पालन करते हैं और करेंगे। अब तुम एक बार मुझे मृत्युको दान कर चुके। तुम्हारी बात झूठी नहीं होनी चाहिए। सत्यको पकड़ो! (कोई भी भूतको पकड़कर अजर-अमर नहीं हो सकता। अजर-अमर तो वह खुद ही है। भूतको पकड़ा तो मर जायगा। मनुष्यका शरीर भूत है। लेकिन मानव समझता है कि भूतको पकड़नेसे हमारा जीवन अजर-अमर हो जायगा, हम बूढ़े नहीं होंगे!)

कुमार सिद्धार्थ (बुद्ध)से उनके पिताने कहा—'राज्य करो' तो सिद्धार्थने चार बातें कहीं : '१ हमारे शरीरमें कभी बुढ़ापा न आये, २. जवानी बनी रहे, ३. मैं मरूँ नहीं, शरीरमें रोग न आये और ४. मेरा राज्य अकंटक रहे, कोई शत्रु न हो तो मैं राजा बननेको तैयार हूँ!'

इस सृष्टिमें ऐसी चीज तो कोई नहीं दीखती जिसके लिए हम अपना सत्यानाश कर बैठें।

'सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः।

धरतीमें एक पौधा बो दिया जाता है, जैसे नवरात्रिमें यव बोते हैं। यज्ञ करते हैं तो भी यव बोते हैं। यवमें-से अंकुर फूट निकलता है, वैसे ही मनुष्यके वीर्यसे यह प्राणी निकल आता है, बढ़ता है, बूढ़ा होकर मर जाता है। उसके बीजसे फिर नया प्राणी निकलता है। जो हालत घास और वनस्पतिकी है, वही मनुष्यकी भी। मौतने अपने पंजेमें सृष्टिको दबा रखा है। तब किसके लिए वासनाके अधीन होते हो! किसके लिए दूसरेका बुरा चाहते हो? किसके लिए सत्यका मार्ग छोड़ते हो? क्यों अन्याय करते हो? यह सृष्टि तो यों ही चल रही है। पहले दृश्यको देखो, उसके प्रति अपने मनमें वैराग्य करो। उसमें वैराग्य या सुख-दुःख नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वप्रथम अपनी रुचिको बहुत बड़ा महत्त्व देकर हम दुनियामें फँसे हैं ! संसारमें ऐसी कोई चीज नहीं, जो हमें सुख दे सके। उसमें हम अपना सुख डालकर सुखी होनेकी कोशिश करते हैं। चायमें घरकी शक्कर डालकर उसे मीठी बनाते हैं। अपनी वासना डालकर वस्तुको मीठी बनाते हैं। दृश्यमें खुदकी मिठास नहीं, मात्र आत्माकी मिठास है। हम हैं स्वयंभू, स्वयंप्रकाश और उसीको दृश्यमें डालते हैं। दूसरोंसे हम कहते हैं कि 'पेड़ने हमें पकड़ लिया !'

एक नदीमें काला-काला कुछ बहा जा रहा था। दो मित्रोंने उसे देखा–लगा कि कम्बल बहा जा रहा है। उसे लेनेको एक कूद पड़ा। वह तो था भालू ! भालूने उसे पकड़ लिया ! किनारे पर खड़े मित्रने कहा : 'भाई, तुम बहे जा रहे हो। कम्बल नहीं आता तो छोड़ दो।'

वह बोला—'मैंने कम्बलको नहीं पकड़ा है, वही मुझे पकड़कर लिये जा रहा है।'

यहाँ कोई भी वस्तु नित्य नहीं, सत्य नहीं। दृश्य सच्चिदानन्द नहीं, स्वयं प्रकाश चेतन नहीं, आनन्द नहीं और न सत् ही, हम आनन्दस्वरूप हैं, चेतन और स्वयं प्रकाश हैं। दृश्य अद्वितीय नहीं है, पर मैं अद्वितीय हूँ। दृश्यको अद्वितीय बनाने वाला तो मैं ही हूँ।

इस दृष्टिसे यहाँ विचार करते हैं तो यहाँ संसारकी मृत्युका विचार है ! इस उपनिषद्का यह मूल-तत्त्व है, 'मृत्युके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करना।'

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Maharashtra Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

८. यमके द्वार पर उपवास

संगति :

संसारमें जगह-जगह मौत छायी हुई है। बापने कहा, 'जा मर' तो उसने देखा कि संसारमें सब चीज़ तो मर रही है,, वह मृत्युके द्वार पर पहुँच गया। अब यही मृत्यु आगे चलकर मूर्तिमान् होकर उपदेश करती है। नचिकेता मौतके दरवाजे पर जाकर बैठा।

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥७॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaibhavi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्राह्मण-अतिथि होकर अग्नि ही घरोंमें प्रवेश करता है [साधु पुरुष] उस अतिथिकी यह [अर्घ्य-पाद्य-दानरूपा] शान्ति किया करते हैं। अतः हे वैवस्वत ! [इस ब्राह्मण-अतिथिकी शान्तिके लिये] जल ले जाइये ।। ७।।

नचिकेता वैश्वानर यानी अग्नि है, द्वैतको भस्म करनेवाला है। वह यमराजके द्वार पर जाकर बैठा ! उसे क्या चाहिए ? वह कहता है : 'हमें स्थूल शरीरका भोग नहीं चाहिए। सूक्ष्म शरीर (स्वर्गादिका सुख भी) नहीं चाहिए। हमें कारण-शरीरका भोग (समाधि भी) नहीं चाहिए अर्थात् संधि या विश्रान्ति भी नहीं चाहिए।' उसने यमराजके न आनेतक तीन दिन उपवास भी कर लिये।

तीन दिनके उपवास का संकेत है, हमें विश्व, तैजस, प्राज्ञके जो अनुभव होते हैं, वे नहीं चाहिए ? स्थूल-सूक्ष्म कारण शरीरके भोग नहीं चाहिए। हम अपनेको मिटा डालनेको तैयार हैं, लेकिन पिताने हमें मृत्युको दे डाला तो जिन्दा पुरुषकी तरह कैसे रहूँ ?

तीन दिन तक भूखा-प्यासा वह बैठा रहा, उसने यमराजकी प्रतीक्षा की। यमराजके आने पर उनका परिवार उनसे कहने लगा : 'यह ब्राह्मण अतिथि तुम्हारे घर आया है, यह आग है आग !'

एक हमारी जान-पहचानमें सेठ था। दो वर्ष पूर्व ही नब्बे वर्षसे भी अधिक आयुमें उसकी मृत्यु हुई। उसकी प्रतिज्ञा थी कि हमारे पास कोई आये तो उसे खाली हाथ नही लौटायेंगे। उसका दिवाला निकलनेवाला था। लाखसे अधिक उस पर ऋण था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह एक महात्माके पास गया। महात्माने पूछा : 'कुछ छिपा रखा है या नहीं ?'

सेठ : 'है।'

महात्मा : 'कितना ?'

सेठ : 'डेढ़ लाख।'

महात्मा : 'सब दान कर दो। अपने लिए एक पैसा भी छिपा कर मत रखो !'

उसने सब दान कर दिया। देखो उसकी हिम्मत ! उसने जब डेढ़ लाख दान कर दिया तो दूसरे आदमीने उसे चार लाख ऋण दिया। फिर थोड़े ही दिनोंमें उसको ऐसी आमदनी हुई कि ज्यों-का-त्यों व्यापार चलने लगा। फिर भी जीवनभर उसने कभी किसीको 'ना' नहीं किया।

अतिथि ब्राह्मण घर आये तो उस अग्नि की यही शान्ति है कि कुछ दो ! घरमें आग लगे तो जलसे बुझाते हैं। जल पिलाओ, भोजन कराओ, मीठी वाणीसे बोलो, सेवा करो। घरमें रहनेवाले लोगोंका यह कर्तव्य है। पाद्य, अर्घ्यं, आचमनीय, आदि सत्कारकी प्रणालीसे उनका स्वागत-सत्कार करो। नहीं तो वे अग्निदेवता गृहस्थीको भस्म ही कर देते हैं। उन्हें विमुख लौटाना नहीं चाहिए।

जो टेलिफोन, तार, चिट्ठीसे खबर देकर आते हैं, वे अतिथि नहीं, सतिथि हैं। 'जो बिना किसी पूर्वसूचनाके भोजनके समय आ पहुँचे, वही अतिथि हैं। वह साक्षात् ईश्वर हैं, ऐसा पुराणोंमें बताया है। उसकी जाति, सम्प्रदाय या पूर्व चरित्र कुछ भी नहीं पूछना चाहिए। वह ईश्वरकी सृष्टि है, इतना तो स्पष्ट

RajGuru Math, Shivalaya/Guru Math Collection, Varanasi. Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही है, इसीलिए उसे भोजन करनेका मुख्य अधिकार है। जन्म लेनेके बाद कोई भी भोजनका अनधिकारी नहीं रहता। जिसके पास भोजन हो, उसका कर्तव्य है कि उसे वह दे। उसके जीवनकी रक्षा, ज्ञानकी वृद्धि और चिन्तनकी शुद्धिके लिए अर्थात् उसके जीवनमें सच्चिदानन्दका प्रकाश लानेके लिए हमें प्रयास करना चाहिए। जीवनकी रक्षा 'सत्' की रक्षा है। किसीको बेवकूफ न बनाना ही 'चित्' की रक्षा है और किसीको दुःखी न करना 'आनन्द' की रक्षा है। प्रत्येकका कर्तव्य है कि वह सच्चिदानन्दकी रक्षा करे।

संसारी मनुष्य कहता है : 'यह मेरा घर है, मेरा धन है, मेरा अन्न है, मेरा परिवार है।'—वह रागके कारण अहंकार करता है और यह अहंकार है अज्ञान। सत्की कक्षामें अज्ञान, चित्की कक्षामें अहंकार, और आनन्दकी कक्षामें रागने पहुँचकर जगह घेर ली है, जहाँ इन तीनोंको नहीं पहुँचना चाहिए। इसी कारण कोई अनजान आदमी सामने आता है तो हम बेधड़क पूछ बैठते हैं कि 'मेरे घर, मेरे अन्न और मेरे परिवारमें तू कहाँ? 'लेकिन तत्त्वज्ञानके जिस मार्ग पर जिज्ञासु चल रहा है, वह तो 'मेरा-तेरा' एक कर देनेका मार्ग है, सम्पूर्ण विश्वसृष्टिसे एक होनेका मार्ग है। यदि कोई भोजनके लिए अतिथिके साथ तादात्म्य नहीं कर सकता, तो सम्पूर्ण विश्वसृष्टिसे एक होकर परमात्मासे क्या तादात्म्य प्राप्त करेगा? यह तो उसकी अयोग्यताको सूचना है—'कैसा जिज्ञासु है जो अतिथिके लिए चार रोटियोंका त्याग नहीं कर पाता और ब्रह्मलोक तक सारी सृष्टि त्यागकर परमात्मासे एक होना चाहता है?

कम-से-कम जीवनमें एक अवसर तो ऐसा होना चाहिए कि अतिथिके आने पर उसे भोजन करा दें, भोजन नहीं तो पानी ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri / Rajguru Math Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पिला दें। बम्बईमें जलका भी संकट है तो बैठा ही लें, वह विश्राम करेगा। बैठानेमें भी भारी डर हो तो मीठी वाणी बोलें। दुत्कारें नहीं। क्या इन चारोंमें-से एक भी वस्तु आपके पास नहीं जो अतिथिको दी जा सके?

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ति कदाचन॥

इन चारोंमें-से एक भी आप नहीं दे पाते और अतिथिको 'ना' कर देते हैं तो निश्चय ही आपने ईश्वरको 'ना' कर दिया। तब ईश्वरने अपने रजिस्टरमें आपके नाम पर 'ना' लिख दिया कि 'हमारे राज्यमें यही एक लाड़ला है।'

सारांश, अपनी अहंता-ममता मिटानेके लिए मनुष्यके जीवनमें ऐसा अवसर होना चाहिए कि वह जिस किसी तरह अतिथिसे तादात्म्य स्थापित करे जिज्ञासुमें यह गुण होना चाहिए कि वह अतिथिमें दोष-दर्शन न करे। ईश्वरभावसे उसे भोजन, जल, आसन या मीठा-वचन इनमें-से एक-न-एक अवश्य दे।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम्॥

जिसके घरसे अतिथि खाली हाथ लौट जाता है, उसकी चार बातें नष्ट हो जाती हैं। १. उसकी आयु कम हो जाती है, क्योंकि उसने दूसरेके जीवनकी रक्षा नहीं की। २. उसकी विद्या कम हो जाती है क्योंकि उसने विद्या द्वारा अपनी अहंता-ममताका त्याग नहीं किया। ३. उसका यश नष्ट हो जाता है, क्योंकि उसने कृपणता की। ४. उसका बल नष्ट हो जाता है, क्योंकि अब वह दूसरेकी मदद पानेका अधिकारी नहीं रहा।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

९. मृत्युका स्वरूप और अतिथि सत्कार

संगति :

तीन दिन और तीन रात्रियाँ नचिकेताने यमके द्वार पर भूखे-प्यासे बैठकर बितायीं, बड़ी आतुरतासे प्रतीक्षाके बाद अन्तमें उसे मृत्युका दर्शन हुआ—यह बात अब कही जा रही है।

आशाप्रतीक्षे संगतँ सूनृतां च
इष्टापूर्ते पुत्रपशूँश्च सर्वान्।
एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे ॥ ८ ॥

जिसके घरमें ब्राह्मण-अतिथि बिना भोजन किये रहता है, उस मन्दबुद्धि पुरुषकी ज्ञात और अज्ञात वस्तुओंकी प्राप्तिकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection, Vyapari Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इच्छाएँ, उनके संयोगसे प्राप्त होनेवाले फल, प्रिय वाणीसे होनेवाले फल, योगादि इष्ट एवं उद्यानादि पूर्त कर्मोंके फल तथा समस्त पुत्र और पशु आदिको वह नष्ट कर देता है ॥ ८ ॥

चोज मिलेगी या नहीं, इसका तो पता नहीं, पर आशा लगाये मनुष्य बैठा रहता है कि अब आये, अब आये। मिलनेकी आशा होनेसे प्रतीक्षा की जाती है।

जिज्ञासुके लिए धर्म क्या? ब्रह्मज्ञानीके यहाँ भी यदि कोई आ जाय, तो वह उसका सत्कार करता है।

मृत्यु तत्त्वज्ञ है, नहीं तो उसे लोगोंको मारनेका पाप लगता। अपने भाई-भतीजेको छोड़ दूसरेको मारता, पक्षपात करता। लेकिन मृत्युमें कत्तई पक्षपात नहीं है। 'मैंने किसीको मारा' ऐसा अभिमान नहीं है। वह सभीको मरा हुआ ही देखता है। जिन्दा किसीको देखता नहीं।

यम मृत्यु है। नचिकेताने तीन दिन उसकी प्रतीक्षा की तिस्रो-रात्रीः। ये तीन रात्रियाँ अज्ञानकी तीन परतें हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर; प्रमाण, प्रमेय और प्रमाता; ध्याता-ध्यान, और ध्येय; सत्त्व रज, और तम; ब्रह्मा, विष्णु और महेश; विश्व, तैजस् और प्राज्ञ; विराट्-हिरण्यगर्भ और माया-अधिष्ठान—ईश्वर। मृत्युकी प्रतीक्षा करनेका अर्थ है, अपने लिये कुछ-न-कुछ चाहना। उसे भोग-विषय—इन्द्रिय की कोई इच्छा नहीं रहती।

१. विषय नित्य नहीं, २. इन्द्रियोंमें नित्य भोगकी सामर्थ्य नहीं, ३. मनमें भोगकी नित्य एक-सी रुचि नहीं और ४. भोक्ता नित्य भोग कर नहीं सकता—ये चार दोष संसारमें सर्वत्र देखनेमें आते हैं। अतः यह प्रकट है कि सांसारिक विषयोंमें जो राग होता है, वह अविचार-सिद्ध है। वे तुरन्त तो अच्छे लगते हैं, पर विचार

RajGuru Math, Shivalaya Jamner Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर देखनेपर उनमें कोई मजा नहीं आता। नचिकेताको अपने कर्तृत्व और भोक्तृत्वसे प्राप्त होनेवाला संसार नहीं चाहिए, उसे चाहिए मृत्यु! मृत्यु!! मृत्यु!!! महाप्रलय, महाप्रलय, महाप्रलय। 'योगवासिष्ठ' पढ़ो तो मालूम पड़ जायगा कि मृत्युके चिन्तनसे दृश्यकी आसक्ति कट जाती है।

साधो हम मरते नहीं पलटू करो विचार। जबतक अपनी मृत्युका दर्शन नहीं होता, हम अमर नहीं। मृत्युकी गड़बड़ दृश्यमें है, द्रष्टामें है ही नहीं। स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर मरता है। इसी मृत्युकी 'नेति-नेति' में, अपवादमें, इसके साथ अपना व्यतिरेक द्वारा विचार करनेमें, मृत्युका द्रष्टा-साक्षी हो जानेमें मोक्ष या तत्त्वज्ञानका बीज निहित है। इसलिए जिज्ञासु पुरुष मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहा है और मृत्युदेव उसके सामने आते हैं। उसके घरवाले बोलते हैं: 'यह कोई साधारण आग नहीं। यह तो मृत्युको भस्म करनेवाली है।'

यमराजने घरवालोंसे कहा: 'जल ले आओ। इसके पाँव धोओ। इसकी शान्ति करो। यह तो जिज्ञासु आया है।'

घर-गृहस्थीवाला व्यक्ति आनेवाले अतिथिका निश्चय ही स्वागत-सत्कार करेगा। विरक्त होगा तो अतिथिका स्वागत-सत्कार नहीं करेगा। एक जिज्ञासु यमराजके पास जाय और दूसरा अवधूत, दत्तात्रेय, ऋषभदेव, शुकदेव या जड़भरतके पास जाय तो दोनोंके व्यवहारमें अन्तर होगा। अवधूत नहीं कहेगा कि 'आइये भगतराज, आइये।' उससे उन्हें ब्लैकका पैसा नहीं लेना है। वे न तो कहेंगे: आगच्छ 'पधारिये, यहीं ठहरिये, हम खूब स्वागत-सत्कार करेंगे और न कहेंगे: गच्छ 'जाइये।' 'अगवानी' भी नहीं और 'बिदा' भी नहीं! 'जाना होगा तो हम ही चले जायँगे, तुम्हें क्यों कहेंगे कि 'जाओ।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आगच्छ गच्छ तिष्ठेति स्वागतं सौहृदं तथा।
सम्माननं च न ब्रूयाद् यतिर्वनचरः क्वचित्॥

शरीरका तो स्वागत-सत्कार करना ही नहीं है और आत्मा हमारी-तुम्हारी एक है। उसमें स्वागत-सत्कारका प्रश्न ही कहाँ? यह है 'विनिर्मुक्त-परायणः'—मुक्त-परायण मुनिका शिष्टाचार जो संसारकी प्रणालीसे भिन्न होता है।

वर्ण, आश्रम, जाति, सम्प्रदाय और शक्तिके भेदसे जुदा-जुदा शिष्टाचार होता है। बूढ़ा हो तो बैठा रहे, जवान हो तो खड़ा हो, रोगी हो तो लेटा रहे। शक्ति, वय, पात्र-अपात्रके अनुसार ये कायदे बनते हैं। एक ही नियम सबपर लागू नहीं होता। नित्यकर्मके समान ही इसका भी महत्त्व है। इस शिष्टाचारका कोई पालन न करे, उल्लंघन करे, तो उसे दोष लगता है। क्या?

पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे।
'अल्पमेधा'=कम बुद्धि, दुर्बुद्धि नहीं। नासमझ अबुद्धि होता है। दुर्बुद्धि जान-बूझकर दुःख पहुँचाता है। यदि घरमें कोई अतिथि आये और वह बिना खाये-पिये तीन दिनों तक रह जाय तो उस गृहस्थ की हानि होती है।

वृन्दावनमें हमारे एक साईं थे। अयोध्यासे वे लखनऊ आ रहे थे। वहाँ एक सज्जन मिले। उन्होंने कहा 'कानपुरमें हमारा मित्र है। उसके घर अवश्य जाना। वह कानपुरके आगेकी ट्रेनकी व्यवस्था कर देगा।'

उन्होंने अपने मित्रके नाम चिट्ठी लिख दी। साईं वहाँ गये और चिट्ठी दी तो वह मित्र गाली देने लगा : 'देखो, ये हमारे मित्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बनते हैं। न जान, न पहचान और चिट्ठी भेज दी। हम कोई बंदोबस्त नहीं कर सकते। हमारे पास बैठनेकी भी जगह नहीं।'

इस प्रकार उसने उनका बहुत तिरस्कार किया। साईं वहाँसे निकल गये और उनके घरके सामनेवाले चबूतरे पर घंटा-आध घंटा बैठे। उनके साथ और सेवक थे, उनसे सत्संग की बातें करते रहे। वहाँसे निकलनेका समय हुआ तो वे एक सेवकसे बोले: 'जाओ, उनके यहाँसे पानी ले आओ।'

सेवक बोला—'इतना तिरस्कार किया, गाली दी और उसके घर पानी माँगने जायँ?'

साईं: 'भाई, तुम हमारी आज्ञा मानकर पानी ले आओ।'

वह साईंके गिलासमें ही पानी ले आया। सेवकोंने पूछा: 'महाराज, आपने ऐसा क्यों किया?'

साईं बोले: 'अपने धर्मशास्त्रके अनुसार हम उनके यहाँ अतिथि-रूपमें आये। उन्होंने हमें न बिठाया, न खिलाया, न पिलाया और न मीठी वाणी ही बोले। इससे उनका अनिष्ट होनेकी आशंका थी। अतएव हमने ऐसा किया।'

पूज्यका अनादर और अपूज्यकी पूजा करनेसे अनिष्ट होता है। अतिथि पूज्य होता है। कम-से-कम मीठी वाणीसे तो उसका आदर करना ही चाहिए।

इस मंत्रमें अतिथिके भूखे-प्यासे रहनेसे गृहस्थकी क्या-क्या हानि होती है यह बताया है। यदि उसके मनमें आगे कुछ पानेकी 'आशा' हो तो वह नष्ट हो जाती है। तब 'प्रतीक्षा' भी मिट जाती है।

जिज्ञासुके लिए आशा बड़ी दुःखद वस्तु है। उसका अर्थ ही है, जो चारों ओरसे छेदे वह आशा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आशायाः ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य ।
आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः ॥

अर्थात् जो आशाके दास हैं वे सारी दुनियाके गुलाम हैं औ
जिसकी दासी आशा है, सारी दुनिया उसकी गुलाम होती है
आशा कोई अच्छी चीज नहीं, लेकिन संसारी लोग तो उसे ग
लगाये रखते हैं। पर ध्यान रहे कि अतिथिकी सेवा-सत्कार नहीं
करोगे तो वह आशा कभी पूरी होनेवाली नहीं।

यही बात प्रतीक्षा की भी है यदि तुम किसी चीजकी प्राप्ति
प्रतीक्षा कर रहे हो तो वह भी सफल नहीं होगी क्योंकि ए
अतिथि जो तुमसे यह आशा करके आया था कि तुम मी
वाणी बोलोगे और उसने एक गिलास पानी पानेकी प्रतीक्ष
की, तुमने उसको वह आशा-प्रतीक्षा तोड़ दी।

सङ्गतम् : जो फल मिलनेवाला था, वह नहीं मिलेगा।

सूनृताम् : उसे कहीं सुननेको मीठी वाणी भी नहीं मिलेगी
जो दूसरेको न दे, उसे कहाँसे मिले ? तुम दूसरेको दो तो तुम्हें
मिले। असलमें सृष्टि एक ही है। पहाड़में बोली आवाज बोलने
वालेके कानमें ही लौटकर आयेगी। इस परब्रह्म परमात्माकी
सृष्टिमें तुम किसीको निन्दा-गाली दोगे तो वह लौटकर तुम्हारे
ही पास आयेगी।

इष्टापूर्तेः इष्ट : यज्ञ करोगे तो उसका फल भी नहीं मिलेगा।
यज्ञमें आदान और प्रदान दो बातें होती हैं। वेद पढ़नेवाले
ब्राह्मणको, पहरा देनेवालेको, आग पैदा करनेवालेको, लकड़ी
ले आनेवालेको सबको कुछ-न-कुछ मिलना चाहिए। धन वितरण
करनेकी एक कला भारतीयोंका 'यज्ञ' है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vimarsh Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अतिथि पेटमें जठराग्नि—साक्षात् वैश्वानर लेकर आया कि तुम हममें हवन करो। लेकिन तुमने उसका तिरस्कार किया और बाहरकी अग्निमें हवन करने जा रहे हो तो वह यज्ञ कैसे सफल होगा ?

पूर्तं: बगीचा लगाना, कुआँ खुदवाना, सड़क-पुल बनवाना, अस्पताल बनवाना और जिससे लोगोंकी भलाई हो, वे सब कार्य 'पूर्त' कर्म हैं। किन्तु घर आये अतिथिके लिए कुछ भोजन नहीं और बाहर बड़ा तालाब बनवाकर क्या पुण्य लूटोगे ? उसे भूखा-प्यासा रखा, गाली दी, उसका तिरस्कार किया, उसे ठग लिया, लूट लिया। उसके सौ रुपये लूटकर एक रुपयेका अस्पताल बनवाते हो ? ऋषिकुल खोलते हो ? अपनेको धर्मात्मा-शिरोमणि मानते हो ? अपने अभिमानकी रक्षा करना चाहते हो ? ध्यान रहे कि किसी भी मनुष्य का तिरस्कार अपना ही तिरस्कार है, क्योंकि वह भी अपनी ही आत्मा है।

पुत्रपशूंश्च सर्वान् : पहलेके जमानेमें पशुके अन्तर्गत हाथी, घोड़ा, गाय, बैल गिने जाते थे। अब मोटर, विमान, रेल ये सब वाहन; हलकी जगह ट्रैक्टर आदि आगये।

एतद्वृङ्क्ते : यदि उसने आये अतिथिका सत्कार नहीं किया, तो उसके ये सब सुखसाधन बाधित हो जाते हैं।

यमराज ब्रह्मविद्याके आचार्य हैं, पर साथ ही गृहस्थ भी हैं। इसलिए अतिथि-सत्कारका रहस्य समझते हैं और उसके शिष्टाचारका विधिवत् पालन भी करते हैं।

•

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१०. नचिकेताको यमराजका वरप्रदान

संगति :

यमराज नचिकेताका आतिथ्य करके नमस्कार करते हैं औ तीन वर देते हैं, यह बात इस मन्त्रमें कही जा रही है।

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे
अनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः ।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु
तस्मात्प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥ ९ ॥

हे ब्रह्मन् ! तुम्हें नमस्कार हो; मेरा कल्याण हो। तु नमस्कारयोग्य अतिथि होकर भी मेरे घरमें तीन रात्रि तक बि भोजन किये रहे; अतः एक-एक रात्रिके लिये एक-एक करके मुझ तीन वर माँग लो ॥ ९ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यमराज नचिकेतासे बड़े विनयके साथ क्षमा-याचना करते हुए कहते हैं : 'हे ब्रह्मन्, आप नमस्य यानी नमस्कार करने योग्य हैं। हे भगवन्, इस अपराधसे मेरी रक्षा हो।'

यमराज जानते हैं कि आगे यह गुरु बननेवाला है। उन्हें मालूम है कि आगे चलकर देह-मन-अज्ञानकी मौत हो जाती है, पर आत्मदेवकी नहीं। और सब हमारे अधीन हैं, पर आत्मा नहीं। इसलिए यमराज-गुरु अपने चेलेसे विनयपूर्वक बात करते हैं। ब्रह्मन्! आप ब्रह्मस्वरूप हैं, अतिथि हैं।

आजके नौसिखुए सुधारक कहते हैं : 'किसी का पाँव छूना, सिर झुकाना, हाथ जोड़ना तो 'बुर्जुआ'—पद्धति है। सड़ी-गली-बीती चीज है!' किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं। यह तो निरभिमानताकी प्रक्रिया है। नमस्कार करनेसे अभिमान टूटता है। जो नमस्कार करेगा, वह कभी व्यक्तित्वके अहम्‌को भी तोड़ सकेगा।

पन्द्रह-सत्रह वर्ष पहलेकी बात है—वृन्दावनमें सत्संग चल रहा था। श्री उड़ियाबाबा थे, श्री हरिबाबा थे। मैं कथा कह रहा था। इसी बीच कुछ लोग एक बड़े सेठको ले आये। उन्हें लोगोंने बीचमें ढकेल दिया, क्योंकि उनकी खुद आनेकी हिम्मत नहीं थी। वे जैसी पोशाक पहनते थे, वही पहनकर सत्संगमें आये थे। जिसने उन्हें ढकेला, उसने सेठजीको इशारा किया कि 'प्रणाम करो।' उन्हें प्रणाम करना—हाथ जोड़ना तक नहीं आता था। इधर-उधर देखा और बैठ गये।

मनुष्यका अभिमान बड़ा होने लगता है, तो उसकी देह भी कड़ी हो जाती है। जब हृदयमें 'नमस्यता' आती है तो उसका अर्थ है, (न मे इति नमः) हमारे पास अहंकार नहीं है। परिच्छिन्नताको छोड़नेका पूर्वरूप अहंकार छोड़ना है। 'यह आदमी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vijayamati Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आगे चलकर ज्ञान प्राप्त करेगा या नहीं ?' यह बात हम यह देखकर समझते हैं कि 'यह आदमी अपनी परिच्छिन्नताको—अहम्को बड़ी महत्त्वपूर्ण वस्तु समझकर पकड़े हुए तो नहीं है ?' जो अपने परिच्छिन्न अहंकारको उत्कृष्ट वस्तु समझकर पकड़े हुए हो वह उसका परित्याग कैसे करेगा ? वह नमस्कार भी नहीं करेगा। सारांश, अतिथि नमस्य है, उसके सामने अपना अहंकार छोड़ो।

बम्बईमें 'भाग्यवान्'का अर्थ दूसरा होता है। मारवाड़ीमें 'भाग्यवान' के माने है धनसंपन्न। कहा जाता है कि धन होना ईश्वरकृपा या पूर्वपुण्यका फल है। लेकिन जिज्ञासु लोग ऐसा नहीं मानते। महात्माके पास जाओ और दो-पाँच रुपये दो, तो वह लेनेसे मना करेगा। आप कहें कि—'आपके प्रारब्धमें है, इसलिए रुपया आपके पास आया है' तो भी महात्मा आपकी इस बातको हरगिज स्वीकार नहीं करेगा कि ईश्वरकृपासे उसे वे पांच रुपये मिले हैं।

दुनियामें फँसाने और हमें भगवान्को भुलानेके लिए भाग्यने पाँच रुपये भेजे हों तो हम उसे हरगिज़ ईश्वरकृपा नहीं मानते। यह पुण्यकर्मका फल नहीं, मन्दभाग्य है। पुण्यकर्मका फल त्याग-वैराग्य है। चित्तकी पवित्रता, ज्ञान, भक्ति है। गृहस्थ और साधुके लिए ईश्वरकृपाके रूप अलग-अलग होते हैं।

नचिकेता तीन दिन बिना भोजनके रहा, यह उसका सत्-प्रारब्ध है या असत् प्रारब्ध ? यदि यह असत्-प्रारब्ध होता तो उसे न गुरु मिलते, न ब्रह्मज्ञान। सत्-प्रारब्धने भोजन मिलनेसे उसे रोका। यह बात मुमुक्षु, जिज्ञासु, ज्ञानीकी समझमें आती है। तीन दिन बिना भोगके रहनेसे वह योगी बन गया !

तुम कितने दिन, महीने, वर्ष विना भोगके रहे ? धोखेमें मत आओ। मनमें भोगका चिन्तन होता है, तो तुम भोग करते ही हो। रसगुल्ला खानेकी इच्छा, बेटेकी याद, स्वजनके संयोग-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वियोगका चिन्तन, अपने सुख-दुःखका स्मरण भोगका ही चिन्तन है। यदि तुम अपने जीवनमें ऐसे तीन दिन निकाल सको जब तुम्हें सुख-दुःख अर्थात् भोगका कत्तई चिन्तन न हो तो तुम्हें तीन दिनोंमें ब्रह्मज्ञान हो जायगा। देहकी मृत्यु हो जायगी। मृत्युके द्वार पर बैठे तुम्हें मृत्युदेव आकर तत्त्वज्ञान देंगे। मृत्युदेव भयके निमित्तसे, आध्यात्मिक निमित्तसे मृत्यु देंगे। तीन दिन तक सुख-दुःख का स्फुरण न हो अर्थात् निर्विकल्प-निर्वृत्तिक स्थिति हो, तो वही तुम्हें ब्रह्म-ज्ञान देगी।

नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु : यमराज नचिकेताको बार-बार नमस्कार करते हैं। पहले तो 'नमस्य' कहकर उन्होंने मनसे नमस्कार किया। फिर 'नमस्ते अस्तु' कहकर वाणीसे किया 'स्वस्ति मे' कहकर नमस्कारपूर्वक आशीर्वाद माँगा।

'तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व : तीन दिन तुम हमारे घर बिना स्नान और बिना भोगके रहे। इसलिए हे अतिथिदेवता, तुम तीन वर माँग लो।' एक-एक रातके बदले एक-एक वर।

यहाँ 'रात्रि' शब्दका प्रयोग सोद्देश्य है। अज्ञानकी तीन परतें हैं, इसलिए 'तीन रात्रि'। संस्कृतमें 'पंचरात्रम्' (एक बड़ा ग्रन्थ), 'सप्तरात्रम्' (सप्ताह), 'नवरात्रम्' (आश्विन शुक्लमें होनेवाला (उत्सव) शब्दोंका प्रयोग होता है। जैसे अन्धकारसे संसार आच्छन्न हो जानेसे नहीं दीखता, महाशक्ति ही उसे देखती है। वह उससे अवच्छिन्न परमात्माको देखती है। (तीन रात्रिपर्यन्त भूखे रहनेका अर्थ है अविद्याकी तीन वृत्तियों-सात्त्विक-राजस तामसके भोगको न चाहना और प्रपंचाभाव होना। यह प्रपंचाभाव ही तत्त्वज्ञान देता है। यह वेदके निरूपणकी रहस्यमयी शैली है)

'गीताभाष्य' के तीसरे अध्याय और 'बृहदारण्यक' के चौथे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्यायमें श्री शंकराचार्यने इस प्रसंगको उठाया है, इस ग्रन्थमें नहीं। गीता और ब्रह्मसूत्रमें उन्होंने यह प्रश्न उठाया है कि 'यम तत्त्वज्ञ थे; नहीं तो ब्रह्मज्ञान कैसे देते ?'

अपनेको व्यक्तिरूपमें न जानकर तत्त्वरूपमें जानना 'तत्त्वज्ञ' होना है। घड़ा अपनेको मिट्टी जाने घटाकारता नहीं, जो अनारोपिताकार हो, तो उसने तत्त्वको जान लिया! ऐसे ही जीव-व्यक्ति चैतन्य है। वह अपने नामरूपका अपवाद कर अपनेको व्यक्तित्वशून्य, जातिशून्य, कर्तृत्व-भोक्तृत्वशून्य, सजातीय-विजातीय-स्वगतभेदशून्य, अपरिच्छिन्न स्वयंप्रकाश ब्रह्म-तत्त्वरूपमें जाने, तो वह 'तत्त्वज्ञ' ही है।

हे चैतन्य! तुम अपनेको ब्रह्मरूपमें जानते हो या नहीं? घड़ा तत्त्वज्ञ है तो तत्त्वरूपमें उसका काम पानी भरना नहीं है। उसका नाम-रूप ही शराब या गंगाजल भर रहा है। वह तो विनिर्मुक्त हो गया है।

यम तत्त्वज्ञ हो गये तो उनका नाम-रूप नहीं रहा। तब व्यक्ति, समाज, सम्प्रदाय, मानवजातिके धर्मका लेप यमराजको कैसे होगा ?

श्री शंकराचार्यने इस प्रश्नका मार्मिक उत्तर दिया है: "तत्त्वज्ञान होनेपर भी जैसे एक व्यक्तिकी आयु पचास वर्ष होती है, वैसे ही यम तत्त्वज्ञ होनेपर भी कर्माध्यक्षके स्थानपर नियुक्त थे। वे पाप-पुण्यका फल देते थे, क्योंकि वे कारक-पुरुष थे, अधिकारी थे।' एक अधिकारी पुरुष अपनेको मनुष्य जानता है। वह न्यायाधीशके पद पर होगा तो अपना कर्तव्य पूरा करेगा। एक हिन्दू अपनेको ब्राह्मण जानेगा तो ब्राह्मणपनेका कर्तव्य पूरा करेगा। वैसे ही एक मनुष्य अपनेको हिन्दू जानेगा, विश्वका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नागरिक जानेगा तो तदनुसार कर्तव्य करेगा। 'हिन्दू' छोटे दायरे में हैं, बड़े दायरेमें 'मनुष्य' हैं। शरीरकी उपाधि स्वीकार करने पर वह 'जीव' है, नहीं तो 'ब्रह्म'। उपाधिका स्वीकार करना ही जीव-ब्रह्मका भेद है, जैसे ब्राह्मण-मनुष्यका भेद! है तो मनुष्य, पर वह अपनेको हिन्दू बताता है। है तो हिन्दू, पर वह अपनेको ब्राह्मण बताता है। है तो ब्राह्मण, पर अपनेको संन्यासी बताता है। तो क्या उसका कर्तव्य नहीं रहा? यह सब होते हुए भी जैसे उसकी मनुष्यतामें बाधा नहीं आती, वैसे जीव होते हुए भी क्या उसके ब्रह्मस्वरूपमें बाधा आयेगी? कभी नहीं। तो स्पष्ट है कि यम तत्त्वज्ञ थे पर साथ ही कारक-पुरुषके पद पर भी थे।

एक न्यायाधीश था। एक बार बहुत बुरे मुकदमेमें उसका बेटा, उसी अदालतमें अपराधीके रूपमें आया। उसने न्यायाधीशकी हैसियतसे उसे मृत्युदण्डकी सजा दी और घर जाकर पिताकी हैसियतसे पत्नीके साथ रोया।

यम तत्त्वदृष्टिसे तो ब्रह्म है, पर आधिकारिक दृष्टिसे परमाध्यक्षके पद पर पाप-पुण्यका फल देनेके लिए यम बनकर बैठे हैं। यमराज को किंचित् भी प्रत्यवाय, पाप-पुण्य नहीं लगता, न मरनेके बाद स्वर्ग-नरक या पुनर्जन्म है। कारण वे तत्त्वज्ञ हैं। सभी यमराज तत्त्वज्ञ नहीं होते, कोई-कोई, कभी-कभी होते हैं।

प्रत्यवाय का अर्थ है अधोगमन, नीचेकी ओर चलना। और अभ्युदय का अर्थ है अभिमुख, ऊपरकी ओर जाना, जिधर जाना हमारा लक्ष्य है। ये दोनों परस्पर विरोधी शब्द हैं। यम तत्त्वज्ञ होनेके कारण उन्हें प्रत्यवाय नहीं होता। फिर भी अपने स्थानके आदर्शका पालन-अतिथिसत्कार मात्र लोकशिक्षाके लिए करते हैं।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

११. नचिकेताका प्रथम वर : पितृपरितोष

संगति :

अब तक यह बताया गया कि जिज्ञासु पुरुष न्याय-परायण, सत्यप्रेमी, पिता और अन्य गुरुजनोंका आज्ञाकारी, निर्भय, विवेक-वैराग्य-संपन्न होता है। वह तीनों शरीरोंके भोगोंको त्यागकर रह सकता है। वह मृत्युको भी दृश्यरूपमें देखता है। मृत्यु जिसका दृश्य है, निश्चय ही उसके हृदयमें तत्त्वज्ञानका आविर्भाव हो रहा है। यही नहीं, मृत्यु ही उसकी पूजा, स्वागत-सत्कार करता है। अब नचिकेता यमसे कहता है :

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnath Chaturvedi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्या-
द्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो ।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत
एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥१०॥

हे मृत्यो ! जिससे मेरे पिता वाजश्रवस मेरे प्रति शान्त-सङ्कल्प, प्रसन्नचित्त और क्रोधरहित हो जायँ तथा आपके भेजने पर मुझे पहचानकर बातचीत करें—यह मैं [आपके दिये हुए] तीन वरोंमें-से पहला वर माँगता हूँ ॥ १० ॥

'वर'का अर्थ है, वरण करना, अधिकार प्रकट करना कि हम यह चाहते हैं। नचिकेताने यमराजके दिये तोन वरोंको इस प्रकार माँगा :

(१) अपने लिए नहीं, माता-पिता, ब्राह्मण, गुरुजनोंमें बँट-वारा हो सके, ऐसी वस्तु माँगी। मुख्य रूपसे पिताके लिए।

(२) साधारण जनताके लिए।

(३) अपने लिए।

(१) प्रथम वर उस पिताके लिए माँगा, जिसने उसे कहा कि 'मैं तुझे मौतके हवाले करता हूँ।' नचिकेताके वर माँगनेसे मालूम पड़ता है कि वह जिज्ञासु है। अपने हृदयमें कलुष नहीं रखता और न दूसरेके हृदयमें कलुष रहने देना चाहता है।

शान्तसङ्कल्पः—'हमारे पिताके हृदयमें जो संकल्प है, वह शान्त हो जाय।

गौतम ऋषिके हृदयमें बेटेके लिए बहुत ममता है। इसीलिए

RajGuru Math, Shivalaya, Guru Mandir Collection, Varanasi. Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह बेटेके लिए बढ़िया किस्मकी गायें रख लेता है और धर्म के लिए घटिया किस्मकी गायें आगे करता है।

एक माता मरने लगी तो उसने अपनी संपत्तिका बँटवारा किया : 'बेटेको पाँच लाख, बहूको एक लाख, बेटीको पाँच हजार, गुरुजीको पाँच रुपया मैं मर जाऊँ तब देना !' धर्मके लिए यह कितना आत्मत्याग है ? यह है लौकिक दृष्टि !

पिताको पुत्रके प्रति इतनी अधिक ममता है कि वह अपने लिए धर्म-परलोक भी नहीं चाहता, किन्तु नचिकेता समझता था कि मरनेके बाद उसकी क्या हालत होगी ? पिताके मनमें नाना प्रकारके संकल्प उठ रहे हैं—'मेरे मरनेके बाद मेरे बेटेका क्या होगा ? यमराज उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे ? ये गायें बचा रखी हैं, उनका क्या होगा ?'

पिताके मनमें ये संकल्प क्यों उठते हैं ? साधुओंका कहना है : "संसारमें सम्यक्त्वकी कल्पना ही संकल्प है कि 'हमें आगे बहुत सुख और यश मिलेगा। यह चीज बहुत बढ़िया है। हमारी खूब वृद्धि बढ़ेगी, आयु लम्बी होगी" आदि ! मनुष्य दुनियाकी उन-उन चीजोंके बारेमें महत्त्वबुद्धिपूर्वक सोचता रहता है, जिनसे उसे बुद्धि, धन, आयु, यश आदि मिलनेकी आशा होती है। इस संकल्पके कारण ही मनुष्य अपनी आँखके सामनेवाली वस्तुको ठीक-ठीक नहीं देख पाता।

एक आदमी कल हमसे मिलने आया। उसने दस मिनट बातें कीं। छह महीना पूर्वकी तकलीफ सुनायी और छह महीने पश्चात्की बात बतायी कि वह क्या करना चाहता है। एक वर्षके भीतरकी कोई बात नहीं थी। उस समय हमारा मन बहुत अच्छी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बात सोच रहा था, वर्तमानकी बात थी, भूत-भविष्यकी नहीं। उसने ऐसा गोला मारा कि हमारा मन भूत-भविष्यमें चला गया। ये लोग अपनेको बहुत बुद्धिमान् मानते हैं।

सम्यक् कल्पना ही संकल्प है। 'कृपण' शब्द भी इसी धातुसे बनता है। 'कृणुत, कृत, कृतार्थ, कृपण, कार्पण्य सब इसीसे बनते हैं। 'कृण-वृत्ति' यानी कल्पना। सत्यको छोड़कर कल्पनाके राज्यमें भटकना संकल्प करना है। एकने हमसे कहा : 'खयाली पुलाव मत पकाया करो।'

हमने उससे कहा : 'खयाली पुलाव' मत कहो, पुलाव ही कहो।' यह बहुत बुरी चीज है।

सुषुप्ति और मूर्च्छामें भी संकल्प शान्त हो जाते हैं। बच्चेको कोई एकआध तमाचा जड़ दे तो एकआध मिनटके लिए तो उसका दिमाग ऐसा हो जाय कि उसे कुछ सूझे ही नहीं!

संकल्प शान्त होनेसे ही अन्तःकरणशुद्धि नहीं हो जाती। प्राणायाम करनेसे भी संकल्प शान्त हो जाता है, पर मनमें काम-लोभादिकी वृत्ति बनी रहती है। किसीने हमें बताया था कि मनमें काम-क्रोध-मोहकी वृत्ति आये तो नाक दबाकर साँस रोक लो, तो मन शान्त हो जायगा। बात ठीक है, पर साँस छोड़ते ही फिर वही, सोकर उठने पर फिर वही! थोड़ी देरके लिए संकल्प शान्त करनेसे काम नहीं चलता। हमारा मन कोई शान्त करे, यह धारणा गलत है। जो लोग नस दबाकर, आसन-प्राणायाम लगवाकर अपनी नजर या संकल्पसे मेस्मराइज कर तुम्हारा मन शान्त कर देते हैं, वह शराब, अफीम, भाँग-गाँजेके नशा-को-सो ही बात है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection, Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हाँ, तो यमसे नचिकेताने पहला वर माँगा : 'मेरे पिताका मन शान्त हो।' तो उनका मन शान्त हो गया !

सुमना :=सुष्ठु मन। शान्त होना और सुष्ठु मन होना अलग-अलग है। सुमनामें संकल्प एक नहीं हजार उठें, पर अच्छे उठें। केवल शान्त संकल्प होना अन्तःकरणकी शुद्धि नहीं। मन सुन्दर, प्रसन्न, निर्मल होना चाहिए। जैसे सड़क पर कोई अमीर-गरीब, पण्डित-मूर्ख, सुखी-दुःखी, राजा-भिखारी, गाय-कुत्ता आयें-जायँ, हमारी आँख तो अपनी जगह पर ज्यों-की-त्यों रहती है। कभी-कभी आँख लाल होती है तो आप अपनी आँखको नहीं बिगाड़ते, आँखका गोलक लाल होता है। आँख तो केवल रोशनी है। आप सुलोचन ही रहते हैं, गोलक कुगोल हो जाता है। आँख तो आने-जानेवाली चीजको दिखाती है। वैसे ही अन्तःकरण शीशा है। उसमें जो चीज सामने आती है, उसकी परछाईं पड़ती है। सब आ-आकर चला जाता है, शीशा अपने आप ज्यों-का-त्यों रहता है। आप समझते हैं, रंगके कारण शीशेका रंग बदल गया, या उसे रंग लग गया, किन्तु वैसी बात नहीं। अन्तःकरणका शीशा-प्रकाशक ज्यों-का-त्यों है। और भीतर चलो तो अपने ज्ञान-स्वरूप शीशेमें कई चीजें आती-जाती-नाचती रहती हैं और ज्ञान-स्वरूप आत्मा ज्यों-का-त्यों स्वयं प्रकाश, नित्यशुद्ध सूर्यवत् बना रहता है।

हम राग-द्वेषके कारण तादात्म्य करके अपनेको शुद्ध-अशुद्ध मानने लगते हैं। न सूर्य अशुद्ध है, न आँख ! अन्तःकरणकी उपाधिसे ज्ञानस्वरूप चैतन्य पर शुद्ध-अशुद्धका आरोप कर लेते हैं। जैसे गोलककी उपाधिसे नेत्रको हम लाल मान लेते हैं, विष्ठाकी अशुद्धिसे सूर्यकी रोशनी पर अशुद्धि आरोपित कर लेते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं, वैसे दृश्यकी अशुद्धिका हम अपने आत्मा पर आरोप कर लेते हैं। असलमें हमारे आत्माका उसके साथ किञ्चित् भी सम्बन्ध नहीं इसलिए : **सुमना यथा स्यात्**।

सुमन हो जाओ। सुमन यानी निर्दोषिता, दिव्यता, पवित्रता, विद्वान्, देवता, शुद्धमन।

अन्तःकरण एक कमल-पुष्प है, उसे खिला हुआ रखो। जो तुम्हारे सामने आये, उसे आनन्दका एक कण दे दो। विहारीजीमें सायंकालकी आरतीमें जाओ तो प्रसादका एक किनका देते हैं। वैसे तुम्हारे हृदयमें भी बिहारीजी रहते हैं। तुम्हारे सामने, तुम्हारा दर्शन करनेको जो कोई आये—श्रद्धालु हो या अश्रद्धालु, उसे भी प्रसन्नता-प्रसादका एक कण दे दो।

भागवतमें एक श्लोक है। श्रीकृष्णको देखकर उनकी पत्नियाँ क्या करती थीं? 'स्मायावलोक' = जरा-सी मुस्करा देती थीं। अर्थात् आनन्द भीतर है, फूल खिल गया, उसकी सुगन्ध और उसका सौन्दर्य प्रकट हो गया। आपके भीतर जहर है या अमृत? अपने पास जो है वही दोगे! जहरका प्रसाद मत बाँटो, अमृत बाँटो। जितना-जितना बाँटोगे, उतना-उतना वह बढ़ता ही जायगा!

वीतमन्युः—गुस्सा आता है तो रोज माफी माँगो। संध्या-वन्दनमें एक मन्त्र आता है:

सूर्यश्च माम् मन्युः मन्यु कृतेभ्यः पापेभ्यो रक्ष्यन्ताम्।
अग्निश्च माम्...............

अर्थात् हमने रात या दिन-भरमें यदि कोई अपराध किया हो, किसी पर गुस्सा किया हो, किसीको दुःख पहुँचाया हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो असलमें मैंने किसी दूसरेको दुःख नहीं पहुँचाया। वहाँ भी मैं ही हूँ! थूक सूर्य पर नहीं पड़ता, लौटकर हम पर ही आता है। किसीको दुःख पहुँचायेंगे, तो आज नहीं तो कल वह लौटकर हमारे पास आयेगा! दूसरेके घरमें आग लगायेंगे तो हमारे घरमें भी लगेगी। पेट्रोल हमारे घरमें भी है। उसको जैसे हो, हटाना चाहिए। रोज पहले यह संकल्प करो :

यत् पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्याम्
उदरेण शिश्ना......

'हमने मन, वाणी, हाथ-पाँव, उदर, मूत्रेन्द्रियसे, रात या दिनमें जो पाप या अपराध किया हो, वह मिट जाय'—ऐसी एक प्रार्थना है। 'हमारे हृदयमें जो बुराइयाँ भर गयी हैं वे मिट जायँ।'

नचिकेता कहता है—'हे मृत्यो, तुम्हारे भेजने पर हम पिताके पास लौटकर जायँ तो वे हम पर विश्वास करें कि 'मेरा पुत्र मृत्युके पास जाकर लौटा है।' वे हमारी सचाईको पहचानें! उनके संकल्प शान्त हों, क्रोध निवृत्त हो। मुझसे वे बड़े प्रेमसे बात-चीत करें।'

माभिवदेत्प्रतीतः—केवल व्यवहारमें ठीक रहे इतना ही जरूरी नहीं। यह व्यावहारिक त्रुटि है। लोगोंको भ्रम होता है कि कोई माने न माने, हम तो अच्छे हैं, ठीक हैं! अच्छा होना एक गुण है, लोगोंका विश्वसनीय होना दूसरा गुण। व्यापार तबतक नहीं चल सकता, जबतक हमारा व्यवहार विश्वसनीय नहीं होता। पत्नी विश्वास न करे तो समझो कि तुम्हारी रह-नीमें कोई-न-कोई त्रुटि है, भले ही तुम बहुत अच्छे हो। पुत्र-पुत्री, माँ-बाप, अड़ोस-पड़ोस सबका विश्वास हो। जैसे अच्छा रहना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर्तव्य है, वैसे विश्वसनीय रहना भी आदमीका कर्तव्य है। नचिकेता चाहता है कि 'मेरे पिता विश्वास करें' कि मैं मृत्युके पास जाकर, स्वागत-सत्कार कर लौट आया हूँ।'

तीन वरोंमें-से पहला वर है—'पिताको परितृप्त करना।'

माँ-बाप गुरुजन हैं, क्योंकि उनसे जन्म हुआ है। माँ-बापके समान वात्सल्य करनेवाले सब चाचा, पितामह, गुरु सबको नचिकेता संतुष्ट देखना चाहता है। सबसे उसे वात्सल्य मिले। धरती और राष्ट्र भी माता-पिता हैं। उसके प्रति भी कर्तव्यका भाव होना चाहिए। सूर्य, चन्द्र, धरती, जल, आग, वायु, आकाशके प्रति भी कृतज्ञ होना चाहिए। उन्हें गंदा न करें, यही कृतज्ञता है। सबके एक पिता परमात्माके प्रति भी कृतज्ञ होना चाहिए।

मनुष्य एक छोटे देहमें मैं करके अहंकारवश बड़ी शक्तियोंका तिरस्कार कर देता है। छोटेका अहंकार और बड़ेका तिरस्कार करनेसे क्रियाशक्तिका लोप हो जाता है। मनुजीने स्पष्ट लिखा है, 'जो बड़े-बूढ़ोंके और गुरुजनोंके प्रति कृतज्ञ नहीं होता, उसकी प्राणशक्तिका लोप हो जाता है।' जो एक देहको 'मैं' मानकर सम्पूर्ण सृष्टिके नियन्ताका तिरस्कार करेगा, उसपर अवश्य दुःख आयेगा! तुम्हारा मैं छूट जायगा तो ईश्वर भी सब शरीरमें 'मैं' करके नहीं आयेगा दोनों एक हैं। जबतक तुम 'अहम्' रखोगे तबतक ईश्वरके अहम्का तिरस्कार होगा जो हानिकारक है। अहंकार छोड़कर विनीत होना, भलेका चिन्तन और बड़ोंकी सेवा करना ही कल्याणकर है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Vardhman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१२. यमका प्रत्युत्तर

संगति :

नचिकेताने प्रथम वरदानमें अपने पिताका परितोष माँगा, यह बात १० वें मन्त्रमें बतायी गयी। अब यमराज यह वर प्रदान करते हैं—

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत
औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः ।
सुखँ रात्रीः शयिता वीतमन्यु-
स्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ ११ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुझसे प्रेरित होकर अरुणपुत्र उद्दालक तुझे पूर्ववत् पहचान लेगा और शेष रात्रिमें सुखपूर्वक सोयेगा; क्योंकि तुझे मृत्युके मुखसे छूटकर आया हुआ देखेगा ।। ११ ।।

यम कहते हैं : हे नचिकेता, **औद्दालकिः आरुणि : यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीतः, मत्प्रसृष्टः** मेरे द्वारा वापस भेजे जाने पर तुम्हारे पिता तुम पर वैसे ही आगे भी प्रेम और विश्वास करेंगे। जैसे पहले करते थे। उसमें कोई बाधा नहीं आयेगी।'

'औद्दालिकिः आरुणिः' से बताया कि यह अरुणके पुत्र हैं। पिताका क्रोध पुत्र पर तभीतक रहता है जबतक वह आपत्ति-विपत्तिमें न फँसे। मौतके मुँहसे बचकर आया देख वे अपना क्रोध भूल जायँगे। वास्तवमें तुम्हारे पिताका गुस्सा उसी समय उतर गया, जब वे बोले कि 'मैं तुझे मृत्युके हवाले करता हूँ' और तुम यहाँ चले आये! तुम मृत्युके मुखसे छूटकर जाओगे तो वे बड़े खुश होंगे—**त्वां ददृशिवान् मृत्युमुखात् प्रमुक्तम्।**

बड़ौदामें एक पति-पत्नी रहते हैं। उनका पुत्र बहुत बदमाश निकला। उन्होंने उसे घरसे निकाल दिया और लोगोंमें घोषणा कर दी कि 'उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। उसकी कर्जदारीसे हमारा कोई लेन-देन नहीं।' वह बम्बई दूसरेके यहाँ आया। फ्लेटमें चोरी हो गयी, नाम उसीका आया। उसे पुलिस पकड़कर ले गयी। तब वही पिता जाकर छुड़ा लाये। हमारे पास आकर कहने लगे : 'हमें देवताकी पूजा बताओ!'

सुखं रात्रीः शयिता : 'तुम्हारे पिताकी तो नींद ही छूट गयी है। तुम जाओगे, तभी उन्हें सुखसे नींद आयेगी। तुम पिताके गुस्सा होनेसे डर रहे हो, वह तो अब रहा ही नहीं।'

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitization by Jalgaon Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२३. द्वितीय वर : स्वर्गसाधन अग्निविद्या

संगति :

नचिकेताने प्रथम वर द्वारा अपने पिताका मन शान्त किया, अब दूसरे वर के रूप स्वर्गसाधनभूत अग्निविद्या विषयक जिज्ञासा करते हैं, जिससे लोग पुण्य-धर्म करें, सद्गति प्राप्त करें। यह दृष्टिकोण लोकहितकारी है।

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति
न तत्र त्वं न जरया बिभेति ।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १२ ॥

हे मृत्युदेव ! स्वर्गलोकमें कुछ भी भय नहीं है। वहाँ आपका भी वश नहीं चलता। वहाँ कोई वृद्धावस्थासे भी नहीं डरता। स्वर्गलोकमें पुरुष भूख-प्यास—दोनोंको पार करके शोकसे ऊपर उठकर आनन्दित होता है ॥ १२ ॥

जहाँतक स्थूल-शरीरका प्रश्न है, लोगोंकी धारणा रहती है कि 'भक्त, ज्ञानी, योगीको रोग नहीं होता, उन्हें नींद—सपने नहीं आते, वे खाते नहीं, उनकी साँस नहीं चलती। मतलब मनुष्य भक्त-ज्ञानी-योगी होने पर मर जायगा। यह निरी मूर्खता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidic Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञानमार्गके दुश्मन ही ऐसा अपवाद फैलाते हैं। इस चक्करमें कभी नहीं आना चाहिए। अन्न-पानीमें स्वाभाविक विकार होता है, वे सड़ते हैं। गेहूँ-चावल जैसे बाहर सड़ते हैं, वैसे खानेके बाद शरीरमें भी घी-दूध, अन्न, फल-फूलसे बने अंग भी सड़ते हैं। स्थूल-शरीरको जैसी भोगकी आवश्यकता है, वैसे रोग भी अवश्य होते हैं।

स्वर्गमें सूक्ष्म शरीर रहता है। वहाँ शारीरिक रोग नहीं होता, फिर भी वहाँ अग्निको अजीर्ण हो गया। यहाँके रोग वहाँ मूर्ति-मान् होकर निवास करते हैं। वहाँ बुढ़ापा नहीं, भोजन चबानेको दाँतकी आवश्यकता नहीं, पचानेको अँतड़ीकी आवश्यकता नहीं, चाहने मात्रसे वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है। वहाँ भय नहीं, यहाँ-जैसी मृत्यु नहीं, शोक नहीं!

तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे...

यह स्वर्ग कैसे मिले? उपादेय बुद्धिसे यह वर्णन नहीं किया गया है। नचिकेता आगे तीसरा वर माँगेंगे, 'ब्रह्मज्ञान'। तब हम जानेंगे कि उसे कोई भी लौकिक-पारलौकिक सुखसे संतोष नहीं हुआ है। ज्ञानप्राप्तिके लिए दोनोंसे वैराग्य आवश्यक है। भले ही पूरे कल्प या मन्वन्तरके लिए सूक्ष्म शरीर मिल जाय जिसमें कभी रोग, बुढ़ापा, भूख-प्यास, भय-मृत्यु न हो। फिर भी पर-मात्माका ज्ञान पानेसे जैसे सुखकी प्राप्ति होती है, वह वहाँ सुलभ नहीं। परमात्माका ज्ञान प्राप्त करनेकी लोग कोशिश करें, इसलिए यह वर्णन किया जा रहा है। नचिकेताके तीसरे वरमें क्या-क्या विशेषताएँ है, यह तबतक मालूम नहीं पड़ेगी जबतक इसके पहलेकी वस्तुओंको ठीक-ठीक न समझ लिया जाय।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vigyan Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२४. अग्निविद्या और श्रद्धा

संगति :

लौकिक परिपुष्टि पहली चीज है। नचिकेताने प्रथम पिताका संतोष चाहा। अन्तःकरण शुद्धिकी दृष्टिसे देखा जाय, तो एक साधन-सम्पन्न पुरुषमें न्याय, भक्ति, दृढ़ता, त्याग, निर्भयता, पिताकी हितैषिता आदि जो गुण होने चाहिए वे सब किसी भी मनुष्यके जीवनमें हों तो वह कितना उन्नत होगा? युवा, आशिषः, दृढिस्था, विद्वान् हो, दूसरोंको पछाड़ भी देता हो तो उससे बढ़कर उसके जीवनमें और क्या चाहिए?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह तो कुएँ में भाँग पड़ गयी है, जो लोग सोचते हैं, हमारे पास मोटर और बैंकमें पैसे होनेपर हम सुखी हो जायँगे। वास्तवमें यह तो बुद्धिका भ्रम है। यदि जीवनमें आशाके साथ काम पूरा करनेकी दृढ़ता हो, निराशाका अंधकार न होकर उत्साह हो, उससे दूसरोंको लाभ मिलता हो तो इससे बढ़कर मनुष्य जीवनमें और क्या श्रेष्ठता हो सकती है? घरमें रखे धनको छोड़कर कितने लोग मर गये और कितने मर जायँगे! राजा-रजवाड़ोंके दादा-परदादाके, और अपने बनवाये महल-के-महल छूट गये; न उनमें दिया जलता है, न झाड़ू लगता है। ऐसी छोटी-मोटी चीजों पर अभिमान करना कोई बुद्धि-मत्ताकी बात नहीं।

नचिकेताको मृत्युका भय नहीं है, वह मृत्युको देख रहा है। मृत्युदेव उसे देखकर प्रसन्न हो रहा है। वह मृत्युसे वर माँग रहा है 'स्वर्गमें न रोग है, न भय; न बुढ़ापा है, न मृत्यु, न भूख-प्यास और न मनमें शोक-मोह! तब तो स्वर्ग बड़ा आनन्दका स्रोत है! ऐसे आनन्दकी प्राप्ति अग्नि द्वारा होती है!' नचिकेता यमसे कहता है: आप जिस अग्निके बारेमें जो जानते हो, सो मुझे सुनाइये:

स त्वमग्निँ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो
प्रब्रूहि त्वँ श्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त
एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण ॥ १३ ॥

हे मृत्यो! आप स्वर्गसे साधनभूत अग्निको जानते हैं, सो मुझ श्रद्धालुके प्रति उसका वर्णन कीजिये, [जिसके द्वारा] स्वर्गको प्राप्त हुए पुरुष अमृतत्व प्राप्त करते हैं। दूसरे वरसे मैं यही माँगता हूँ ॥ १३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्येषा = विद्वन्, 'ऐसे स्वर्गकी प्राप्तिके साधन अग्निदेवताको तुम भलीभाँति जानते हो। ऐसा स्वर्ग अग्निसे कैसे मिलता है?' यह नचिकेताने प्रश्न किया। अधिकांश लोग पुराणोंकी कथा सुनते हैं। उनकी बुद्धिमें पुराणोंके स्वर्ग और अग्निविद्या बैठी हैं, लेकिन वेदोंमें इनका वर्णन दूसरे रूपका है। दर्शनशास्त्रमें ज्ञानाग्निकी महिमा है।

लोकमें जिसके घर अग्नि न हो, वह केवल होटलमें आँर्डर देकर अपने मनका भोजन नहीं पा सकता। जैसे संगीतमें नाना प्रकारकी राग-रागिनियाँ और उनकी विद्या होती हैं, वैसे ही भोजनके विविध व्यञ्जनादिकी भी एक विद्या है। अलग-अलग देशोंमें इत्रोंकी अलग-अलग पद्धति विद्यमान है। वह सूँघनेके लिए नासिकाका उपभोग है। आँखके लिए विशेष-विशेष प्रकारके रूप-रंग हैं। जिह्वाके लिए विविध आस्वादन हैं, जो एक होनेपर भी पांच हजार वस्तुओंको भोगती है। आस्वादनमें भौतिक अग्निका हाथ है। बिजली, सूर्यकी रोशनी, वायुकी गति और अग्नि न हों तो इतने प्रकारके भोग तैयार ही न हा सकें। पेटमें जठराग्नि है, धरतीमें पार्थिव अग्नि है, लकड़ी, बिजली, सोना सबमें आग है। यह सारा व्यवहार अग्नि द्वारा सम्पन्न हो रहा है। यह तो स्थूल अग्निकी बात हुई।

सूक्ष्म-शरीरका निर्माण करनेवाली और कारण-शरीरका विध्वंस करनेवाली ज्ञानाग्निसे चैतन्यानुभूतिमें प्रतिवन्धकी निवृत्ति होती है। भौतिक अग्निसे चावलका कच्चापन दूर होता है, अध्यात्माग्नि—ज्ञानाग्निसे बुद्धिका कच्चापन और कलुष दूर होता है, शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

हमारे शरीरमें सर्वत्र आग व्याप्त है। अमुक परिमाणमें थर्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Jalgaon Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मीटर हमें शरीरकी गरमी न बताये तो हम जिन्दा नहीं रह सकते। विराट्में सूर्यकी प्रधानता है। सूर्य, अग्नि और वायु न हों तो विराट्-सृष्टि ही न मालूम पड़े। जबतक आप पेटकी आग बुझानेमें लगे हैं, तबतक निष्ठा व्यक्तिगत है। अग्निकी आराधना कर जब सम्पूर्ण सृष्टिमें व्याप्त अग्निसे तादात्म्य होगा तो विराट्से एकत्व प्राप्त करोगे और व्यक्तिगत घेरेसे छूट जाओगे।

विराट् आदित्य, विराट् वायु, विराट् अग्निके साथ तादात्म्य स्वर्गसुखका मूल कारण है। विश्वसृष्टिमें व्याप्त अग्नि हमारी गर्मी है, वायु हमारी साँस-प्राण है, सूर्य हमारी ज्योति है। पृथ्वीको जल-में और जलको अग्निमें लीन करो। अग्निका एक रूप दाहकत्व-गरमी है, एक रूप प्रकाशकत्व सूर्य है। वायु यानी गति। सम्पूर्ण विराट्में व्याप्त प्रकाश गति और उनके अधिष्ठाताके बिना न क्रिया हो सकेगी, न भोजन-आप्यायन जल द्वारा, न शरीरप्राप्ति होगी, न धरती होगी। ऐसी सम्पूर्ण धरती विराट्का एक अंग है। एक धरतीसे नहीं, सम्पूर्ण विश्वसे जिसमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं उससे तादात्म्य करो। जो एक देह में 'मैं' करके बैठा है, उसकी समझमें यह बात नहीं आयेगी। सम्पूर्ण विराट्से तादात्म्य होने पर क्या एक शरीरमें होनेवाला रोग, मृत्यु, बुढापा, भूख-प्यास, संयोग-वियोग, शोक-मोह, सुख-दुःख तुम्हारा रहेगा? तब तुम यहीं-के-यहीं स्वर्ग-लोकमें पहुँच जाओगे। यही परमानन्दकी प्राप्तिका उपाय है। असलमें एकका मोह छोड़ सबसे तादात्म्यका नाम 'उपनिषद्' है।

'माण्डूक्य-उपनिषद्' में वैश्वानरको अग्नि कहते हैं। 'वैश्वानर' ही नाचिकेत है। नाचिकेत यानी अग्नि, विश्व-विराट्। स्थूल समष्टिसे एकत्व होनेपर जन्म-मरण, शोक-मोह, भूख-प्यास,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Vedic Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुढापा-मृत्यु आदि जीवनमें जितने द्वन्द्व, दुःख, ऊर्मियाँ हैं, उनसे छुटकारा मिल जाता है। इसीको स्वर्ग कहते हैं :

यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्।
अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वपदास्पदम्॥

इसमें पार्टीबन्दी नहीं रहेगी, न राजनीतिक दलबन्दी और समाजसुधार सम्बन्धी दलबन्दी। उसमें प्रान्तीयता, राष्ट्रियता, जातीयता कुछ भी नहीं। वहाँ व्यक्तिमूलक या जातिमूलक रागद्वेषके लिए कोई स्थान नहीं। जिसके व्यक्तिमूलक और जातिमूलक शोक, दुःख सूख जाते हैं वह तो वर्तमानमें—इसी जीवनमें स्वर्गमें रहता है। भावनात्मक होनेके कारण यह स्थिति सूक्ष्म शरीरकी है। जब तक भावना होगी तबतक स्वर्ग रहेगा। भावनाकी पकड़ छूटने और व्यष्टिसे तादात्म्य हो जाने पर स्वर्गसे लौट आना पड़ेगा। इसलिए इसके ऊपर एक ऐसी स्थिति है जहाँ इस स्थूल-सूक्ष्म शरीरमें आने-जानेवाले अज्ञान का ही ध्वंस हो जाता है।

निष्कर्ष यह कि १. दैहिक सुख-भोग लौकिक अग्निसे मिलते हैं, २. स्वर्ग, भावाग्नि = उपासनासे और ३. परमार्थसुख ज्ञानाग्नि द्वारा अज्ञानान्धकारकी निवृत्तिसे मिलता है। ये तीन कक्षाएँ हैं।

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम्। जहाँ जीव-व्यष्टि-अहंकारका नाश होता है वहाँ ईश्वर समष्टि-अहंकारका, प्रारम्भ-प्राकट्य होता है। इसलिए वेदोंमें स्वर्गलोकका बड़ा महिमापूर्ण वर्णन मिलता है। किन्तु वह भी भावनात्मक होनेके कारण उसका अन्त होगा। ज्ञानाग्निसे परमार्थकी प्राप्ति होती है, इसलिए उसे पाना आवश्यक है।

प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम् : नचिकेता यमसे विनयपूर्वक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निवेदन करता है कि 'मैं बड़ा श्रद्धालु हूँ, इसलिए आप मुझे कृपा कर इसका प्रवचन कीजिये।' इस स्वर्ग्याग्निका प्रवचन श्रद्धालु पुरुषके लिए ही होता है। उसमें श्रद्धा आवश्यक है। 'श्रद्दधानाय' में दो पद हैं 'श्रत्' और 'दधान'। 'श्रद्धा' का विग्रह है: श्रत्+धा। निरुक्तमें बताया है; 'श्रत् इति सत्यनाम। वेदमें जो 'श्रत्' वही लोकमें 'सत्य' है। उसे धा=धारण करना। 'दधानः' का अर्थ है धारण करनेवाला; 'धत्ते इति दधानः' मध्वाचार्यने 'श्रद्धा'का अर्थ बताया है: श्रत् इति आस्तिकतायाम् अभिधानम्।' अर्थात् 'श्रत्' आस्तिकताको कहते हैं।'

हम दिनभरमें सत्रह बार रोते-हँसते सुखी-दु:खी होते हैं; विश्वास-अविश्वास करते हैं। मनोराम बहुत गडबड़ो मचाते रहते हैं, संशयमें पड़े रहते हैं। 'संशय' यानी स्वप्न। शयनार्थक 'शम' धातु को 'स' उपसर्ग जोड़कर 'संशय' शब्द बना है। ये सो रहे हैं। एक ही आदमी कभी दोस्त है तो कभी दुश्मन! वह सोचता है कि 'हम पचास वर्ष जियेंगे, यह काम करेंगे, वह काम करेंगे और मौत आजाती है। मनीराम जैसे सपनेमें बदलते हैं, वैसे ही जाग्रतमें भी बदलते हैं। गौर करके देखो तो जाग्रत्-स्वप्नमें विशेष अन्तर नहीं है।

इन्द्रियोंसे देखे जानेवाले पदार्थोंमें या तो इन्द्रियाँ बता देती हैं या खुर्दबीन, दूरबीन यंत्रोंकी सहायतासे देख लेते हैं। किन्तु ये यंत्र भी हमारी इन्द्रियोंको ही मदद करते हैं, इन्द्रियातीतको कोई यन्त्र नहीं बताता। इन्द्रियातीतको देखना है तो सोमरसका पान करो, आँखें बन्द करो, शारीरिक स्थितिसे अलग हो कर स्वर्गमें पहुंच जाओगे।

हमारे सिरमें जो जीवाणु रहते हैं वे भावना-नियन्त्रक हैं। डॉक्टरों-वैज्ञानिकोंने पता लगाया है कि कौन किसका नियन्त्रण

RajGuru Math, Shivalaya, Jamuna Collection, Varanasi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करता है। हमारे भीतर एक ऐसा हिस्सा होता है जिसे विद्युत्के द्वारा उत्तेजित किया जाय तो मूर्च्छा, रोना, हँसना—आदि क्रियाएँ होती हैं। ये सब भौतिक ही हैं। उपनिषदोंमें इन काम-क्रोधादि मनोवृत्तियोंका बड़ा वर्णन है! भोजनमें जो सबसे मोटा हिस्सा होता है, वह मल बनता है, महीनका रक्त तथा वीर्य और अत्यंत महीनसे मन-बुद्धिके केन्द्र बनते हैं।' ये सब अन्न द्वारा निर्मित होनेसे अन्नमय हैं।

हमारे समूचे शरीरमें पाँच इन्द्रियाँ रहती हैं—नाक, कान, आँख, रसना, त्वचा। शरीरके निश्चित स्थान पर इनके विशेष-विशेष गोलक बने हुए हैं! वैज्ञानिक उन्हींमें उत्तेजना पैदा कर लौकिक विषय ग्रहण करानेकी योग्यता उत्पन्न करते हैं।

एक आदमीने कुत्ता पाल रखा था। दिनमें १२ बजे वह हाथमें रोटी लेकर कुत्तेको बुलाता। कुत्ता यह देखते ही पूँछ हिलाता, मुँहसे पानी गिराता दौड़ आता। वह आदमी किसी दिन रोटी न लाये, तब भी उस कुत्तेकी वही स्थिति होती। वैसे ही हमारी इन्द्रियोंको अमुक प्रकारके भोजनसे सुख-दुःखकी आदत पड़ गयी है। बनावटी दृश्य होने पर भी अभ्यासवश मनुष्यमें काम, क्रोध, लोभकी वृत्तियाँ उठती हैं। असलमें बाह्य वस्तुका आकर्षण नहीं है, हमारे हृदयकी बनावट ही ऐसी है कि हम देखकर तृष्णासे व्याकुल हो जाते हैं। इसीलिए हमारे ऋषि-मुनियोंने कहा है कि दिलको बढ़िया बनाओ। अलौकिक सुख पानेकी लालसा हृदयमें पैदा करो तो लौकिक सुख पानेकी तृष्णा-लालसा बिलकुल छूट जायगी। छूटी नहीं तो काबूमें तो आ ही जायगी। इसलिए 'श्रद्धा' आवश्यक है।

लौकिक वस्तु यंत्र और इन्द्रियसे मालूम पड़ती है। लेकिन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vainateya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रद्धाका रंग चढ़ाने पर दैवी वस्तुओंका, अन्तरका ज्ञान होता है। स्थूल-शरीरसे भोगी जानेवाली वासनाओंमें जब वस्तुके गुण और महत्त्व को धरते हैं, तब वासनाएँ हमारे जीवनका संचालन करती हैं। किन्तु जब हम अलौकिक ज्ञान, अलौकिक सुख, अलौकिक वस्तु, अलौकिक स्थानकी प्राप्तिके लिए हृदयमें श्रद्धा धरते हैं, तो लौकिक वस्तुओंकी ओर हमारी रुझान कम और अलौकिककी ओर अधिक होती है।

माना कि भौतिकतामें इन्द्रियसे लोककी प्रत्यक्ष उपलब्धि होती है और अपना ब्रह्मपन, द्रष्टापन, साक्षीपन, असंगपन तो स्वानुभूत हैं। आत्मा-परमात्माकी एकता, ब्रह्मानुभूति साक्षाद् अपरोक्ष है। लेकिन बीचमें यह 'अधिदैव' क्या है? हमारी लौकिक, स्थूल-वासनाओंको शुद्ध करने, नियन्त्रित कर मोड़नेकी आवश्यकता है। हमारे अध्यात्म-ज्ञानके साथ श्रद्धारूप महौषधिका मिश्रण अधिदैवका साक्षात्कार करता है। यह न शुद्ध भौतिक है, न शुद्ध अध्यात्म। न यह यंत्रगम्य है, न इन्द्रियगम्य। श्रद्धासंवलित अध्यात्म भौतिककी ओरसे मनको मोड़कर परमात्मामें उसे लगाता है, इसलिए श्रद्धासम्पन्न, संस्कारयुक्त अन्तःकरण द्वारा इसकी अनुभूति होती है।

यदि आपकी समझमें यह बात नहीं आती कि आप नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त ब्रह्म हो और अपनेको देहपरायण समझकर भोग-परायण हो रहे हो, दूसरेको भूखा और नंगा रखकर भी खूब खाना-पहनना चाहते हो, तो आप अपनेको समझदार न समझें। आप दूसरेके पास पैसा नहीं रखना चाहते और खुद करोड़ोंकी सम्पत्ति रखना चाहते हैं? इसी शरीरमें अहंता-ममताके दोषके निवारणके लिए नचिकेता जैसी समझ होगी तो मनुष्य तीसरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रश्न करेगा। जिसकी समझमें यह बात न आये, वह तीसरे प्रश्नका अभिप्राय समझनेकी कोशिश करे।

तीनों कक्षाओंके अनुसार अपनेको श्रद्धायुक्त ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण विश्वके साथ तादात्म्यापन्न करना पड़ता है। 'मैं सूर्यकी आँखसे सम्पूर्ण विश्वप्रपंचको देखता हूँ। वायु मेरी श्वास है, सम्पूर्ण अग्नि मेरी गरमी है, जो वैश्वानररूपमें सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्ड, विराट्में व्याप्त है, उसका प्रकाश मेरा प्रकाश है।' विश्वके साथ भावना द्वारा यह तादात्म्यस्थापन क्षुद्र देहाभिमानको मिटाता और ब्रह्मज्ञानके पास ले जाता है। इसलिए इसमें श्रद्धाकी बड़ी आवश्यकता है। श्रद्धा होनेपर अन्ततोगत्वा अपने नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त, अखण्ड, अपूर्व, अनपर, अद्वितीय ब्रह्मस्वरूपका ज्ञान होगा।

स्वर्गे लोके अमृतत्वं भजन्ते : स्वर्गमें पहुँचनेका अर्थ है, सम्पूर्ण विश्वके साथ अपनेको तादात्म्यापन्न कर देना। जो इस प्रकार तादात्म्यापन्न होता है, उसे अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। जीवनके व्यवहारमें जहर पीना पड़ता है और तब मन कड़वा होता है। हम कहते हैं 'सामनेवालेने दुःख दिया, ऐसा नहीं है। हमारे दिलकी बनावट ही ऐसी हो गयी है! सारी दुनिया भेड़िया-धसानकी तरह आशा कर-करके अपना दिल बिगाड़ती है कि 'हमें इतना रुपया मिलेगा। वह आदमी हमारे साथ इतने वर्षों तक रहेगा और हमें इतना प्यार करेगा!' अपने सूक्ष्म-शरीरको दिव्य बनाओ, तो बाहरकी यह आग तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेगी। नचिकेता बोला :

एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण।

'दूसरे वर द्वारा मैं इसीका वरण करता हूँ।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vigyan Bharti Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२५. मृत्युकी प्रतिज्ञा और नाचिकेत अग्नि

संगति :

चौदहवें मन्त्रमें श्रद्धा द्वारा अग्निविद्याके सम्पादनका उपदेश किया गया, जिससे अन्तमें साक्षाद् अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है। अब यमराज नचिकेताको ही 'अग्नि' और उसकी हृदय-गुहाके सूक्ष्मतम, अन्तरतम प्रदेशको 'स्वर्ग' बता रहे हैं :

> प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध
> स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् ।
> अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां
> विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥ १४ ॥

हे नचिकेता ! उस स्वर्गप्रद अग्निको अच्छी तरह जाननेवाला मैं तुझे उसका उपदेश कर रहा हूँ, तू उसे मुझसे अच्छी तरह समझ ले। इसे तू अनन्तलोककी प्राप्ति करानेवाला, उसका आधार और बुद्धिरूपी गुहामें स्थित जान ॥ १४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'हे नचिकेता ! हे जिज्ञासु ! अग्निका नाम तो 'नाचिकेत' है। यमराजने वरदान ही दे दिया : 'तुम्हारे नामसे अग्नि प्रख्यात होगा—'नाचिकेत:'।'

'नचिकेत'का दूसरा अर्थ है, संग्रह-परिग्रहमें जिसकी रुचि नहीं है। 'चिकेत' यानी चयन करना। गाय, पुत्र, पौत्र, धन जो भी यमराज देना चाहते हैं, उनमें नचिकेताकी कोई रुचि नहीं। नचिकेता शुद्ध जिज्ञासु है, जिसे चिकेत यानी चयन, ध्वजा (केतु), यश संग्रह या घर-गृहस्थीमें कोई रुचि नहीं है। रुचि है केवल ब्रह्म-ज्ञानमें।

यमराज कहते हैं : स्वर्ग्यमग्निं प्रजानन् ते तुभ्यं प्रब्रवीमि। 'मैं परमानन्ददाता अग्निको जानकर तुम्हें बताता हूँ। सावधान होकर इसे समझो।' साकारताका जहाँसे प्रारम्भ होता है, वे सब चीजें पृथ्वी, जल और अग्निसे बनी हैं। अग्निसे ही साका-रताका प्रारम्भ होता है। वायु स्पर्शशील है, साकार नहीं। वह रूपवान् और दृश्य नहीं। आकाशमें भी न रूप है और न स्पर्श! अग्निमें शब्द-स्पर्श है। सूर्य, चन्द्र और अगणित तारे अग्निसे ही उत्पन्न हुए हैं। कोई इनके कारणका चिन्तन करता हुआ अग्निदेवतक पहुँच जाय, तो वह साकारतामें विद्यमान दोषोंसे मुक्त हो जाय। अनन्तलोककी प्राप्ति होनेकी यही पद्धति है।

सृष्टिमें अग्नि सर्वत्र व्याप्त है। आकाश, सूर्य, चन्द्र, समुद्र धरती सबमें ऊष्मा है। अग्निसे तादात्म्य होनेका अर्थ है, सम्पूर्ण सृष्टिसे तादात्म्य होना। यही स्वर्गप्राप्ति या प्रतिष्ठाकी प्राप्ति है। यमराज कहते हैं : "यह स्वर्ग्याग्नि-प्रतिष्ठा हृदयगुहामें रहती है। 'बुद्धिस्थ अग्नि' का ऐसा चिन्तनकर, कर्म-उपासनाका समुच्चय कर तुम इस सद्गतिको प्राप्त कर सकते हो।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै
या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्त-
मथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥ १५ ॥

तब यमराजने लोकोंके आदिकारणभूत उस अग्निका तथा उसके चयन करनेमें जैसी और जितनी ईंटें होती हैं एवं जिस प्रकार उसका चयन किया जाता है, उन सबका नचिकेताके प्रति वर्णन कर दिया। उस नचिकेताने भी जैसा उससे कहा गया था, वह सब सुना दिया। इससे प्रसन्न होकर मृत्युदेव फिर बोले ॥ १५ ॥

श्रुति भगवती कहती हैं : 'यह जो सृष्टि दिखाई पड़ती है— मृत्युलोक, स्वर्गलोक, पाताललोक, मनुष्य, पशु, पक्षी, सबके आदिमें अग्नि है। इसीलिए अग्निब्रह्मका उपदेश किया और उपासनाका ढंग भी बताया।

इष्टकाः यावतीः यथा वा। इष्टका = ईंटका प्रयोग, इष्टका-न्यास, शिलान्यास। नींवमें ईंट देनी पड़ती है। यज्ञ करते समय अग्निके चयनमें दीवार बनायी जाती है। ३६० दिन और ३६० रात्रिके एक संवत्सरकी गणना कर ७२० ईंटें चुननी पड़ती हैं। वैसे दो-तीन-चार संवत्सर ही नहीं, सम्पूर्ण कालमें अग्निका चयन करना रात्रि-दिन अग्निका विलास है, यह बात बुद्धिमें बैठा लेना। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड, पृथिवी, जल केवल अग्निरूप हैं— यह कर्मसमुच्चित उपासना अर्थात् बुद्धिपूर्वक विचारकर और फिर कर्म-उपासना द्वारा ध्यानपूर्वक काम करना 'अग्निविद्या' है। मृत्युदेवताने नचिकेताको इसका उपदेश किया और उसने सावधान होकर सुना, इसलिए मृत्युदेवता उसपर बड़े प्रसन्न हुए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vimarsh Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१६. यमराजका विशेष वर-प्रदान

संगति :

तीन दिन और तीन रात्रिके उपवासके बदलेमें यमराजने नचिकेताको पहले तीन वर दिये। यह तो एक प्रकारका बदला हुआ। यमराज केवल बदलेकी वस्तु नहीं, अधिक-से-अधिक वस्तु देते हैं। 'प्रीयमाणः'—वे प्रसन्न हो गये थे। गुस्सा और प्रसन्नता दोनों बाँझ हैं यदि कोई गुस्साकर किसीका कुछ न विगाड़ सके और प्रसन्न होकर कुछ न दे सके। अग्निदेवतास्वरूप यमराज प्रसन्न हुए। **मृत्युर्यस्योपसेचनम्। यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।** ब्राह्मण-क्षत्रिय या प्रज्ञा और प्राण दोनों यमराजके भात हैं। अर्थात् यमराज-तत्त्वका वह स्वरूप है जिसमें प्राण और बुद्धिकी उपाधि बाधित हो जाती है। वे मौतको चटनी बनाकर खाते हैं। ऐसे मृत्यु-देवता प्रसन्न होकर नचिकेताको एक और वर देते हैं।

तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा
वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।
तवैव नाम्ना भवितायमग्निः
सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥ १६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vijayanagar Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महात्मा यमने प्रसन्न होकर उससे कहा : अब मैं तुझे और भी एक वर देता हूँ। यह अग्नि तेरे ही नामसे प्रख्यात होगा और तू यह अनेक रूपोंवाली माला ग्रहण कर ॥ १६ ॥

तवैव नाम्ना भवितायमग्निः। यमराजने नचिकेतासे कहा : 'तुम्हारे ही नाम—'नाचिकेत' (नचिकेता-सम्बन्धी)से यह अग्नि प्रसिद्ध होगा। मैं तुम्हें एक यश यानी अनेक रूपरत्नोंका यह हार पुरस्कार-स्वरूप देता हूँ।' मतलब हारसे नहीं है, अकुत्सिता कर्मगतिसे है। 'जिसे पाकर कभी दुःख न भोगना पड़े, ऐसी लोक-लोकान्तरकी गति तुम्हें प्राप्त होगी। तुम इसे स्वीकार करो।'

सृङ्कां=कर्ममयी गति या रत्नोंकी माला। यहाँ भाष्यकारोंकी महिमाका परिचय मिलता है। सृङ्का अर्थात् आनन्दित कर्मगति दी जा रही है। दूसरी वल्लीमें फिर त्यागके लिए, निन्दाके लिए 'सृङ्का' का प्रयोग छोड़ोके अर्थमें है :

नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो
यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः।

कोई किसीसे कहे—'तुम यह कपड़ा फेंक दो और यह पहनलो।' फटा-मैला पहनने लायक न होनेके कारण फेंकनेको कहा गया, पर अच्छा था तो पहननेके लिए कहा। 'सृङ्का' 'देना' अर्थमें अच्छा है, 'छोड़ना' अर्थमें बुरा है। जब यमराजने कहा : 'हे नचिकेता, तुमने तो इस सृङ्काका परित्याग कर दिया। बहुत-से लोग इसमें डूब जाते हैं। यह तो बहुत खराब चीज है।' इस प्रकार एक ही शब्दके दो जगह दो अभिप्राय हैं।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijayanand Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२७. ब्रह्मलोककी प्राप्ति और सिद्धियाँ

संगति :

यमराजने प्रसन्न होकर नचिकेताको रत्नमाला दी, किन्तु उसने उसे स्वीकार नहीं किया। नचिकेताका तीव्र वैराग्य, विवेक और प्रबल जिज्ञासा देख यमराज उसपर अतिशय प्रसन्न हुए। मन्त्र १७, १८ और १९ में 'नाचिकेत' अग्निचयनके फलका वर्णन करते हैं :

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं
त्रिकर्मकृत् तरति जन्ममृत्यू ।
ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा
निचाय्येमाँ शान्तिमत्यन्तमेति ॥ १७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vijaymerit Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रिणाचिकेत अग्निका तीन बार चयन करनेवाला मनुष्य [माता, पिता और आचार्य इन] तीनोंसे सम्बन्ध प्राप्तकर जन्म और मृत्युको पार कर जाता है। वह ब्रह्मसे उत्पन्न, ज्ञानवान् और स्तुतियोग्य देवको जानकर और उसका अनुभव कर अत्यन्त शान्तिको प्राप्त हो जाता है ॥ १७ ॥

नचिकेताने तीन बार अग्निका चयन किया। जिसने तीन बार अग्निका चयन किया हो, वह ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। किन्तु यह तो जुआ खेलना हुआ, क्योंकि ब्रह्मलोकमें जानेपर किसी-किसीको ज्ञान होता है, सबको नहीं। इसीलिए लोग वहाँकी आशा करते हैं। ब्रह्मलोकके बारेमें लोगोंके चित्तमें तरह-तरहकी धारणाएँ हैं।

एक आदमीको भ्रम हो गया कि 'मैं सबका साक्षी हूँ। मुझे जैसे अपने मनकी बातका पता लगता है, वैसे ही सबके मनकी बातका पता लगे।' ऐसा तो सभीके मनमें आता होगा। शुरू-शुरूमें मुझे भी एक-दो दिन ऐसा ही लगा।

एक महात्माको साधनाके फलस्वरूप सबके मनका पता लगने लगा। उन्हें बड़ा दुःख हुआ कि 'एक मनकी बुराई जानकर तो दुःखी थे ही, अब सबके मनकी बुराई जानने लग गये, तो क्या कहा जाय? इससे वे अत्यन्त विक्षिप्त रहने लगे। अन्ततः उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की कि 'प्रभो! मैं साक्षी नहीं बना, तुम्हारी समानान्तर सरकार हो गया। जैसे ईश्वर सबके दिलकी जानता है, वैसे मैं भी जानने लगा हूँ। मैंने तुम्हारा बड़ा अपराध किया है, क्षमा करो नाथ!' मजा यह कि किसीके मनकी बात मालूम न हो, इसलिए अब उन्होंने भगवान्की आराधना की।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एकने हमसे एकबार पूछा : 'हम पितर-लोकमें हैं या नहीं ?'

मैंने कहा : 'हो, तुम पितर-लोकके अधिष्ठान हो। तुम तो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मा ही हो।'

वे बोले : 'तब तो हमें यह भी मालूम पड़ना चाहिए कि चन्द्रमाके आगे पितृलोकमें जो पितर रहते हैं, वे कैसे रहते हैं ? आखिर हमें यह क्यों नहीं मालूम पड़ता जब कि हम वहाँ भी हैं ?

मैंने कहा : 'भाई, वहाँकी बात वहाँके गोलकसे और यहाँकी बात यहाँके गोलकसे मालूम होती है। गोलककी परिच्छिन्नतासे परिच्छिन्न विषयका ज्ञान होता है। साक्षीका सम्बन्ध परिच्छिन्न गोलकोंसे नहीं है। कतिपय गोलकोंसे मात्र कतिपय विषयोंको ही जानें, ऐसा सम्बन्ध अखण्ड साक्षीका कहीं नहीं होता। यह इसीसे सिद्ध है कि दूसरोंके शरीरकी बात न जानने या अपने शरीरकी जाननेके साथ भी साक्षीका कोई सम्बन्ध नहीं। प्रत्येक अन्तःकरणमें एक-एक छोटा-छोटा 'अहम्' धर्मी है और वही 'मैं' है। वह दूरबीन-खुर्दबीन लेकर बैठा है और अपनी सीमामें आनेवाली सभी चीजोंको जानता है। साक्षी कोई दूरबीन-खुर्दबीन नहीं लगाता !'

सारांश, यहाँ बताया कि 'ब्रह्मलोकमें जानेके बाद भी कामना रह जाने पर मुक्ति नहीं होगी। अब आगे ब्रह्मलोकमें जानेवालेका कैसे मुक्ति मिलती है, यह बताते हैं : त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिम्.........।

यहाँ साक्षात् अमृतत्व ब्रह्मज्ञान ही है, परा शान्ति नहीं। शान्ति और अमृत दोनों आपेक्षिक है। नचिकेताने तीन बार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by RajGuru Math Shivala Varanasi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुष्ठानरूपमें अग्निका चयन किया, अर्थात् उसे अग्निविद्या मालूम है।

त्रिभिरेत्य सन्धिं=त्रिभिः सन्धानम् एत्य।

जीवनमें तीन स्थान सीखनेके हैं। १. माँसे सीखना पड़ता है। ऐसा कोई नहीं, जिसे माँसे सीखना न पड़े। बच्चेको दूध पीना नहीं आता। हमने कुत्तेके बच्चेको गौरसे देखा। कुतिया ब्याती है, तो बच्चोंके आगे जमीन पर लेट जाती है। बच्चे अन्धे होते हैं। वे माँके शरीर पर अपना मुँह इधर-उधर घुमाते हैं। स्तन मिल जाता है तो मुँहमें ले लेते हैं और दूध पीना शुरू करते हैं। इनमें तो इतनी प्राकृतिक प्रेरणा है, किन्तु मनुष्यके बालकको अपने आप दूध पीना नहीं आता, उसे तो माता ही पिलाती है। कुतियाके हाथ नहीं होते, मनुष्यकी माताको तो हाथ होते हैं। वह बच्चेको अपने हाथसे गोदमें लेती है, स्तनके सिरपरके बन्ध खोल देती है, बच्चेके मुँह पर थोड़ा दूध गिरा देती है। जब बच्चेको स्वाद आता है, तो चपर-चपर पीना शुरू करता है। इस प्रकार माता बच्चेको दूध पीना सिखाती है। तात्पर्य यह कि हमें माता-पिता और आचार्यसे शिक्षण प्राप्त होता है। जीवनके प्रारम्भमें माता, यज्ञोपवीतपर्यन्त पिता और समावर्तनपर्यन्त आचार्य मनुष्यको शिक्षण देता है। पहले इनसे शिक्षा प्राप्त कर लेनी चाहिए, क्योंकि ये तीनों प्रामाण्य-कारण हैं।

माँ बताती है : 'यह तुम्हारी आँख है, हाथ है' आदि। तुम्हें किस प्रमाणसे यह बात मालूम पड़ा? बुद्धिमें यह व्यवस्था पहले-पहल कहाँसे आयी? आपने अपना गोत्र, वंशपरम्परा, जाति कहाँसे जानी? बिन्दुको फैलाकर लकीर खींचकर 'क-अ' आदि अक्षर कैसे लिखा जाता है, यह कौन बताता है? रेखा भी बिन्दु ही है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खुर्दबीनसे रेखा बिन्दुरूपमें दीख पड़ेगी। इनसे बननेवाले अक्षर, शब्द, वाक्य, अर्थसंकेत ये सब आचार्यसे सीखे जाते हैं। यह सब हृदयसे नहीं निकला। अमेरिका-रूसकी प्रयोगशालामें यह सीखा है, ऐसा मत समझना। माता-पिता-आचार्यकी पाठशाला ही यह काम देती है। श्रुति कहती है :

मातृवान् पितृवान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।

जो माता-पिता-आचार्यमें निष्ठा रखता है, वह उसे जानता है।

प्रामाणिकताके तीन और प्रमाण हैं : वेद (श्रुति), स्मृति और शिष्टपुरुषोंका आचार (सदाचार)। अथवा प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।

वेदोखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचार्यश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥—मनु

वेद यानी श्रुति अपौरुषेय वाक्य। उसकी स्मृति अपने हृदयमें रह जाती है। स्मृतिमें कभी गड़बड़ी हो जाती है, सांकर्य हो जाता है। इसीलिए स्मृतिको स्वतः नहीं, परतः प्रमाण मानते हैं। श्रुति-स्मृतिके अनुसार सत्पुरुष जो आचरण करते हैं उसे 'सदाचार' कहते हैं। मनुने इनसे अतिरिक्त एक चौथा भी प्रमाण 'आत्मतुष्टि' माना है अर्थात् सदाचारनिष्ठ पुरुषके सात्त्विक अन्तःकरणको जो उचित प्रतीत हो, वह।

प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण दार्शनिक मानते हैं। 'प्रत्यक्ष' यानी इन्द्रिय द्वारा उपलब्ध ज्ञानका कारण। 'अनुमान' कहते हैं बुद्धिद्वारा उपलब्ध ज्ञानका कारण और 'आगम' है, इन दोनों प्रमाणों द्वारा अज्ञात अर्थके विषयमें अनादि परम्परासे प्राप्त ज्ञानका कारण—वेद अथवा कुरान, त्रिपिटक, जैनागम, बाइबिल। धर्मसे स्वर्ग या अप्रत्यक्षके बारेमें शास्त्र द्वारा ज्ञान प्राप्त होने पर अन्तःकरणकी शुद्धि होती है,।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vijayanagar Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रिकर्म=थोड़ा अध्ययन, यज्ञ और दान। यही है तीन बार अग्निका चयन। तीन आचार्यों या वेदादि तीन प्रमाणोंसे जाननेकी चेष्टा करना तीन बार अग्निचयन है? इसके द्वारा मनुष्य भव-संतरणके मार्ग पर चलता है।

आगमें डाल-डालकर देखें कि क्या बच रहता है, अथवा अनुमान न चले तो बोलकर पूछते हैं। अंधेरेमें आते हुए आदमीकी जब पहचान नहीं होती तो उसके पाँवकी धमक और चेहरेके अनु-मानसे उसे पहचाननेकी कोशिश की जाती है। तब भी न पहचान पाये, तो बोलकर पूछते हैं और उत्तरमें 'मैं अमुक हूँ' की आवाज सुनाई पड़ने पर पहचान होती है। जहाँ सूर्य-ज्योति और बुद्धि-ज्योतिसे काम नहीं चलता, वहाँ वाक्-ज्योति काम देती है।

ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा। हिरण्यगर्भसे पैदा होनेके कारण यह अग्निदेव 'ब्रह्मज' और ज्ञाता भी हैं, कारण वे सर्वज्ञ हैं। वे सबको प्रकाशित करनेवाले (देव) हैं। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और धर्म उनके अन्दर हैं। ऐसे ये अग्निदेवता 'ईड्यम्' माने स्तुत्य हैं।

निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति। 'निचाय्य'—शंकराचार्यने एक शब्दका प्रयोग किया है:—आत्मभावेन। यऽसावग्निः सोऽसावहम्—यह जो अग्निदेवता है, वही मैं हूँ। आत्मभावेन= पृथिवीके मूलमें जल, जलके मूलमें अग्नि है। पृथिवीसे जितने सम्बद्ध हैं—वस्तु, भोग, प्राणी, सभी पृथिवीके कारण हैं। जितने स्वाद हैं वे जलके कारण हैं। 'जलके मूलमें जो अग्नि है वह मैं हूँ' यह कारणो-पासना हो गयी—कर्म-उपासनाका समुच्चय हो गया। जिसने इसे आत्मभावसे जान लिया और साक्षात्कार किया कि 'मैं अग्नि हूँ' वह शान्त यानी उपरत हो जाता है। वह समझने लगता है कि जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुःख और भोग मेरे पास आते हैं, वे मुझमें भस्म हो जाते हैं। मैं अग्निरूप हूँ। संसारका कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं, जो मुझे धर्षित कर सके।'

अग्नि होनेका अर्थ है, विराट् पदको प्राप्त कर लेना। विराट्की व्युत्पत्ति है: 'विशेषेण राजते इति विराट्'। आदित्य, अग्नि और वायु इन तीनोंसे विराट्-पदमें होनेवाली युक्तताको जो ज्ञान-कर्मके समुच्चयके, अनुष्ठानसे प्राप्त कर लेता है, वह अग्नि हो जाता है।

ब्रह्मज्ञान हो गया तो सच्ची मुक्ति मिल गयी। है तो यह भावना या कल्पना ही! वासना रह गयी तो फिर जन्म-मरणके चक्करमें आना पड़ता है।

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा
य एवं विद्वाँश्चिनुते नाचिकेतम्।
स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्य
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥ १८॥

जो त्रिणाचिकेत विद्वान् अग्निके इस त्रयको [यानी कौन ईंटें हों, कितनी संख्यामें हों और किस प्रकार अग्निचयन किया जाय, इसको] जानकर नाचिकेत अग्निका चयन करता है, वह देहपातसे पूर्व ही मृत्युके बन्धनोंको तोड़कर शोकसे पार हो स्वर्गलोकमें आनन्दित होता है॥ १८॥

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो
यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनास-
स्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व॥ १९॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection. Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे नचिकेता ! तूने द्वितीय वरसे जिसका वरण किया था, वह यह स्वर्गका साधनभूत अग्नि तुझे बतला दिया। लोग इस अग्निको तेरा ही कहेंगे। हे नचिकेता ! तू तीसरा वर माँग ले॥ १९॥

यम कहते हैं 'यह निश्चित है कि अग्निचयन तो तुम्हारा हो ही गया। यदि इस समय तुमने तत्त्वको नहीं जाना तो ब्रह्मलोकमें जाओगे, मृत्युपाशसे तुम मुक्त हो जाओगे अर्थात् तुम सम्पूर्ण शोकसे परे होकर स्वर्गलोकमें आनन्दित होओगे। हे नचिकेता ! यह अग्नि स्वर्ग देनेवाला है, जिसे तुमने द्वितीय वरसे माँगा। संसारमें अब लोग इस अग्निको 'नाचिकेत अग्नि' नामसे संबुद्ध करेंगे, अब तीसरा वर माँगो।'

क्या माँगना चाहिए और क्या नहीं, यह भी सम्यक् विवेकसे ही मालूम पड़ता है। पिता और अग्निकी सेवा-सुश्रूषा कैसी करनी चाहिए, अपने वर्णाश्रम-धर्मका पालन कैसे करना चाहिए और निष्काम होकर वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होगी, यह सब बताया गया। फिर भी यह आत्माका यथार्थ ज्ञान नहीं है।

माता-पिताको प्रसन्न कर लेना, न्यायका पक्षपाती होना, मृत्युसे निडर बनना, अपनी भावनामें दृढ़ रहना, विषय-भोगका तीन दिनोंतक परित्याग कर देना, यमराजको अपना गुरु बनाकर लोक-परलोककी शिक्षा प्राप्त कर लेना, कोई बड़े बड़प्पनकी बात नहीं। यह तो पड़ोसीका ज्ञान हुआ, अपना नहीं। यह तो उस सास जैसी बात हुई, जिसे पड़ोसी और अपनी बहूकी बुराइयाँ मालूम हैं, लेकिन अपनी बुराई नहीं जानती। ऐसी विद्या तो संसार बनानेवाली है, तोड़नेवाली नहीं।

आत्मज्ञान सबसे बड़ा ज्ञान है। जो भी लौकिक-पारलौकिक विद्या बतायी गयी, वह अपने आत्माके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं है। हम कर्मके करनेवाले हैं। हमारे साथ क्रिया जुड़ी है। उसीसे हम सुखी-दुःखी हो रहे हैं। कर्तव्य-अकर्तव्य भी उसीसे जुड़ा है। अच्छा कर्मकर सफल हो हम सुखी होते हैं। बुरा कर्म कर असफल होकर हम दुःखी होते हैं। कर्तापन जुड़ा है तो फल जरूर मिलेगा। अज्ञानके कारण यह संसार-बीज बना रहता है। हम अपनेको कर्ता-भोक्ता मानते हैं और विधि-निषेधमें लगे रहते हैं। तुम कभी अपने बारेमें विचार नहीं करते, इसीलिए तुम्हारे साथ यह अज्ञान जुड़ा है। यह तुम्हें कभी सुकर्ममें तो कभी कुकर्ममें, कभी हँसनेमें तो कभी सुख-दुःख में लगाता है। इसकी निवृत्तिके लिए तुम्हें जानना होगा कि जो कर्मसे विपरीत अकर्म, कर्तासे विपरीत अकर्ता, भोक्तासे विपरीत अभोक्ता है; उसमें दूसरा कोई है ही नहीं—ऐसा जो ब्रह्म और आत्माका एकताके विज्ञानमें कर्मकारक, फल आदिका अध्यारोप है ही नहीं। उसीसे आत्यन्तिक निःश्रेयसकी—मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है।

पहले वरसे माता-पिता प्रसन्न हुए, यज्ञ पूरा हुआ, न्याय हो गया, नचिकेताकी जीत हुई। पर इन सबके होनेसे वह कृतार्थ नहीं हुआ। वह अग्नि-विद्या प्राप्त होनेपर अपनेको अग्निरूप अनुभव करने लगा, तब भी कृतार्थ नहीं हुआ। क्योंकि जबतक तीसरे वरसे आत्मविज्ञान प्राप्त नहीं होता तबतक वह अपनेको कृतार्थ अनुभव नहीं कर सकता, यह बात इस कथामें बतायी गयी है। इसलिए जो कुछ कर्मसे प्राप्त साध्य-साधन हैं, वे सब अनित्य हैं।

जो वैराग्यवान् होता है, उसीको आत्मज्ञानका अधिकार है। इसलिए जो अनित्य है, उससे विरक्त होना चाहिए। 'आत्मज्ञान बड़ी दुर्लभ चीज है'—ऐसा यमराज कहते हैं। वे नचिकेतासे कहते हैं : 'ले लो सौ-सौ वर्षके बेटे, पौत्र, हाथी-घोड़ा, राज्य,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सैकड़ों वर्षकी उमर, इनके बराबर दुनियामें जो कुछ भी तुम समझते हो, ले लो। दुर्लभसे दुर्लभ वस्तु माँगो, पर आत्मज्ञान न माँगो।"

आज तो साधु-लोग डौंडी पिटवाते हैं, नगरमें घूमकर सेठको टेलीफोन करते हैं कि 'ले लो ब्रह्मज्ञान, ले लो ब्रह्मज्ञान !' आज यह स्थिति है लेकिन पहले कोई ब्रह्मज्ञान माँगता तो कहते : 'तुम्हें और जो चाहिए, सो माँग लो, लेकिन ब्रह्मज्ञान कोई मामूली चीज नहीं।'

पहलेके आचार्य ब्रह्मज्ञानकी कीमत समझते थे। आज न तो इस बातको समझानेवाले आचार्य हैं, न सुननेवाले शिष्य लोग। लोग चाहते हैं कि 'सुबह चाय पीनेके बाद दूकानपर जानेमें जो देरी, है उतने समयमें ब्रह्मज्ञान हो जाय तो क्या हर्ज है ? एक और लाभ होगा। दूसरे लाभ तो मुट्ठीमें हैं ही।'

एक थीं श्रीमतीजी। उनका वजन ज्यादा था तो डॉक्टरने कहा : 'फल-सब्जी खाओ तो वजन घट जायगा।'

वह घर गयीं और नौकरको डॉक्टरकी सलाहके अनुसार खाना तैयार करनेको कहा। डॉक्टर का बताया वह खाती थीं और रोज दोपहरको डेढ़ बजे भोजन भी करती थीं। एक महीना इस प्रकार चला, उनका वजन बढ़ गया। उन्होंने डॉक्टरसे शिकायत की। डॉक्टरने पता लगाया कि वह रोजका भोजन चालू रखकर उसकी बतायी चीजें भी दवाकी तरह खाती थीं।

मनुष्यको संसारके भोग करनेकी तो रोजकी आदत हो गयी है, उसके बिना उसका नहीं चलता। ब्रह्मज्ञानको वह डॉक्टरकी बतायी सब्जीकी तरह मानता है। फलतः रोज श्रवण करने पर भी उसे ब्रह्मज्ञान नहीं होता।

•

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२८. मलदोष और अन्तःकरण-शुद्धि

संगति :

नचिकेताने दो वरदान प्राप्त कर लेने पर यमसे आत्मज्ञान-विषयक प्रश्न किया कि 'मृत्युके बाद आत्माका अस्तित्व है या नहीं ?'

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ २० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitization: Vaijayanti Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मरे हुए मनुष्यके विषयमें जो यह संदेह है कि कोई तो कहते हैं 'रहता' है और कोई कहते हैं 'नहीं रहता'; आपसे शिक्षित हुआ मैं इसे जान सकूँ। मेरे वरोंमें यह तीसरा वर है ॥ २१ ॥

शरीरमें मल है कर्मका, भावका और अज्ञानका। किसी चीजमें मैल लग जाने पर उसे छुड़ानेके लिए हम उसे अग्निमें जलाते हैं। मैल छुड़ानेका यही श्रेष्ठ उपाय है। उसी प्रकार स्थूल-शरीर और उसके सम्बन्धियोंमें जो मैं-पनाका मल लग गया है, उसे छुड़ानेके लिए कर्म और उपासनाकी अग्नि है। इस धर्माग्नि-यज्ञाग्निमें यह देह और देहसे सम्बद्ध जितने मल हैं, उन्हें भस्म किया जाता है। इससे चोरी, व्यभिचार, अनाचारका मैल धुल जाता है। पक्षपात, अन्याय, मैं-मेरे पनका मल मिट जाता है।

देह मरनेके बाद फिर आत्मा रहता है या नहीं इस संशयमें यह भाव जुड़ता है कि मरनेके बाद हम कर्ता-भोक्ता, स्वर्ग-नरकादिमें जाने-आने वाले हैं। शरीरके बाद जो चीज है, उसपर भी आस्था और विश्वास होता है। कर्म-उपासनाका समुच्चय बड़ा लाभकारी है। इससे :

(१) वेदके अर्थकी प्रणाली मालूम होती है।

(२) हृदयमें श्रद्धा आती है।

(३) जीवनसे आलस्य-प्रमाद निकल जाता है।

(४) मरनेके बाद भी आत्माके अस्तित्वका ज्ञान होता है और

(५) इस पर आस्था होती है कि मनुष्यको शुभ कर्म करना चाहिए, भोग शुद्ध भोगना चाहिए।

इसलिए कर्म-उपासनाका समुच्चय मनुष्य-जीवनको पवित्र करनेवाली कर्माग्नि-धर्माग्नि-यज्ञाग्नि है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भावाग्नि : शरीरसे तो बुरे कर्म नहीं होते, पर मनमें बुरे भाव आते हैं। ईश्वरका ध्यान और योगाभ्यास कर अन्त:करणमें बैठे मलको मिटा देना चाहिए। साधारण मनुष्यकी तो यह स्थिति है कि वह दूसरेके मैलको तो बहुत जल्दी देख लेता है, पर अपने मनके मैलको नहीं देख पाता :

> नरः सर्षपमात्राणि परछिद्राणि पश्यति।
> आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥

दूसरेमें सरसों बराबर दोष भी मालूम पड़ जाता है, पर अपना बेल बराबर दोष भी मालूम नहीं पड़ता। अपनेमें जो दोष है, उसे मिटानेको ध्यानयोग और भावयोगकी आग चाहिए। भावाग्निसे दुर्भावना और योगाग्निसे विक्षेप की निवृत्ति होती है। ध्यानाग्निसे लक्ष्यमें निष्ठा होती है। तीनों द्वारा अन्त:करण शुद्ध होता है। अज्ञानरूप मल तो तत्त्वज्ञान अर्थात् ज्ञानग्नि द्वारा ही भस्म होता है—

> ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
> ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना ॥

ज्ञानाग्नि उत्पन्न करनी पड़ती है, तब उसमें अज्ञान भस्म होता है। जिसे तत्त्वज्ञान प्राप्त करना है, उसे थोड़ा वैराग्य चाहिए। वैराग्य वह अग्नि है, जिसे वह अपने विवेक या ज्ञानके प्रकाशमें स्थिर करता है। जिस चीजको हम ठीक समझते हैं, उसमें बिना वैराग्यके निष्ठावान् नहीं हो सकते। यदि मनुष्य अपनी मान्यताको पकड़ रखेगा, सत्य जानकर भी उसपर स्थिर नहीं हो पायेगा, तो थोड़ी देरके लिए ब्रह्म और आत्माकी एकता पर विचारकर सबको परमात्मा मानेगा, पर स्वार्थ आजानेपर या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijayanand Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सगा-सम्बन्धी, रिश्तेदार-नातेदार या अपने शरीर पर कोई तकलीफ़ आजानेपर वह सारी निष्ठा एकदम उठ जायगी। इसकेलिए अनित्य साध्य-साधन लक्षणसे वैराग्य चाहिए। तभी तत्त्वज्ञानमें अधिकार होता है।

तत्त्वज्ञानमें स्त्री-पुरुषका समान अधिकार है। स्त्री नौ महीना पेटमें बच्चा रख सकती है, तो पुरुष भी वह योग्यता रखे, ऐसे विवादको समानाधिकार नहीं कहते।

१. सर्वप्रथम अधिकारी होनेके लिए तत्त्वज्ञानमें तीव्र जिज्ञासा होनी चाहिए। लोकमें बैरिस्टर, वैज्ञानिक, डॉक्टर प्रयोजनीय होते हैं। जो अणु-परमाणुके विज्ञानमें लगा है उसे अनन्त-शक्तिका पता कैसे चले? जिसकी बुद्धि बाहरके पार्थिव पदार्थोंमें लगी है, उसका अधिकार अद्वय, प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्वके ज्ञानमें कैसे होगा? इसलिए ब्रह्मतत्त्वकी ज्ञानप्राप्तिमें तीव्र जिज्ञासा अर्थात् अर्थी होना प्रथम शर्त है।

२. दूसरे वह समर्थ हो। बच्चा कहे—'हमें रॉकेट छोड़नेकी विद्या समझा दो, अणु-परमाणुका विज्ञान और सूर्य-चन्द्र आसमानमें कैसे टिके हैं यह बता दो तो उससे कहना पड़ेगा : 'बड़े हो जाओ तो धीरे-धीरे सब समझमें आजायगा। तत्त्वज्ञान समझनेकी स्वयंमें सामर्थ्य होना बहुत जरूरी है।

३. तीसरी बात, समझानेवालेका अनुग्रह हो। जिज्ञासुको वह ठीक-ठीक समझाये, कहीं यह न मान बैठे कि यह समझनेमें अनधिकारी है!

नचिकेताने तीन वर माँगे—

१. पिता प्रसन्न हों।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२. अग्निविद्या : 'इसपर तुम्हें स्वर्ग मिल जायगा ।' ऐसा यमने वरदान दिया ।

३. अब पूछता है, 'ब्रह्म क्या है ?'

कर्मसाधना, उपासना और योगाभ्याससे, किसीके अनुग्रह और शक्तिपातसे जो चीज मिलती है, उससे वैराग्य हो । कोई देवता आकर तुम्हें ज्ञान दे जाय तो यह उधार लिया ज्ञान तुम्हारे पास टिकनेवाला नहीं । यह बड़ी अद्भुत गति है ! यह तो साक्षाद्-परोक्ष अनुभव है, जो अपने आत्मामें अपने आत्माको होता है। इसके लिए वैराग्यवान् पुरुष ही अधिकारी है ।

संस्कृतमें 'विरक्त' शब्दके चार अर्थ हैं—

१. जो विशेष रक्त या रागी हो । परमात्माके ज्ञानमें जिसका विशेष राग हो ।

२. विगत राग या बिना रागवाला हो । संसारमें राग न हो।

३. जोशीला न हो । दुनियाकी चीजोंके लिए आवेशमें न आये । मनुष्य कामावेशमें आकर अनाचार-व्यभिचारमें लगता है, लोभावेशमें आकर चोरी-बेईमानी करता है, झूठ बोलता है। क्रोधावेशमें द्वेष-हिंसामें लगता है, परिवारमें आसक्त होता है। उसका रक्त विशेष न हो । खूनमें जल्दी गरमी न आती हो। दुनियाके लिए लड़ाई-झगड़ेमें उतारू न हो । साधन-भजन, कुलीनता, सदाचारमें रुचि हो ।

वह विरक्त किससे हो ? अनित्यसे । संसारमें सब चीजें आने-जानेवाली हैं । जो भी चीज किसी औजारसे बनायी जाय, साधनसे पायी जाय, साँचेमें ढाली जाय, जिसकी तस्वीर उतारी जाय, रसोई पकाई जाय, वह बिगड़ती है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijaymani Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना।' अधिकारी वह है, जो बनायी जानेवाली या बिगड़नेवाली चीजोंके प्रति विशेष राग-रुचि न रखे।

चार प्रकारके लोग होते हैं :

१. कुछ लोग सिद्धिसे मोहित होकर, ऊँचा पद पानेके लोभ-वश, रोग मिटनेकी आशामें, मुकदमें जीतनेकी इच्छासे सत्संगमें आते हैं और महात्माको बड़ा सिद्ध मानकर उनकी कृपासे अपना काम बनाना चाहते हैं। ऐसे लोग सत्संगमें आते हैं, 'तो फायदा न होने पर वहाँ आना छोड़ देंगे। उनके लिए तो संसार सिद्धि है और सत्संग है साधन।

२. कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो कर्म द्वारा अपना परलोक बनाना चाहते हैं।

३. कुछ लोग उपासना करके इष्टलोकमें जाना चाहते हैं।

४. योगाभ्याससे चित्तका विक्षेप शान्त करना चाहते हैं।

इस प्रकार ज्ञानप्राप्ति और इन इष्ट-सिद्धियोंमें अन्तर है। एक सत्संगी सोचता है, 'हमारे पास घंटे भरका समय है। सत्संगमें नहीं जायँगे, पुस्तक ही पढ़ लेंगे। ऐसे लोग जैसे विद्यार्थी कॉलेज या पुस्तकालयमें स्टडीके लिए जाते हैं, वैसे सत्संगमें जाते हैं। जो लोग सिद्धिके लिए सत्संगमें आते हैं, वे तो बहुत छोटी चीज लेकर घर जाते हैं। श्री उड़िया बाबाजीके पास १० हजारमें-से नौसौ सिद्धिके लिए आते थे। मोकलपुरके बाबाके पास लाखमें एकआध व्यक्ति ब्रह्मज्ञानके लिए आते थे। वे हमसे कहते : 'चालीस वर्ष गंगाकिनारे रहते हो गया, आज तुम तीन आदमी ब्रह्मज्ञानके लिए आये हो। ब्याह-बेटा हो जाय और रोग अच्छा होजाय इसलिए लोगोंकी भीड़ होती है।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitization Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

केवल लाभ हो नहीं, कौन-सा कर्म करनेसे स्वर्ग, इष्टदेवका लोक या योगसमाधि मिलेगी, इस विषयमें जो भी साधन-साध्य होगा, उसमें न हमेशा कर्म करना होगा, न हमेशा फल रहेगा। जो करके, बनाकर पाया जायगा वह अनित्य होगा। आज रहेगा, कल नहीं। मोकलपुरके बाबा कहते थे—गुरु, इतना तो बिना किये हुआ है और हो रहा है, और करोगे तो संसारका बन्धन छूटेगा नहीं, और बँधोगे।

स्वार्थ अर्थात् परमार्थ, असलियत, सत्य क्या है, यह जिज्ञासा तो बहुत थोड़े लोगोंमें होती है। गीतामें भगवान् कहते हैं,।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

हजारमें-से एक मनुष्यके मनमें सिद्धिकी इच्छा होती है। इच्छा करनेवालोंमें भी कोई-कोई उसके लिए प्रयत्नशील होता है। प्रयत्नशीलोंमें भी किसी-किसीको सिद्धि मिलती है। हजारों सिद्धोंमें-से कोई एक परमात्माको जानता है। वास्तवमें परमात्माको इच्छा होना ही कठिन है। लोग साधन-साध्य वस्तुको चाहते हैं। वे उसीकी इच्छा कर उसीकी प्राप्तिका प्रयत्न करते हैं और प्राप्तिके बाद उसीके भोगमें लगते हैं। जिज्ञासु कहता है, 'जो किसीका बनाया हुआ है या कोई बना सकता है, जो कर्मका फल है या हो सकता है, वह हमें नहीं चाहिए।

तब प्रश्न है कि साधना क्यों करें? जो कर्मसे पैदा होगा वह अनित्य होगा। तत्त्वज्ञान कर्म-योग-उपासनासे नहीं होगा। यह बच्चोंकी बात नहीं। योगाभ्याससे समाधि लगेगी, उपासनासे इष्टदेवके लोकमें जाना होगा, यज्ञकर्मसे स्वर्गप्राप्ति और बुरे कर्मसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नरकगमन और पुनर्जन्म होगा। ये सब बातें जहाँ-की-तहाँ ठीक-ठीक होने पर भी जो वस्तु साधनासे उत्पन्न होगी, वह नष्ट अवश्य होगी। इसलिए बिगड़नेवाली चीजके लिए साधना करना निष्फल है। और जो है उसके लिए भी साधन करना निष्फल है। जो वस्तु ज्ञानसे मिलती है वह तो मिली हुई ही है। वह तो अपना आपा है। उसका मिलना क्या ? तो फिर साधना क्यों ?

साधना अनित्य वस्तुकी प्राप्तिके लिए नहीं, नित्य प्राप्त वस्तुके ज्ञानकी योग्यता हमारे हृदयमें आये इसके लिए की जाती है। तब वह साधना निष्फल नहीं हुई। ऐसी नाव लो कि तुम भवसागरके पार उतर जाओ, तब नाव छोड़ दो। साधना द्वारा अन्तःकरणमें ऐसा वैराग्य आना चाहिए कि परमात्माके सिवा कहीं तुम्हारा मन जुड़े नहीं। धर्मानुष्ठान करोगे तो अधर्मका त्याग होगा, उपासना-अनुष्ठान करोगे तो दुर्भावनाका त्याग होगा और योगाभ्याससे विक्षेपका त्याग होगा; तब अन्तःकरण शुद्ध होगा और तत्त्वज्ञान होगा।

अनित्य साध्य-साधनमें तुम्हारा वैराग्य हुआ या नहीं। यह सामर्थ्य हो तो तुम तत्त्वज्ञानके योग्य हो, नहीं तो श्रवणके समय निष्ठा ठीक रहेगी, बादमें अपनी निष्ठा पर अडिग नहीं रह पाओगे। सिंहनीका दूध सोनेके पात्रमें ठहरता है, नहीं तो पात्र फूट जाता है ऐसी मान्यता (समय) पण्डितोंमें चली आरही है। यह तत्त्वज्ञान अधिकारी पुरुषमें ठहरता है। यमराज तत्त्वोपदेशके पूर्व यह देखना चाहते हैं कि नचिकेता तत्त्वज्ञानका अधिकारी है या नहीं।

नचिकेताने प्रश्न किया—कारण-शरीरमें-से अज्ञान कैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijay Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निकले ? वह पूछता है। येयं प्रेते विचिकित्सा... । इस मन्त्रके भाष्यमें शंकराचार्य लिखते हैं :

"येयं विचिकित्सा संशयः प्रेते मृते मनुष्येऽस्तीत्येकेऽस्ति शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्तो देहान्तरसम्बन्ध्यात्मेत्येके नायम् अस्तीति चैके नायमेवंविधोऽस्तीति चैकेऽतश्चास्माकं न प्रत्यक्षेण, नापि वानुमानेन निर्णयविज्ञानम् ।"

एक बात ध्यानमें ले आओ तो रहस्य खुल जायगा। नचिकेता तो यमराजके सामने खड़ा है। कोई यमपुरीमें जाकर पूछे, 'परलोक है या नहीं।'—यह संभव है ! नहीं। मृत्युको स्वीकारकर यमराजके पास जानेवालेके चित्तमें यह बात नहीं आयेगी। नचिकेता मृत्युका अतिक्रमणकर स्वर्ग्याग्निको जान चुका है।

यहाँ आध्यात्मिक स्वर्गकी बात कही गयी है। आध्यात्मिक स्वर्ग अर्थात् परिच्छिन्न देहके साथ मैंको त्यागकर विराट्के मुख्य अवयवरूप अग्नि, वायु और आदित्यके साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेना, हिरण्यगर्भकी अवस्थामें पहुँच जाना है। नचिकेताने मृत्युका अतिक्रमणकर आध्यात्मिक स्वर्गकी प्राप्ति की। वह यमके सम्मुख खड़ा है। उसे क्या यह प्रश्न होगा कि देहके साथ आत्मा है या नहीं ? परलोक है या नहीं ?

इस प्रश्नका तो स्वरूप ही दूसरा है। संसारमें अस्ति और नास्तिका प्रयोग—घटः अस्ति, घड़ा है—घड़ा नहीं है; चश्मा है—चश्मा नहीं है; घड़ी है—घड़ी नहीं है, पुस्तक है—पुस्तक नहीं है—होता है। आपको इन दोनोंका ज्ञान होता है या नहीं ? आँखसे रोशनीमें आपको भाव-अभाव दोनों मालूम पड़ता है। आँख अध्यात्म है, रोशनी अधिदैव है और पुस्तक अधिभूत।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijayanagar Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्यात्म अधिदैवकी मददसे अधिभूतको पहचानता है, भाव-अभाव दोनोंको पहचानता है।

क्या कभी अपने आत्माके बारेमें प्रश्न होता है कि 'मैं हूँ या नहीं हूँ ? जानते हो कि 'मैं हूँ ?' कभी ऐसा लगता है कि 'मैं नहीं हूँ ? 'घड़ी है' और 'घड़ी नहीं है' जैसे लौकिक व्यवहार और तुममें कोई फरक है या नहीं ? जैसे घड़ीके भाव-अभाव दोनोंको जानते हो, वैसे अपने भाव-अभाव दोनोंको जानते हो ? हम अपना होना तो जानते हैं, न होना नहीं जानते; क्योंकि 'अहमस्मि वृत्ति होती है, 'अहम् नास्मि इति न कश्चित् प्रतीयात्'—कभी किसीको यह मालूम ही नहीं पड़ता कि 'मैं नहीं हूँ।' शायद मरनेके बाद अनुभव होता हो कि 'मैं नहीं हूँ !' यदि ऐसा अनुभव होता है तो आप अवश्य होंगे। किसे मालूम पड़ेगा कि 'मैं नही हूँ ?' वही तो वह है।

आप भूतकी बातें बताओ। आप उससे परे हो या नहीं ? जो आज है, वह कभी मरा नहीं। वह भले कल्पना करे कि 'मैं हजारों बार मरा ! हजारों बार जन्मा। 'घड़ी-चश्मा आपके सामने आयें-जायें पर आप तो होंगे न ? इसी भाँति भले मालूम पड़े कि हजारों बार हम आये-गये, पर यदि आज तुम न होते तो मालूम ही न पड़ता कि हम आये और चले गये। आप आजतक कभी मरे नहीं ! सच्ची मौत कभी नहीं हुई, झूठी मौतें भले ही हुई हों। आते-जाते घड़ेकी तरह हाथ-पाँववाले घड़ेको मांके पेटसे निकलते, मरते-जीते, आगमें जलते देखा। लेकिन जो चीज आप हैं उसे आपने दूसरोंमें मरते-जीते कब और कहाँ देखा ? आपने आत्माकी फोटो ली है ?

आजकल ये प्रेतविद्यावाले लोग फोटो ले-लेकर दिखाते हैं !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipin Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह आत्माकी फोटो नहीं होती। प्रेत आकर हाथमें पेंसिल पकड़कर उससे लिखता है, ऐसा मत समझना! हम जिस आत्माको चर्चा करते हैं—उसमें तो ये हाथ-पाँव-सिर आदि पोशाककी तरह हैं, घड़ा या घड़ी की तरह हैं। आपको कभी अपने मरनेका व्याप्तिग्रहण नहीं हुआ है। शरीरके जन्म-मरणको अपनेमें मानते हो तो अपने मरनेकी कल्पना झूठी है, अनुभवमें नहीं आती। आप अनुभवशील प्राणी हैं, क्यों अपने मरनेकी कल्पना करते हो?

'येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्य' : आगे हम मरेंगे यह तो कल्पना है। हम पीछे मर चुके हैं, इसकी तो स्मृति भी नहीं है। राजस्थान-विश्वविद्यालयने परामनोविज्ञान पर अनुसन्धानशाला खोल दी है और लोगोंके बयान ले रहे हैं। लोग बताते हैं: 'हमें किसीने गोली मारी और मरे। बीमारी आयी और मरे।' मथुरा, दिल्ली, कलकत्ता, पटनामें दो-तीन जन्मकी बात सुनाते हैं! भले मरें, तीन-चार, हजार बार मरें लेकिन एक चीज जो मरने पर रह जाती है, वह क्या है? शरीर और उसके अभावको किसने देखा? जो कल्पना करता है कि भविष्यमें हम होंगे या नहीं, वह कौन है?

'अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके' : जैसे 'घड़ा है' और 'घड़ा नहीं है' दोनों वृत्तियोंका विषय है, ऐसे आत्मा क्या अस्ति-नास्तिका विषय है? आत्मा न 'अस्ति' है न 'नास्ति', यह तो आत्माको जाननेकी एक प्रक्रिया है। 'अस्तित्येवोपलब्ध्यम्' अपनेको जाननेका तरीका है—'मैं हूँ' को जानो, 'मैं नहीं हूँ' ऐसा नहीं। असलमें दुनियाकी चीजोंके बारेमें 'है' और 'नहीं है' दोनों वृत्ति उठती हैं, आत्माके बारेमें नहीं।

'अस्ति' और 'नास्ति'में फरक है। अस्ति—'घड़ी है' वृत्तिका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय हटा दिया गया तो मालूम पड़ा कि यहाँ घड़ी नहीं है। जिसे मालूम पड़ता है कि 'यहाँ घड़ी नहीं है। यह कौन है? आत्मा 'अस्ति-नास्ति' वृत्तिका विषय नहीं, आश्रय है। वह देखता भी है, जानता भी है। 'आत्मा नहीं है' यह आत्माको जाननेका तरीका नहीं है। 'आत्मा है' यह आत्माको जान नेका तरीका है। 'मैं नहीं हूँ, आत्मा नहीं है' यह तो 'मम मुखे जिह्वा नास्ति' बोलकर बताने जैसा है।

एक बैलगाड़ी जा रही थी। बीच सड़कपर मनुष्य सोया हुआ था। गाड़ीवानने उसे उठाया। उसने उठकर अपनेको देखा-भाला और फिर सो गया। गाड़ीवानने फिर उठाया तो बोला: 'मैं नहीं हूँ तो उठूँ कैसे?'

गाड़ीवान: 'तुम नहीं कैसे हो, जब तुम बोल रहे हो?

मनुष्य: 'रातको मैं नया लाल जूता पहनकर सोया था। इस समय तो पैर में पुराना जूता है।'

यह शरीर भी लाल जूतेकी तरह है। 'मैं वह नहीं हूँ।' एक होता है वृत्तिका विषय जैसे घड़ी, चश्मा, किताब! ऐसे ही यह देह वृत्तिका विषय है। 'मैं ब्राह्मण, संन्यासी, हिन्दू हूँ' यह घड़ी-घड़ाके समान है। जिसे शरीरका होना-न-होना दोनों भासता है, वह है आत्मा। वह दोनोंका साक्षी है। 'नास्ति'की प्रक्रिया आत्माको समझनेमें मददगार नहीं है, इसलिए उसका खण्डन किया जाता है। 'अस्ति'की प्रक्रियासे आत्माको जाना जाता है। ये दोनों पार्टी हैं।

इसपर शंका की जाय कि 'आत्माको 'है' या 'नहीं है' कैसे बोलें?' एकने कहा: 'देहातिरिक्त आत्मा है—नहीं है।' एकने कहा: 'आत्मा परलोकमें जाता है—नहीं जाता है।' एकने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijaypal Charitable Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा : 'आत्मा परिच्छिन्न है—नहीं है।' यह विचिकित्सा है। वैद्यकी तरह संशय-रोगकी विचिकित्सा करनी चाहिए।

'एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहम्'। 'अहं त्वया अनुशिष्टः'—तुम हमारा अनुशिक्षण, अनुशासन करो, सिखाओ जिससे हमारी यह शंका निर्मूल हो जाय!

'वराणामेष वरस्तृतीयः।' तुमने मुझे तीन वर देनेको कहा था, तो यह तीसरा वर है।' सत्यका जिज्ञासु नचिकेता अपने गुरु यमसे सम्पूर्ण दृश्य-प्रपंचके भोगसे विरक्त होकर नामरूपकी स्फुरणाके पूर्वकी स्थिति विषयक प्रश्न कर रहा है। यह दूसरेसे नहीं, स्वयं अपने हृदयमें, अपनेसे 'मैं कौन हूँ' ज्वलन्त रूपसे प्रकट है।

दया, सत्य, उपासना, भक्ति, योग जितने धर्म हैं वे सब आचार्यकी प्रधानतासे होते हैं कि 'यह अमुकने कहा है।' वेदान्त-विद्या आचार्यकी प्रधानतासे नहीं, वस्तुकी प्रधानतासे है। आपके हाथमें काँच हो, कितने भी बड़े आदमीने उसे हीरा कहा हो, परन्तु आप हीरेकी पहचान जानेंगे तो देखेंगे कि वह काँच निकलेगा, हीरा नहीं।

किसी सज्जनने अपनी तिजोरीमें काँचके टुकड़े बंद कर रखे थे। पिताके मरने पर पुत्रने उन्हें हीरे समझकर लेजाकर चाचाको दिखाकर कहा : 'हमारे पास ये हीरे हैं।'

चाचाने कहा 'उन्हें तिजोरीमें रख दो। पहले तुम हीरेकी पहचान जान लो, हमारे बेटोंके साथ सीख लो हीरा और काँचका फरक समझ लो। एक नम्बर, दो नम्बरका हीरा जान लो। दामी पीला, अच्छा हीरा कैसा होता है? उसकी परख जान लो, तब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुम एक-एक हीरा बेचना, तुम्हें कोई ठग नहीं सकेगा।' उस लड़केने हीरेकी परख-विद्या वर्षोंके बाद सीखी और देखा तो सब काँच थे।

वेदान्तविद्या साधारण लौकिक ज्ञान नहीं। इसलिए जब नचिकेताने यमसे प्रश्न किया कि जहाँ न ऐन्द्रियक विषय ज्ञान है, न भोग है, न परिच्छिन्नताका अभिमान है, न कर्तृत्व है, न भोक्तृत्व, केवल अज्ञान शेष है, वह वस्तु अन्ततोगत्वा क्या है?

'हम सत्यके यथार्थ स्वरूपको जानें जो कालसे कटता न हो, देशमें परिच्छिन्न न हो, अद्वितीय हो'—ऐसा नचिकेताने तीसरे वरके उत्तरमें माँगा। वह कहता है: "हम उस ईश्वरके बारेमें नहीं पूछते जो यहाँ हो, वहाँ न हो। यह हो, वह न हो। अब हो, तब न हो। या उससे विपरीत वहाँ हो, यहाँ न हो। वह हो, यह न हो। तब हो, अब न हो। ये सारे अपने स्वरूपको खोकर उसके सिवा और कुछ नहीं रहते। आत्मस्वरूप, अपरिच्छिन्न, सजातीय-विजातीय-स्वगतभेदशून्य आत्मतत्त्वका क्या स्वरूप है?"

यम यानी मृत्यु, सर्वके अभावमें विद्यमान। उसमें विशेष धर्मकी उपस्थिति नहीं है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह भी यमरूप हैं। मृत्युका देवता सम्पूर्ण निषेधावधि 'नेति-नेति'का देवता है। जहाँ सम्पूर्ण नामरूपका निषेध हो जाता है, सर्वप्रतिषेध, सर्वाभावका देवता।

मृत्यु यानी अपनी बुद्धिकी वह अवस्था जहाँ दृश्य और परिच्छिन्नमें किञ्चित् भी आग्रह नहीं है, जहाँ यह प्रश्न होता है और जो इसका उत्तर भी देती है। यह दो व्यक्तियोंमें नहीं रहता कि चेलेने प्रश्न किया और गुरुने उत्तर दिया। जिस अन्तःकरणमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह प्रश्न है, उसीमें यदि उत्तर नहीं है तो समाधान नहीं होगा।

यह आध्यात्मिक विषय है। यदि एक ही अन्तःकरणमें प्रश्न और उत्तर न हों तो बाधा उपस्थित होगी। गुरुजी चाहे ज्ञानी, सदाचारी, ईश्वरपर विश्वासी हों, यदि चेला वैसा नहीं तो गुरुजीकी योग्यता चेलेको क्या काम देगी? जब तुम अकेले पड़ोगे, जंगलमें होओगे और मनोवृत्ति दुःख देने लगेगी तब तुम्हारे हृदयमें विद्यमान विश्वास ही तुम्हारी रक्षा करेगा। तुम्हारा कल्याण करेगा।

यह आत्मबल बड़ा भारी संबल है। रातको एकान्तमें, जंगलमें, खंडहरमें, शेरोंके बीचमें भी सुख देनेवाला है। पुलिसका आधार या कानूनका बल वहाँ क्या काम आयेगा? वहाँ तो ईश्वर पर विश्वास ही आत्मबल बनकर तुम्हारी रक्षा करेगा।

इसीप्रकार यदि तुम्हारे मनमें प्रश्न उठे और उत्तर न आये तो दूसरेका ज्ञान तुम्हें क्या काम आयेगा? उसी दिलमें-बुद्धिमें उत्तर आना चाहिए जहाँ प्रश्न है। इस उपनिषद्में गुरु और चेले दो जगहपर नहीं बैठे हैं, एक ही जगहपर हैं। गुरुजी थोड़े भीतर बैठे हैं, चेलेभी थोड़े बाहर। यदि गुरुजी और चेला आमने-सामने बैठे हों तो प्रश्नोत्तर होगा। प्रश्नोत्तर पूरा हुआ तो दोनों एक हृदयमें होंगे, एक ओर दोनोंका मुँह, दोनोंकी आँख, दोनोंको पीठ होगी। एक चीज दोनोंको नजर आयेगी। दोनों एक दिलसे प्यार करेंगे। एक बुद्धिसे सोचेंगे। भेदवृत्ति न होनेके कारण विशेष-सामान्यका भेद नहीं रहेगा।

जो देश-काल-वस्तुसे सम्बद्ध है, विशेष है, आकार है, जो ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है उसका निषेध कर अपने स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करो। देखो तुम कौन हो ?

किमयमेकान्ततो निःश्रेयससाधनात्मज्ञानार्हो न वेत्येतत्परीक्षणार्थमाह यमः। अब गुरुजी बोलते हैं: 'क्यों बेटा, तुम सचमुच तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहते हो? क्योंकि जो वस्तु निष्प्रयोजन होती है और बिलकुल स्पष्ट होती है उसके सम्बन्धमें प्रश्न करनेकी कोई जरूरत नहीं है। जैसे तुम घड़ी देखते हो तो यह पूछनेकी क्या जरूरत है कि 'यह घड़ी है ?' सबको यह साफ-साफ एक तरह भासती है।

कोई पूछे कौएके कितने दाँत होते हैं तो यह जानकर क्या करेंगे ? इस मकानमें कितनी खिड़कियाँ हैं, खिड़कीमें कितनी पत्तियाँ लगी हैं ? ऐसे प्रश्न बुद्धिकी बेकारीका सबूत है। जहाँ स्पष्ट वस्तुके बारेमें भी प्रश्न हो और जिससे निःश्रेयस-प्रयोजनकी सिद्धि न होती हो तो वह प्रश्न भी बेकार है।

यदि हम आत्माकी स्वतंत्रताके बारेमें जान जायँ तो दुनियाको उलट सकते हैं और परतन्त्रताको जान जायँ तो हजारों विक्षेपसे बच सकते हैं। आत्मा स्वतन्त्र है कि परतन्त्र ? जान जायँ कि यह तो ईश्वरके हाथका खिलौना है तो 'खेलो बाबा जैसे मौज आवे !' यदि जानें कि हम स्वतन्त्र हैं तब तो हमारे बराबर कोई शहनशाह बादशाह नहीं है ! मालूम पड़ जाय कि–आत्मा कभी मरता नहीं है तो निर्भय हो जायँ; मूर्च्छा सुषुप्तिमें भी यह कभी बेवकूफ नहीं बनता, यह जानें तो अज्ञानका डर मिट जायगा।

दुःख उसे कभी छूता ही नहीं यह जानें, परमानन्दस्वरूप है तो दुःखमें भी मजा रहे। सिनेमामें लोग रोकर मजा लेते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equanimity Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मातमपुरीमें रोकर अपनी तारीफ करते हैं! अपने स्वरूपके ज्ञानमें लोग अनन्त-जीवनके अभावकी कल्पनाकर दुःखी होते हैं। तुम्हारा न जन्म है—न मरण! तुम्हारा ज्ञान अनन्त है, तुम्हारा जीवन अनन्त है उसमें कितनी यथार्थ और मिथ्या वस्तुएँ आती-जाती हैं और कितने सुख-दुःख आते-जाते हैं तब भी तुम्हारा ज्ञान सूर्यके समान प्रकाशमान रहता है।

गतवर्ष हिन्दुस्तान-पाकिस्तानका झगड़ा हो गया था। केप्टन, कर्नल और सैनिक लोग वहाँसे घायल होकर आये थे। किसीके पेटमें गोली लगी थी तो किसीके हाथ-पैर टूटे थे। एक मेजरसे मेरी बात हुई। उसे बड़ी चोट लगी थी। मैंने कहा: 'चार-छः महीनेमें तुम्हारा घाव अच्छा हो जायगा, तुम लोगोंको सुनाओगे अपनी बहादुरीके संस्मरण और मजा लोगे। तुम जब कहोगे कि 'ऐसे गोली लगी, ऐसे घाव लगा तब भी हमने युद्ध किया तो तुम्हारी वीरता स्वर्णाक्षरोंमें लिखी जायगी और लोगोंमें बहादुर बनोगे।'

फिर उसका पत्र आया: 'सचमुच जैसा आपने कहा था वैसा ही हो रहा है। हमें बड़ा मजा आता है।'

दुःख कहीं भी नहीं है। बेहोश होना, जड़ होना, मूर्च्छित होना, मरना-जन्मना जीवनका सत्य नहीं है। हमारे भीतर अपना अनन्त जीवन, सच्चा जीवन इतने मजेदार ढंगसे चल रहा है; पर वहाँ लोगोंकी नजर जाती नहीं। आत्मज्ञान सचाईका ज्ञान है। इस ज्ञानसे निःश्रेयसकी प्राप्ति होगी।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection Vanamali Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२१. देवदुर्लभ आत्मज्ञान

संगति :

बीसवें मन्त्रमें बताया कि निःश्रेयस्‌की प्राप्ति करानेवाले सूर्यवत् प्रकाशमान स्वयंप्रकाश आत्मज्ञानमें न हर्ष-शोक हैं, न जन्म-मरण, न सुख-दुःख न किसी तरहका अभिमान। अज्ञानी मनुष्य जरा-जरा-सी बातमें अभिमान कर सुखी-दुःखी होता है। जैसे ईश्वरके लिए सृष्टि-प्रलय, जन्म-मरण, जागना-सोना या जड़ता-चेतनताका कोई महत्त्व नहीं, वैसे ही सचमुच आपके लिए भी उसका कोई महत्त्व

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidehi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

नहीं। हमारे आत्माकी महत्ता, विशालता, चेतनता और ईश्वरकी आत्माके साथ एकता-अद्वयता जाननेसे निःश्रेयस्‌की सिद्धि होनेके कारण आत्मज्ञान सप्रयोजन है।

यमराजने सोचा—'देखें, इस बालकमें आत्मज्ञान पानेकी कितनी तत्परता है ?' तुम आत्मज्ञान पानेमें क्या-क्या छोड़ सकते हो, कहाँ-कहाँसे मुँह मोड़ सकते हो, तुम्हारे मनमें ज्ञान-प्राप्तिकी कितनी तीव्र इच्छा है—यह अपने मनसे ही पूछो। यमराज नचिकेतासे कह रहे हैं कि आत्मज्ञान देवताओंको भी दुर्लभ है :

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा
न हि सुज्ञेयमणुरेष धर्मः।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व
मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥ २१ ॥

पूर्वकालमें इस विषयमें देवताओंको भी संदेह हुआ था; क्योंकि यह सूक्ष्मधर्म सुगमतासे जाननेयोग्य नहीं है। हे नचिकेता! तू दूसरा वर माँग ले, मुझे न रोक। तू मेरेलिए यह वर छोड़ दे॥ २१ ॥

यमराज कहते हैं : 'वत्स नचिकेता! पहले देवताओंने जिज्ञासापूर्वक बड़ी विचिकित्सा की, अनुसन्धान किया।

क्या उनको ज्ञान हुआ ? नहीं। पौराणिक विश्वासके अनुसार देवता होते हैं। उनके अनेक रूप हैं, भौतिक, दैविक, आध्यात्मिक।

दयानन्द सरस्वती कहते हैं : विद्वांसो हि देवाः बड़े

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Jagannath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़े लोग यन्त्र लेकर देवताओंको खोजने चले। उनको वे नहीं मिले। यन्त्रसे आधिभौतिक देवता मिलते हैं।

चार्वाक : 'आत्मा नामकी कोई चीज शरीरमें नहीं है। थोड़े दिनके लिए वह पैदा होकर बैठ जाती है। बस, यही मानवका जीवन है।'

ईसाई-मुसलिम धर्म कहते हैं : 'खुदाने आत्माको पैदा किया है (क्योंकि उनमें ईश्वरकी प्रधानता है, कर्मकी नहीं) और अपनी इच्छाके अनुसार वह उसे स्वर्ग-नरक भेजता है, दिव्य लोक प्राप्त कराता है। एकबार आत्मा उत्पन्न होनेपर हमेशा रहता है, अर्थात् आत्मा पैदा होता है, पर मरता नहीं।'

बौद्ध कहते हैं : 'आत्मा पैदा नहीं होता, हमेशासे है, पर ज्ञान होनेपर मर जाता है।'

जैन कहते हैं : 'आत्मा न पैदा होता है, न उसका आत्यन्तिक नाश होता है। किन्तु हाथी-चींटीकी तरह वह घटता-बढ़ता रहता है।'

नैयायिक और वैज्ञानिकोंका कहना है : 'आत्मा न जन्मता है, न मरता है। वह प्रत्येकमें अलग-अलग कर्ता-भोक्ता होकर रहता है। वह अनादि और अनन्त है। उसकी जन्म-मृत्यु लौकिक दृष्टिसे है।'

सांख्यकी मान्यता है : 'आत्मा कर्ता नहीं, भोक्ता है; क्योंकि द्रष्टा होना ही भोक्ता होना है; फिर भी ये द्रष्टा अनेक हैं।'

सभी उपासक (वैष्णव, शैव, गाणपत्य) कहते हैं : 'यह आत्मा अलग-अलग है। यह नियोज्य या ईश्वरके अधीन हो कर्ता-भोक्ता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vijay Kumar Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ईश्वर स्वतन्त्र है, पर यह परतन्त्र। ईश्वर कर्मके अनुसार इ
अपने लोकमें, स्वर्गमें या नरकमें रखता है।'

अद्वैत वेदान्त मानता है: 'कार्य-कारणकी आत्मा एक है। समूची धरतीमें जो आकाश है, वही एक कणमें भी है। समू स्वप्न-सृष्टिको जो चैतन्य देख रहा है, वही चैतन्य एक व्यक्ति देख रहा है। देश-काल-वस्तुके द्रष्टा, प्रकाशक, अधिष्ठान, स्व प्रकाश, स्वरूपभूत चैतन्यमें दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं।

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल। बड़े-बड़े विद्वान्, वै डॉक्टर यन्त्र लेकर आत्माका अमृतरस या आत्मबटी बना शीशीमें बेचनेकी कोशिशमें हैं। 'जब आत्मा शरीरसे निकल जा तो एक आत्मा बटी खिला देनेपर प्राणी पुनः जीवित हो जायगा, ऐसा उनका खयाल है। लेकिन ऐसा हुआ नहीं! पह भी लोगोंने इसके लिए बड़ा अनुसन्धान किया।

स्वर्गमें देवताओंका जीवन भोगप्रधान है। इन्द्र, वरुण, वा जो चाहें सो पा सकते हैं—अप्सरा, उत्तम वस्त्राभूषण, विमान उद्यान, मुकुट, कुण्डल, अस्त्र-शस्त्र। देवताओंमें भोगरूप दोष है भोगाधिक्यके कारण उन्हें आत्माके लिए जिज्ञासा नहीं होती। जानकर क्या करेंगे? इसी तरह दैत्योंको द्वैतरूप दोषाधिक्य कारण आत्म-जिज्ञासा नहीं होती। मनुष्यमें तो संग्रहाधिक्य है कारण आत्म-जिज्ञासा नहीं। वह खुद खाता नहीं, अगली पीढ़ी लिए सोचता है—'बेटा निकम्मा होगा, खुद नहीं कमायेगा तो वह बीस वर्षके बाद कमायेगा! अभी तो यही सोचता है कि पेट भर खाओ और शरीरको ठीक रखो!' सारांश, भोग, द्वैत-द्वेष और संग्रहसे तीनों गये!

सूर्यके प्रकाशमें इन्द्रियोंसे ढूँढ़ें तो आत्मा मिलेगा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवैः=इन्द्रियोंसे। सूर्यं=आँख। चन्द्र=मन। सूर्य, चन्द्र और इन्द्रियके प्रकाशमें क्या आत्मा दीखेगा? कभी नहीं :

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

—गीता

आत्माका क्या स्वरूप है? वह सूर्यके प्रकाशमें आँखसे नहीं दीखता, चन्द्रमाके प्रकाशमें मनसे नहीं दीखता। एक बड़ा आदमी एकान्तमें ध्यानमें कई वर्षोंतक बैठा। इसका उसे अभिमान हो गया। वह सद्गुरुके पास न जाय। जाय तो अभिमान छोड़ना पड़े! वह मनोरथको ईश्वरकी प्रेरणा समझने लगा। मनकी बनायी शक्लको वह ईश्वर समझता और कहता कि 'जहाँ राम, कृष्ण और वेदकी पहुँच नहीं, वहाँ हम पहुँच गये। पतञ्जलि, कपिल और शङ्कराचार्यको जो नहीं सूझा, वह हमें सूझा। गुरुग्रन्थसाहिबमें लिखा है, जो मालिककी आज्ञाको समझता है : हौं में कहे न कोई।' उसमें अहम्की जागृति नहीं होती।' जो परमात्माको जानता है, उसमें 'अहम्' नहीं आता।

मन द्वारा ध्यानमें बनायी चीजमें हमारी वासना-प्रियता होती है। इन्द्रियोंमें असामर्थ्य है, क्योंकि देवता लोग इन्द्रियों द्वारा ही बता सकते हैं। कोई कहे कि हम बोलकर परमात्मा बतायेंगे तो कहते हैं : देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा।

अग्निदेवताने बोलकर बतानेकी कोशिश की तो है क्या?

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।

—गीता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सूर्य, चन्द्र और अग्नि यानी आँख, मन और जीभ कैसे का
करते हैं ? इस आध्यात्मिक ज्योतिका पता लगाओ तो माल
पड़े कि यह प्रकाश कहाँसे आता है ? अन्ततः इन्द्र, वरुण, कुबे
जीभ, आँख, मन भी हार गये, पता नहीं लगा और बोल उठे
न हि सुज्ञेयम् । यह सुज्ञेय नहीं ।

हमारे गाँवमें अनन्तचतुर्दशीका व्रत करते हैं। हमें गाँ
लगाना आता है। सैकड़ों अनन्तमें हमने गाँठें लगायी हैं। एक सूत
गाँठ लगाकर फिर उसकी पूजा करते हैं। सोने-चांदी-तांबे
अनन्तमें भी चौदह गाँठें लगाकर उसकी पूजा कर उसे दूध
डाल देते हैं। फिर एक आदमी उसे ढूँढ़ता है और दूसरा उ
पूछता है : 'पवला ?'

नहीं।

वह क्षीरसागरमें, सत्त्व, रजस्, तमस्के समुद्रमें नहीं, स
समुद्र उसमें हैं। वे अपनी शान्ति और उद्रेक, अपना ज्वार औ
भाटा छोड़ देते हैं। ऐसा यह समुद्र है, क्योंकि अणुरेषः धर्मः।

आत्मा बड़ा ही सूक्ष्म है। धर्मः=आत्मा। बौद्धधर्ममें आत
को धर्म कहते हैं। गौडपाद-कारिकामें भी 'अलातशान्ति'नाम
चौथे प्रकरणमें 'धर्म'शब्दका बहुत प्रयोग है। कई लोगों
कहा : 'बौद्धधर्म और कारिका दोनोंमें 'धर्म' शब्दका प्रयोग
तो इन्होंने बौद्धधर्मसे लेकर 'धर्म' शब्दका प्रयोग किया है।
कठोपनिषद्में 'धर्म' आत्माके अर्थमें है। शङ्कराचार्यने इसी अर्थ
लिया है :

'आत्माख्यो धर्मः'=आत्मा नामक धर्म। यह कठोपनिष
बुद्धसे बहुत पहलेकी है। यह तो तैत्तिरीय आरण्यकमें काठका
रण्यकमें भी है। यह कृष्णयजुर्वेदकी एक खास संहिता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitization eGangotri. Funding Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बौद्धधर्मके पूर्व चारों वेद विद्यमान ही थे। इसलिए बहुत पुरानी उपनिषदोंमें-से यह एक है। उसमें आत्माको 'धर्म' बोलते हैं।

धारणात् धर्मः ।

चम्मचमें भोजन लेकर नाकमें क्यों नहीं डालते? 'हम पानी कानमें क्यों नहीं डालते, मुँहमें क्यों डालते हैं? खून ठीक-ठीक नाड़ियोंमें क्यों चलता है? कम्पन क्यों होते हैं? शरीरकी क्रियाएँ एक-दूसरेकी पूरक क्यों हैं? पाँव फिसलें तो हाथ तुरन्त रोक देते हैं। आँखमें मच्छर घुसे तो हाथ उड़ा देते हैं। नींदमें, अनजानमें भी यह क्रिया होती है।

सबके शरीरमें एक 'मैं' है, जिसकी उपस्थिति-अनुपस्थितिमें अच्छी-बुरी व्यवस्था चलती है। उपस्थिति हो तो हवा-पानीका ग्रहण होती है अनुपस्थितिमें दुर्गन्ध निकलती है। यह तो एक प्रकारकी चेतना है। सब प्राणी-शरीरमें यह अलग-अलग है, किन्तु चेतनाका तात्त्विकरूप सारी सृष्टिमें एक-सा है; क्योंकि सृष्टिका 'नहीं'रूप अनुभवका प्रकाशक भी यही है। 'नहीं' और 'हाँ' में जो शक्ति है, दोनों अनुभवके अनुकूल उस शक्तिसे पूर्णतामें जो अवच्छिन्नता है, अद्वितीयमें जो अवच्छिन्नता है, उस अवच्छिन्नतामें भी जो अनवच्छिन्न है, उस तत्त्वको 'धर्म' कहते हैं।

'अणुरेष धर्मः' = यह प्रत्यक्तम धर्म बड़ा सूक्ष्म है। इसलिए इन्द्रिय, सूर्य, ब्रह्मादि द्वारा जाननेयोग्य नहीं है।

अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व। इसलिए हे नचिकेता, तुम दूसरा वर माँगो।

मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम्। तुम मुझे घेरेमें मत डालो। रोको मत कि 'तुमने मुझे तीसरा वर देनेको कहा है और मैंने माँगा तो देना ही पड़ेगा।'

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equanimity Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

२०. आत्मवेत्ताकी विलक्षणता

संगति :

नचिकेतासे यमराजने कहा कि 'यह आत्मविज्ञान बड़े-बड़े देवताओंको भी नहीं होता वे भी अनादिकालसे इसके बारेमें बड़ी जिज्ञासा रखते हैं। सूर्यादि देवता भी इसे नहीं जान पाते। उनके द्वारा यह ज्योति प्रकाशित नहीं होती, बल्कि उसके द्वारा ये प्रकाशित होते हैं। द्युलोकमें इन्द्र-वरुण-कुबेर भी इसे जान नहीं पाते। अध्यात्ममें मन-नेत्र-जिह्वा भी नहीं जान सकते। इनके लिए भी आत्मा जिज्ञासाका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri, Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय है, क्योंकि यह वस्तु (धर्म) सूक्ष्म (अणु) है। इसलिए नचिकेता, तुम दूसरा वर माँगो। जैसे ऋण देनेवाला ऋणीको बाध्य करता है कि ऋण चुकाओ, वैसा न करो। यह सच है कि मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, वर दे चुका हूँ। फिर भी मुझ पर दबाव मत डालो और इस माँगको छोड़ दो—**एनम् अति सृज** और दूसरा वर माँग लो।"

तब नचिकेता आगे यमराजसे कहता है:

> **देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल**
> **त्वं च मृत्यो यत्र सुज्ञेयमात्थ।**
> **वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो**
> **नान्यो, वरस्तुल्य एतस्य कश्चित्॥ २२॥**

[नचिकेता बोला—] हे मृत्यो! इस विषयमें निश्चय ही देवताओंको भी संदेह हुआ था तथा आप भी इसे जाननेयोग्य नहीं बतलाते। [इसीसे वह मुझे और भी अधिक अभीष्ट है] साथ ही इस धर्मका वक्ता भी आपके समान अन्य कोई नहीं मिल सकता और न इसके समान कोई दूसरा वर ही है॥ २२॥

नचिकेता कहता है: 'क्या बड़े-बड़े देवताओंको भी इसके विषयमें जिज्ञासा होती है? वे भी इसे नहीं जानते?

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल। विचिकित्सा = संशय, जिज्ञासा, चिकित्सा। वैज्ञानिक डॉक्टर चिकित्सक होते हैं, वे रोगका कारण और निदान ढूँढते हैं। भविष्यमें यह कौन-सा रूप धारण करेगा, इसपर विचार करते हैं। उसके लक्षणों परसे उसका कारण, परिणाम और उसकी शान्तिका विचार करते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vijnanam Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

और प्रयोग द्वारा उपाय निश्चित करते हैं। इसी प्रकार अध्यात्म-ज्ञानके विषयमें जब किसीके हृदयमें जिज्ञासा जागृत होती है, तो गुरु उसकी विचिकित्सा करते हैं। उसकी दृढ़ता और उसके अधिकारका निश्चय करके ज्ञान देते हैं; क्योंकि लोग नाती-पोता, धन-परिवार, उत्तम मकान आदि भोग और आँखसे दीखनेवाली वस्तु ही चाहते हैं। इस सूक्ष्म वस्तुको चाहनेवाले तो बहुत कम लोग होते हैं। आँख, कान आदि इन्द्रियोंको मजा आये, वासनाके अनुरूप चित्तको तृप्ति मिले, ऐसी चीजोंको पानेमें ही लोग फँसे रहते हैं। सबसे पीछे गुफामें छिपी वस्तुको कौन चाहता है?

हमारी किसी इन्द्रियको इसके बारेमें ठीक-ठीक ज्ञान नहीं। वे यह तो कहती हैं कि हमें भीतरसे कोई प्रकाश देता है; पर कौन दे रहा है, यह नहीं बता सकतीं। सूर्य, चन्द्र और अग्निमें भीतरसे कौन प्रकाश दे रहा है, यह ब्रह्मा भी बहिर्मुख होनेके कारण नहीं बता सकते। जो नित्य समाज, जाति, धर्म, भाषा, राष्ट्रकी नयी-नयी समस्याएँ लेकर उलझे रहते हैं और कभी जो समाधान नहीं पाते, ऐसे बहिर्मुख लोगोंके लिए आत्मज्ञान नहीं। आत्मज्ञान तो शाश्वत समस्याका समाधान है। यह जीवन्मुक्तिका विलक्षण सुख देनेवाला है। छोटे-छोटे दुःखोंको मिटानेवाला है। इसकी चाह तो बहुत ही इने-गिने लोगोंको होती है।

त्वं च मृत्यो यन्न सुज्ञेयमात्थ। जैसे देवता इसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं, वैसे तुम भी इसे न जान पाओगे, क्योंकि जाननेके सारे औजार बाहरी चीजोंके लिए होते हैं। खुर्दबीनसे बड़ी सूक्ष्म वस्तु दीखती है। दूरबीनसे नये तारेका पता लगाया जा सकता है। पर ये यन्त्र तभी काम देते हैं, जब आँखें हों। ये यन्त्र नेत्रके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri/Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बिना क्या करेंगे ? पर आत्मा नेत्रोंका भी दृश्य नहीं। नेत्र, कान, हृदय, अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड और उनके महाप्रलयको कहाँसे ज्योति मिलती है, यह तुम्हें देखना है तो कैसे जानोगे ?

नचिकेता पूछता है : 'तुम्हींने कहा था न कि यह सुज्ञेय नहीं है !'

यम, : हाँ, पर तुम और किसीके पास जाकर जान लेना, हमें छोड़ दो।'

नचिकेता कहता है : **वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यः।**

'यह बहुत गंभीर ज्ञान है, सुगमतासे समझमें आनेवाला नहीं। इसका वक्ता भी सुगमतासे नहीं मिलता। गली-गलीमें श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ नहीं घूमते। मंचपर बैठकर लाउडस्पीकरपर व्याख्यान देकर हम 'महाभगत' कहनेवाले असलमें इसे नहीं जानते। ब्रह्मज्ञान बड़ी दर्लभ वस्तु है।'

छान्दोग्य-उपनिषद्में नारदजी सनत्कुमारजीसे कहते हैं : **सोऽहं भगवन् शोचामि।** 'मुझे बहुत दुःख है, शोक है। **मंत्रविद् अहम् अस्मि।** मैं केवल वेदोंका अर्थात् उसके मंत्रों और अर्थोंका जानता हूँ, पर आत्मवित् नहीं हूँ। मैंने आप-जैसे आत्मवेत्ताओंसे सुना है कि आत्मवित् शोकसे तर जाता है। जो वेदान्तशास्त्रमें पण्डित है, वह वेदान्त-विद्यालयमें अध्यापक हो सकता है, वेदान्त-महाविद्यालयका प्रिन्सिपल हो सकता है। किन्तु आत्मवित्के लिए अध्यापक, प्राध्यापक या कुलपति होना आवश्यक नहीं। आत्मवित् तो शोकके परले पार पहुँच जाता है।' नारदजी कहते हैं : **शोकस्य परं पारं तारयतु**—'भगवन्, आप हमें शोकके उस पार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पहुँचा दीजिये। मुझे मन्त्र, अक्षर-ज्ञान, वेद-ज्ञान नहीं चाहिए। मैंने चारों वेद पढ़े, फिर भी शोकग्रस्त हूँ।

श्रुति कहती है : आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा। इसके वक्ता और लब्धा दोनों आश्चर्यरूप हैं। वह ऐसी बात कहता है, जो वाणीसे कही नहीं जा सकती। यह कितना बड़ा कौशल है? अवाङ्मनसगोचर—जहाँ मन-वाणीकी पहुँच नहीं, जिसके लिए श्रुति कहती है : न विद्मो न विजानीमः—हम नहीं जानते और दूरमथो विदिताद् अविदिताद् अपि। 'अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात् कृताकृतात्—जो विदित-अविदितसे परे, धर्म-अधर्मसे परे, कृत-अकृतसे परे कर्माभाव-नैष्कर्म्यसे भी परे है। अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च—जो भूत और भव्य (भविष्य) से भी परे है; कर्म और कर्मफल, ज्ञात और अज्ञातसे भी परे है, उस वस्तुको किसी संकेत या इशारेसे अपने शिष्यको समझा देना, कितने आश्चर्यकी बात है। इसका वक्ता और इसे प्राप्त करनेवाला दोनों दुनियामें आश्चर्यरूप हैं।

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनं
आश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवत् चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥

—गीता

एक महात्मा कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। किसीने पूछा : 'क्या पढ़ रहे हो।'

वे बोले : 'इसमें मेरी क्या तारीफ लिखी है, यह पढ़ रहा हूँ।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by ... Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

एक महात्मा घास छील रहे थे। उसके पास राजा गये और बोले : 'महाराज, ब्रह्मका उपदेश सुनाओ।'

महात्मा : 'उतार दो मुकुट।'

राजाने मुकुट उतार दिया, तब महात्माने पूछा : 'अब क्या रह गया।'

राजा : 'मनुष्य।'

महात्मा : 'मैं क्या कर रहा हूँ? खुरपेसे घास छील रहा हूँ तो घसियारा हूँ। खुरपा फेंक दिया तो?'

राजा : 'मनुष्य।'

मुकुट और खुरपा दोनों मायाकी उपाधियाँ हैं। मुकुट है तो राजा, खुरपा है तो घसियारा और मुकुट और खुरपा दोनों फेंक दिये, तो दोनों मनुष्य! अविद्याका खुरपा हटा दो तो तुम न जीव हो, न ईश्वर। दोनोंमें एक संविन्मात्र वस्तु है, जिसमें दो उपाधियोंसे दो दीखते हैं।

नेति-नेतिकी यह प्रक्रिया अद्भुत है, विचित्र है—यह भी नहीं, वह भी नहीं। महात्माओंकी समझानेकी शैली बड़ी अद्भुत होती है। सबको तो 'नहीं-नहीं' कह दिया, पर जरा अपनेको तो 'नहीं' कहो। अपनेको 'नहीं' कहते हैं, तब भी बच रहते हैं। अपनेको 'नहीं' करनेवाले तुम हीं बच गये? हाँ, बच गये। कालमें मरे तो नहीं, देशमें छोटे तो नहीं पड़े, वस्तुओंमें तुम्हारा वजन तो नहीं बढ़ा? वजन बढ़ा तो भी उसे हटा दो। शेष बचा सो कौन? यह कोई नन्हा-मुन्ना नहीं। यह तो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी जो विवर्तनशक्ति है, उसका अधिष्ठान है। यह अद्वितीय ब्रह्म है। निरूपणकी यह शैली बड़ी विचित्र है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यः। बड़े-बड़े देवताओंके मनमें तो इसके प्रति जिज्ञासा है और नचिकेता मृत्युदेवतासे कहता है कि तुम्हारे सरीखा ब्रह्मविद्याका उपदेष्टा दूसरा कोई मिलनेवाला नहीं है। श्रीशङ्कराचार्यने भाष्यमें लिखा है : "यदि हम हाथमें मशाल लेकर ढूँढने जायँ कि तुम्हारे समान वक्ता मिल जाय तो मिलेगा, इसमें सन्देह है; क्योंकि देवताओंकी भी समझमें नहीं आता कि 'हम सगुण हैं या निर्गुण ? निर्विशेष या सविशेष ? निराकार हैं या साकार ? सादि हैं या अनादि ? सान्त हैं या अनन्त ? परिच्छिन्न हैं या पूर्ण ? मैं-तुमके भेदसे ग्रस्त हैं या अग्रस्त ?"

दूसरे, आत्माका ज्ञान सप्रयोजन है : **अयं तु वरो निःश्रेयसप्राप्तिहेतुः।** इसके जान लेनेपर प्रयोजनकी सिद्धि होती है। जिसे जान लेनेपर प्रयोजनकी सिद्धि ही न हो वह किस कामका ?

पूर्वमीमांसाके बड़े विद्वान् शबरस्वामीने जैमिनीके सूत्रपर भाष्य लिखा है, जो सबसे प्राचीन है। उसपर कुमारिलभट्टने भी भाष्य लिखा है। पूर्वमीमांसाका बड़ा विस्तार है। उसमें धर्मका लक्षण बताया है। पहले तो बड़ा शास्त्रार्थ किया है। सारे लक्षण मानो छोड़ दिये, और अन्तमें लिखा :

यः यः श्रेयस्करः सः सः धर्मः।

अर्थात् जो-जो श्रेयस्कर हो, वह-वह धर्म है। जिसकी श्रेयस्-साधनता निश्चित है, वह धर्म है। यदि उससे कल्याण नहीं होता तो वह धर्म नहीं। धर्मसे कभी अकल्याण नहीं होता, सदैव कल्याण ही होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यदि ब्रह्म-जिज्ञासा करनेपर आत्म-विज्ञानसे श्रेयस्की प्राप्ति न होती हो, तो अन्तमें अपनेको देह माना और पूँछ जुड़ी। पशु-पक्षी जानवरोंमें लगी पूँछ उनके साथ दीखती रहती है। मनुष्यकी पूँछ आँखसे नहीं, मनसे दीखती है! कितने-कितने लोगोंको अपने साथ घसीटते चले हो, चल रहे हो! यह अनुबन्ध है। जन्म-मरण लग गया। अपनेको प्राण माना तो भूख-प्यास लग गयी! अपनेको इन्द्रियाँ माना, तो संसारके विषयोंकी आवश्यकता पड़ गयी! अपनेको मन माना, तो राग-द्वेषने और बुद्धि माना तो संशयने हमें आ घेरा। अपनेको कर्ता माना, तो पापी-पुण्यात्मा हुए। भोक्ता माना, तो सुखी-दुःखी हुए। आखिर यह सारा अनर्थ कहाँसे आया? अपनेको परिच्छिन्न माननेके कारण ही। इसी भ्रान्तिसे सारे अनर्थ जुड़ गये। प्रश्न है, अनर्थोंकी निवृत्ति कैसे हो?

उत्तर स्पष्ट है, जिस अज्ञानके कारण तुमने अपनेको परिच्छिन्न माना, उसी अज्ञानकी निवृत्ति होनी चाहिए। पूछोगे: उस अज्ञानकी निवृत्ति कैसे हो? तो उत्तर है: तुम्हारी पूँछ कट जाने पर। जिसके कारण पक्षपात और क्रूरतासे पशु होना पड़ता है जिस देहसे तादात्म्य करके जन्मना-मरना होता है, वह तादात्म्य कट जायगा तब! जिस प्राणके कारण भूख-प्यास-से व्याकुल होते हो, उस प्राणके साथ तादात्म्य कट जायगा तब। जिस मनसे तादात्म्यापन्न होकर इधर राग जोड़ते हो तो उधर द्वेष; जिस बुद्धिसे तादात्म्यापन्न होकर संशय करके भ्रान्त होते हो और जिस अज्ञानसे अपनेको पापी मानकर रो रहे हो, पुण्यात्मा मानकर अभिमान कर रहे हो, सुखी मानकर फूल रहे हो, दुःखी मानकर सिर पटक रहे हो, उससे नाता तोड़ देनेपर ये सारे अनर्थ अपने आप कट जायँगे।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri/Sarayu Trust Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

यह बड़ी मतलबकी बात है। अगर इसे ठीक-ठीक समझ लिया जाय, तो जीवित रहते हुए ही सारे अनर्थ कट जायँगे। धर्मका कहना है कि 'तुम यहाँ यज्ञ करोगे तो मरनेके बाद स्वर्ग मिलेगा, दुःख मिट जायगा।' उपासनाका कहना है : 'तुम यहाँ उपासना करो, तो मरनेके बाद इष्टलोकमें पहुँच जाओगे और दुःख कट जायँगे।' योगका कहना है : 'तुम योग करो, तो समाधि-कालमें दुःख कटेंगे व्यवहारकालमें नहीं।' ज्ञान कहता है : 'इसी धरतीपर, इसी जीवनमें, परिवारमें रहते हुए, परिस्थिति बिना बदले, इसी शरीरमें रहते हुए, ऐसे ही होश-हवाशमें रहते, खाते-पीते चलते-खेलते सुखी हो सकते हो।'

इसीलिए नचिकेता कहता है : वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यः। जैसा कोई वक्ता मिलनेवाला नहीं। यह वेदान्तज्ञान संसारके सम्पूर्ण धर्मोंसे विलक्षण है। जो इसे गतार्थ मानते हैं—'कर्म, योग, उपासना-धर्म वेदान्त हैं, ऐसा मानते हैं, वे वेदान्तके रहस्यको बिलकुल नहीं जानते। वेदान्त वह वस्तु है, जिसमें इन्द्रियोंका सम्प्रयोग किये बिना विषयसुखसे विलक्षण सुख मिलता है। क्योंकि विषयसुख इन्द्रियोंके संयोगसे मिलता है। इसमें भी विषय नाशवान् होते हैं, इन्द्रियोंमें निरन्तर भोगकी सामर्थ्य नहीं है। मनमें एक-सी रुचि नहीं है। अपनी रुचिका भोग न मिले, तो गया विषयसुख और तन्मयता! तभीतक सुख रहता है जब-तक विक्षेप न आये। एक कौआ काँव-काँव करे सो विषयसुख चला जाय!

वृन्दावनमें एक आदमी आया। पहले वह बोला : 'हम पचहत्तर दिनको समाधि लगायेंगे।' फिर इक्कीस दिनकी समाधि लगाना तय किया। गड्ढा खोदा गया, वे बैठे और समाधि लगायी। बादमें वे बड़े जोरसे चिल्लाये निकालो : 'निकालो।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Vishwa Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

उन्हें निकालकर पूछा गया : 'क्या हुआ, समाधि लगी ?'
बोले : 'हाँ।'
लोगोंने पूछा : 'तो टूटी कैसे ?'
बोले : 'नाकमें चींटी घुस गयी। चींटीने जाकर ब्रह्माण्डमें काट लिया।'

यदि चींटी समाधि तोड़ सकती है, तो योग-समाधिसे क्या होगा ? यदि आपका मन शरीरकी किसी नस-नाड़ीमें ही रहता है तो इञ्जेक्शन आपको क्यों नहीं सुलायेगा और जगायेगा ? भोग, योग, तन्मयता, स्वर्ग और वैकुण्ठके सुखसे विलक्षण अभी और यहीं अद्वय-ज्ञान सुख देनेवाला है। संसारीको गुड़ खानेमें विषयानन्द आता है, तो ब्रह्मज्ञानीको गुड़ खानेमें ब्रह्मानन्द आता है।

एक बच्चा फूल देखकर ललचा जाता है, उसे फूल और इन्द्रियके संयोगसे आनन्द आता है। ब्रह्मज्ञानीको वह इन्द्रिय भी बाधित है और फूल भी बाधित। तब उसे आनन्द किसका आ रहा है ? ब्रह्मका।

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।

यह कोई मामूली बात है कि आपके चित्तपर घरके झगड़ेका कोई असर ही न पड़े। आप दुश्मनके आक्रमणसे व्याकुल न हों। उसे ऐसी स्थिरता, दृढ़ता और गाम्भीर्यसे उत्तर दें कि सुननेवाला चकित रह जाय। लोग मनोवृत्तिसे तादात्म्यापन्न होकर व्याकुल होते हैं। ये देवता, बड़े-बड़े सिद्ध ! आजकल तो बड़े-बड़े वैज्ञानिक लोग भी अपनेको देवता-सिद्ध समझते हैं।

पूर्वमीमांसाके आचार्य महर्षि जैमिनिने एक 'देवताविग्रहाधिकरण'की रचना की है। 'देवताको शरीर होता है या नहीं ? इसपर विचार किया है : 'देवता विग्रहवती न वा ? अन्तमें उन्होंने निश्चय कर दिया कि देवताओंका शरीर होता ही नहीं।'

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitization eGangotri Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुमारिलभट्टने ठीक उसका निरूपण किया कि 'देवताओंको शरीर नहीं होता।' बात क्या है। ईश्वर तो एक ही है। इसमें कोई स्थूल आकार नहीं है। उसमें सम्पूर्ण कार्योंके अनुकूल शक्तियाँ रहती हैं। जब जिस कार्यके अनुकूल शक्तियाँ रहती हैं, जब जिस कार्यके अनुकूल शक्तियोंका हम चिंतन करते हैं, परमात्मामें वही शक्ति क्रियाशील होकर हमारे अन्तःकरणमें आजाती है और उसीसे हमारा तादात्म्य हो जाता है। कर्मशक्तिसे उसका तादात्म्य होकर जब विग्रहका अवतरण होता है, तब उसका नाम 'इन्द्र' होता है। जलकी शक्तिके अनुकूल विग्रहका अवतरण होने पर 'वरुण' प्रकट होते हैं। धनशक्तिका अवतरण होनेपर 'कुबेर' प्रकट होते हैं। एक ही ईश्वर—

'एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।
'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।'

सब नामोंमें एक अनामी, सब रूपोंमें एक अरूपी, सब आकारोंमें एक निराकार!

यह मैं संसारकी बात बोल रहा हूँ। उसके नाम-रूपमें अनाम-अरूप, सब प्रतीतियोंमें एक अधिष्ठान, सब अध्यस्तोंमें एक स्वयंप्रकाश है और वह आत्मचैतन्य है। कार्यानुकूल तत्-तत् शक्तिविशिष्ट ईश्वरका ध्यान करनेसे अन्तःकरणमें उनका अवतरण होनेपर तादात्म्य होता है, और अन्तःकरणमें तत्-तत् आकार-सूर्याकार, वरुणाकार, अग्न्याकार उदय होते हैं। हम कहते हैं—'देवता आया।' परन्तु ईश्वरके परिणाम नहीं, वे अन्तःकरणके—ध्यानके परिणाम होते हैं। ज्ञानाधिष्ठान, ज्ञानप्रकाशक, स्वयंप्रकाश अपना आत्मा ज्ञानस्वरूप है।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidic Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

२१. नचिकेताका वैराग्य

संगति :

यह मृत्युदेवता- 'प्रतिषेधावस्थित देवता', वेदान्तकी भाषामें 'निषेधावस्थित देवता' 'नेति-नेति' द्वारा जो निषेध है, उस सर्वाभावका देवता यम है। 'नेति-नेति' करने पर अभावोपलक्षित ब्रह्म अन्तःकरणोपलक्षित ब्रह्मको उपदेश कर रहा है : 'तू मैं एक ! इससे बड़ा उपदेशक कोई नहीं।

नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by RajGuru Math, Shivala, Varanasi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

इस वरकी बराबरीमें दूसरा कोई वर नहीं। यमराजने कहा : 'आओ, इसे जरा ठोंक-पीट लें।' दो पैसेका घड़ा लेते हैं तो ठोंक-पीटकर लेते हैं कि कहीं पानी चूता या फूटा तो नहीं है। इन्द्रियके विषयकी भोग-लालसासे ही अमृतक्षरण हो जाता है।

एक बातका विश्वास तो गुरुको होना ही चाहिए। वह वादा करनेसे नहीं होगा। एक चेला आया, घुटने टेककर प्रणाम कर बोला : 'गुरुजी, आप हम पर विश्वास कीजिये।'

गुरुजीके मनमें आया—'वेटा तू हमपर विश्वास करेगा या हम तुझपर विश्वास करें ? हम इतने लोभी नहीं कि तुम्हें कभी छोड़ें ! हमें तेरी आवश्यकता नहीं, तू हमें पकड़कर रख।'

आज तुम्हारा मन ऐसा है, ऐसा वादा है, पर क्या तुम्हें अपनी स्थिरताके बारेमें स्थिर आधार प्राप्त है ? वह तबतक प्राप्त नहीं है, जबतक तुम अधिष्ठानसे एक नहीं होते ! जबतक तुम दोनों एक न हो जाओ, तबतक छोड़नेका प्रश्न कहाँ ? यह तो लौकिक वादा है ! प्रोफेसर बताये, उस पर विद्यार्थी विश्वास करे या विद्यार्थी बताये, उस पर प्रोफेसर विश्वास करे ? यदि तुम ब्रह्म हो तो अडिग हो। तुम ब्रह्म नहीं हो, ज्ञानप्राप्त नहीं किया तो ? गुरु द्वारा चेलेको ठोंक-पीटकर देखनेका क्या अभिप्राय है, इसे समझनेके लिए अब २३वाँ मन्त्र प्रवृत्त होता है :

शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व
बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान् ।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व
स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ २३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Varanasi. Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

हे नचिकेतः ! तू सौ वर्षकी आयुवाले बेटे-पोते, बहुत-से पशु, हाथी, सुवर्ण और घोड़े माँग ले, विशाल भूमण्डल भी माँग ले तथा स्वयं भी जितने वर्ष इच्छा हो जीवित रह ॥ २३ ॥

ईश्वरको कुछ अज्ञात नहीं। ब्रह्मदृष्टिसे कुछ भी अज्ञात नहीं है। सब परमेश्वरका स्वरूप है। परीक्षा तो वह लेता है, जिसे दूसरेका दिल नहीं दीखता। ईश्वर किसीकी परीक्षा नहीं लेता।

गोपियोंकी परीक्षा लेनेके लिए कृष्णने कहा था : 'लौट जाओ' उनका अभिप्राय था—गोपियोंके हृदयमें श्रीकृष्णके प्रति कितना प्रेम है, यह दुनिया जान जाय। इसीलिए श्रीकृष्णने उनसे रास रचाया। श्रीकृष्ण गोपियोंके प्रेमको समझते थे।

संसारके किसी भी एक कणमें–विषयमें राग है तो वृत्ति परिच्छिन्नाकार रहेगी। वह अपरिच्छिन्न पदार्थके निरूपणको कैसे ग्रहण करेगी ? उसके लिए आवश्यक है कि परिच्छिन्नका ग्रहण न हो। इसीको कोई 'नैष्कर्म्य' कहता है, कोई 'वैराग्य', कोई 'संन्यास' तो कोई 'निवृत्ति'।

एक स्त्री अपने उपपतिसे मिलने चली। बीचमें बैठे एक महात्माको उसके पैरकी चोट लग गयी तो महात्माको गुस्सा आगया और डाँटा : देखती नहीं ? स्त्री बोली : 'नर राची मैं ना लखी।'

मैं एक मनुष्यसे प्रेम करती हूँ और तुम्हें नहीं देखा। तुम ईश्वरसे प्रेम करते हो और गुस्सेमें आ गये ?

'खुदा' से प्रेम और नजर 'खुदी' पर ? उसकी घरवाली खुदी यानी मायापर नजर रखो तो वह तुम्हें चपत क्यों नहीं मारेगा। मायापर नजर रखकर मायाके अधिष्ठानको जानना चाहते हो ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

परिच्छिन्नपर नजर रखते हो—'यह पकड़ा, वह पकड़ा कहते हो और धर्म-अधर्मकी बात नहीं सोचते ! धर्म छूट जाता है। इसमें इष्ट-अनिष्ट, साकार-निराकारकी बात नहीं है। परिच्छिन्नको पकड़नेवाली वृत्ति चाहे मैं—तू, बेटा-देवता, समाधि-ध्यानरूपमें कहीं भी फँसे, वह तदाकार होती है। उसमें किसका रूप पकड़ें और किसका न पकड़ें, यह प्रश्न ही नहीं है। अपरिच्छिन्नको पकड़नेवाली वृत्तिमें किसी भी परिच्छिन्नाकारका प्रकाश नहीं होता।

मृत्युदेवता नचिकेताको यही कह रहे हैं—'किसीसे घृणा न करो, न वैराग्य। घृणा करनेसे वही परिच्छिन्न पदार्थ दिलमें आकर बैठ जाता है, जिससे तुम घृणा करते हो। वैराग्य = ग्लानि नहीं। परिच्छिन्नके विषयमें कर्ता होनेपर अपने विषयमें ग्लानि होती है। घृणा परिच्छिन्न अन्यसे होती है तो ग्लानि परिच्छिन्न स्वसे होती है। घृणा-ग्लानि, राग-द्वेषका नाम वैराग्य नहीं है। 'वैराग्य' नामको कोई वृत्ति नहीं होती। वृत्तिका अर्थ है, मनकी वह अवस्था जिसके पेटमें कुछ चमकता हो। वैराग्य ऐसी गर्भवती वृत्ति नहीं, वह शुद्ध ब्रह्मचारिणी कुमारी है। ब्रह्म + चारिणी-ब्रह्मके साथ चारिणी, ब्रह्मके सिवा अन्य किसीसे न जुड़नेवाली। वैराग्याकार वृत्तिका नाम भी 'वैराग्य' नहीं। यह तो राग-द्वेषसे रहित साम्य है। यह नहीं कि राग नहीं है, पर द्वेष है।

तत्त्वज्ञान देनेमें गुरुलोग क्यों विचार करते हैं ? वे समझना चाहते हैं कि जिज्ञासुकी वृत्ति परिच्छिन्न है या नहीं। अपनेको मिनिस्टर या सदाचारी, भक्त या योगी बनाना है, तो ज्ञान पानेके पहले बना लो। 'यह बनेंगे, वह बनेंगे' ऐसी बादके लिए वासना रखोगे तो क्या कभी पहले ज्ञान मिलेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सदाचार और दुराचारमें साम्य हो, पर तुम्हारी वृत्ति सदाचाराकार रहे। उपास्य और अपास्यमें साम्य होनेपर भी तुम्हारी वृत्ति उपास्याकार रहे। समाधि और विक्षेपमें साम्य रहे, पर स्वभावसे वृत्ति समाहित हो। अपरिच्छिन्न-परिच्छिन्न एक दीखने पर भी तुम्हारी वृत्ति अपरिच्छिन्न-ग्राहिणी हो।

लाखों लोग वेदान्ती हो जायँ, यह कल्पना वेदान्तमें नहीं है। समूचे विश्वब्रह्माण्डमें और एक ब्रह्माण्डकी उपस्थितिमें भी यदि एक तत्त्वज्ञ भी बना हुआ हो तो तत्त्वज्ञानकी परम्परा चालू रहती है। लोग धर्म, अर्थ, काम, ज्ञान, उपासना, चित्तकी स्थिति चाहते हैं।

नचिकेता इन सबको न चाहकर अद्वितीयताका बोध चाहता है। यमने सोचा 'लाओ, इसे जरा ठोंक-पीट लें।'

यम : 'हे नचिकेता, हम तुम्हें सौ-सौ वर्ष तक जीनेवाले पुत्र-पौत्र, हाथी-घोड़ा, हिरण्य देते हैं। सप्तद्वीपवती पृथिवीका वरण कर लो : 'भूमेर्महदायतनं वृणीष्व। मैं तुम्हें इच्छा-मृत्यु देता हूँ। तुम सैंकड़ों वर्ष अपने संकल्पके अनुसार जीओ और भोगो। क्या तुम्हें यह चाहिए ?

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं
वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि
कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥ २४ ॥

इसीके समान यदि तू कोई और वर समझता हो तो उसे, अथवा धन और चिरस्थायिनी जीविका माँग ले। हे नचिकेतः !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri / RajGuru Math, Shivala, Varanasi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

इस विस्तृत भूमिमें तू वृद्धिको प्राप्त हो। मैं तुझे कामनाओंको इच्छानुसार भोगनेवाला किये देता हूँ ॥ २४ ॥

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके
सर्वान् कामाँश्छन्दतः प्रार्थयस्व ।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या
न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः ।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व
नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥ २५ ॥

मनुष्यलोकमें जो-जो भोग दुर्लभ हैं, उन सब भोगोंको तू स्वच्छन्दतापूर्वक माँग ले। यहाँ रथ और बाजोंके सहित ये रमणियाँ हैं। ऐसी स्त्रियाँ मनुष्यको प्राप्त होने योग्य नहीं होतीं। मेरे द्वारा दी हुई इन कामिनियोंसे तू अपनी सेवा करा। परन्तु हे नचिकेतः! तू मरणसम्बन्धी प्रश्न मत पूछ ॥ २५ ॥

यमराज बोले : 'यदि तुम इस ब्रह्मज्ञानके बराबरीकी कोई चीज चाहते हो, तो माँग लो। चिरजीविकाके लिए धन, धरतीपर दिनोंदिन बढ़नेवाला बड़ा साम्राज्य माँगो! तुम्हारी सारी कामनाओंको मैं पूर्ण करूँगा! तुम अपनी मौजसे जो माँगोगे, उसकी मैं पूर्ति कर सकता हूँ। स्त्रियाँ, रथ, गाजे-बाजे और जो सब भी मनुष्यके लिए दुर्लभ हैं, वह जिन्हें प्राप्त नहीं कर सकता, ये सब स्वर्गलोकमें हैं और मैं तुम्हें देता हूँ। इनसे तुम अपनी सेवा करवाओ; लेकिन नचिकेता, यह मत पूछो कि—सबके मरनेके बाद कौन तत्त्व है' अशेष-विशेष—विशेषाधिष्ठान = अशेष-विशेषके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

निषेधका जो अधिष्ठान, प्रत्यक् चैतन्याभिन्न जो ब्रह्म है उसके बारेमें प्रश्न मत करो। उसे जाननेकी कोशिश मत करो। उसे जाननेवाला अधिकारी संसारमें कोई-कोई होता है।

नचिकेताने यह सुनकर कहा : 'अन्तक! तुम यह क्या बोल रहे हो?

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्
सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥ २६ ॥

हे यमराज! ये भोग 'कल रहेंगे या नहीं'—इस प्रकारके हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियोंके तेजको जीर्ण कर देते हैं। यह सारा जीवन भी बहुत थोड़ा ही है। आपके वाहन और नाच-गान आपके ही पास रहें [हमें उनकी आवश्यकता नहीं]॥ २६ ॥

हे मृत्युदेवता! जिसके सिरपर मृत्यु सवार है उस मनुष्यके लिए आज ये चीजें हैं, कल नहीं रहेंगी। जिनके पास बड़े-बड़े महल हैं, वे किरायेके मकानमें रहते हैं। किरायेके मकानमें रहने-वाले महलमें रहते हैं। दुनियां बदलती है। जो सुन्दर थे, वे कुरूप हो गये। काले बाल सफेद हो गये, बढ़िया दाँत टूट गये।

श्वोभावा : श्व = सुबह, कल रहेंगे या नहीं जिनका तुम वर्णन करते हो, ये तो इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण करनेवाले हैं। इनसे दाँत टूटते हैं, जीभ निकम्मी होती है, नाक निकम्मी हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाती है, कान बहरे हो जाते हैं, आंख अंधी हो जाता है। संसार-शरीरमें जो वीर्य-शौर्य है वह तो आगमें जल जाता है। तुम जिसे संसारमें जीवन बोलते हो वह तो बहुत नन्हा-सा है।

तवैव वाहास्तव नृत्यगीते : 'ये हाथी-घोड़े तुम्हें ही मुबारक हों। तुम्हारे सामने नाच-गाना हो। ये हमें नहीं चाहिये।'

यह जमुहाई-उवासी-छींक आती है, इसमें यह प्राणवायु हमारे काबूमें नहीं रहती। हम अपने दिलको कबतक धड़काते रहेंगे और कब बन्द कर दें, यह हमारे काबूमें नहीं। दुनियाकी स्थिति ही ऐसी है।

(**मर्त्यस्य** : 'मृत्युना आप्तस्य, मृत्युना गृहीतस्य'। संसारकी सभी वस्तुओंको मौतने अपने पंजेमें लिया है और सुबह मिलेंगे या नहीं इसमें शंका ही है। और मिल जायँ तो ?' 'सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।' ये जिन इन्द्रियोंसे भोगे जाते हैं, उनके तेजको बढ़ाते नहीं, घटाते हैं, क्षीण करते हैं।) किसीको अप्सरा या बढ़िया भोजन मिल जाय, कोई आदमी किसी एक ही इन्द्रियके भोगमें लग जाय, शीतल-मधुर-सुकुमार स्पर्श करता रहे तो क्या होगा ? उसे वह स्पर्श मालूम ही नहीं पड़ेगा। उसकी संवेदनाशक्ति क्षीण हो जायगी। कोई आदमी सुन्दर-सुन्दर दृश्य देखता रहे, तो उस दृश्यमें जो सौन्दर्य-कल्पना है वह क्षीण हो जायगी।

बम्बईमें समुद्रके आस-पास जिनका मकान है, उनके घरमें कोई मेहमान आजाय तो बड़े गौरवके साथ दिखाते हैं—'देखो, हमारे घरके सामने समुद्र।' परन्तु तुम कितनी बार दिनमें समुद्रके दर्शन करते हो ? वस्तुके प्राप्त होते ही उसे पानेकी लालसामें जो वेग होता है, वह समाप्त हो जाता है। तेज हवा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Jayamani Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

चले, समुद्रमें तरंग उठे तो उद्वेग होता है कि 'कहीं हमारा मकान गिर न जाय, बगीचा उजड़ न जाय।' भोगप्रधान होनेके कारण मनुष्यकी धैर्य, वीर्य, बल, प्रज्ञा क्षीण हो जाता है।

धर्ममें आत्मबलकी वृद्धि होती है। वस्तुको बुरा समझकर छोड़ते हो कि अच्छी होते हुए भी उसे छोड़नेकी आपमें सामर्थ्य है? कुमारी, पर-स्त्री, अपनी पत्नीके अतिरिक्तका वर्णन इसलिए कि आपकी पत्नी कुरूप है, दुर्गुणवाली है, उसमें स्वभाव-शीलकी कमी है, आपको उसके सम्पर्कसे टी० बी० हो जायगी। केवल लौकिक हानिसे? परस्त्री-सेवनकी हानिका इस दृष्टिसे वर्णन नहीं! उसमें सौकुमार्य, सुन्दरता, सुशीलता, सद्‌गुण होने पर भी उसके प्रति जानेवाले अपने मनको रोकना पड़ता है। जिसमें उसे रोकनेका आत्मबल है और जो उस देखकर उसकी तरफ बह गया, उसमें अपने मनको रोकनेका बल नहीं है। धर्म का अर्थ है आत्मबल, जो इन्द्रियों पर काबू रखता है। शास्त्रोक्त, सामाजिक, राजनीतिक विधि-निषेधसे अपने मनको रोकनेका जो बल अपने भीतर उत्पन्न होता है, उसे 'धर्म' कहते हैं। यदि हम इन्द्रियोंको भोगके पीछे छोड़ दें, तो उनमें आत्मबल बिलकुल नहीं रहेगा।

किसीने पूछा: 'महाराज, डाक्टरी और आयुर्वेदकी रीतिसे तो प्याज, लहसुन, शलगम, छत्तोमें दुर्गुण नहीं है। शरीरके लिए ये वैसे ही ठीक हैं जैसे और सब!'

डॉक्टरने बताया: ७०% तक तो बिना ओषधिके रोग मिटते हैं। जब ८०% रोग ओषधिसे ठीक हों तब उसे ओषधि-रूपमें स्वीकृति देते हैं। सब चीजोंमें रोगको मिटानेकी शक्ति हो सकती है। सब ओषधि सब रोगोंमें दवा हो सकती है, और सब चीज सब रोगोंपर कुपथ्य हो सकती हैं। आयुर्वेदिक-डॉक्टरी दृष्टिसे प्याज़

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लहसुनके गुणदोषकी यहाँ चर्चा नहीं है। निषिद्ध होनेपर भी उसके प्रति आपका मन क्यों आकृष्ट होता है ? आकृष्ट होनेपर भी आपके मनको रोकनेकी आपमें शक्ति है, तो वह धर्म है, आत्मबल है, वीर्य है, प्रज्ञाकी प्रधानता है, अन्तःकरणकी तेजस्विता है ! 'त्यक्त्वा लभते यशः।' जो त्याग करता हैं, वह यशस्वी होता है कि इसने सब इन्द्रियोंको सुखद होनेपर भी इसका परित्याग किया।

धर्म एक अन्तरंग होता है, एक बहिरंग। बहिरंग धर्मका अर्थ है, शास्त्रोक्त विधि-निषेधसे मनको रोकना। हृदयमें प्रेरक, ईश्वर सबके प्रति निष्पक्ष, सम, सर्वभूतान्तरात्मा, सर्वान्तर्यामी, सर्वाध्यक्ष है, उसपर विश्वासकर जब अपनेको रोकते हैं, तो वह बड़ा भारी संबल है। ईश्वर कमजोरोंकी चीज नहीं, बलवानोंकी चीज है। आप पुलिसपर विश्वास करके रात्रिमें घोर जंगलमें जा सकते हैं ? फौज पर विश्वासकर अगम्य स्थानमें प्रवेश कर सकते हैं ? सुनसान एकान्तमें राज्यके बलपर रह सकते हैं ? 'निर्बलके बल राम' ! जहाँ संसारका कोई बल नहीं वहाँ हमारे हृदयमें स्थित ईश्वरके प्रति हमारा विश्वास काम देता है। यह 'अन्तरंग धर्म' है। बहिरंग धर्म मनुस्मृत्यादिमें प्रोक्त है, तो अन्तरंग धर्म उपासना-शास्त्रोक्त है।

अयं तु परमो धर्मः यत् योगेनात्मदर्शनम्।

लेकिन योग द्वारा आत्म-दर्शन परम-धर्म है। आत्म-दर्शन परम धर्म है तो आत्मा क्या है ? इस उपनिषद्में आगे आनेवाला है :

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।

वह तो धर्माधर्मसे विलक्षण है। धर्माधर्मके अत्यन्ताभावसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijaya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

उपलक्षित सर्वावभासक, स्वयंप्रकाश, सर्वाधिष्ठान है। जिज्ञासुको समझानेके लिए उसके बारेमें ऐसा बोलते हैं।

'सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः'। ये संसारके भोग इन्द्रियके तेजको नष्ट करनेवाले हैं। निषिद्ध वस्तुके दर्शनसे आँख, भक्षणसे रसना, गंधसे नाक, स्पर्शसे त्वचा, श्रवणसे कान और स्मरण-चिन्तनसे मन-बुद्धि भी तेजोहीन हो जायँगे। इसलिए यदि आप अपने धर्म-यश-वीर्यको बनाये रखना चाहते हैं तो त्यागके मार्गपर चलना चाहिए। लोकमें बड़ी साधारण नीतिकी एक बात—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामार्थे कुलमुत्सृजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

यह प्रसिद्ध है कि यदि अपने खानदानमें एक आदमी बिगड़ जाय और सारे वंशका नाश उपस्थित हो जाय तो वंशकी सुरक्षाके लिए उस फोड़ेकी उंगलीको कटवा देना चाहिए।

एक आदमीके यहाँ बम्बईमें पाँवके तलवेमें एक गट्ठा हो गया था। डॉक्टरके यहाँ ऑपरेशनके लिए गया। वह तीस वर्षका जवान था। गट्ठा चीर देने पर कैंसर निकला। घुटने तक पाँव कटवा देना पड़ा कि सारा शरीर मर न जाय!

कुलकी रक्षाके लिए एकका, ग्रामकी रक्षाके लिए कुलका, देशके लिए ग्रामका, सम्पूर्ण विश्वके कल्याण के लिए देशाभिमान का भी और आत्माके लिए सारी पृथिवीका त्याग करदो।

यह आत्मा क्या है? व्यक्तिनिष्ठा? नहीं। अपने व्यक्तित्व पर अन्तमें घूम-फिरकर नहीं आये। सूक्ष्मके लिए स्थूलकी उपेक्षा अनिवार्य है। आध्यात्मिक सिद्धान्तवादी यदि यह बात नहीं समझा तो उसका अध्यात्ममें प्रवेश नहीं हुआ। इस जगत्में कहीं-न-कहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रोग-मृत्यु, दुःख-जरा, दुर्भिक्ष रहेंगे। अन्न-वस्त्र, शिक्षाविद्यालय, पाठशाला रहेंगे। आनन्दके लिए मनोरंजनके साधन रहेंगे। यह संसार संघर्षमय है। मनुष्यने यदि अपनेको छोटी-छोटी समस्याओंके लिए लगा दिया तो आत्मा ब्रह्मकी एकताकी बड़ी-से-बड़ी समस्या धरी रह जायगी। अतः उसे वैराग्य होना चाहिए : 'आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।' प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्मका ज्ञान पानेके लिए अर्थात् अपने लिए हम सबको छोड़ सकते हैं। यह तो स्वार्थ है; व्यक्तिगत स्वार्थ है? नहीं। अपने आपको ब्रह्म जानने के लिए सबको छोड़ना है। वह तो सबका आत्मा हो जाता है।

व्यापारका नियम है कि सौ रुपयेके लिए पाँचसे नब्बे तक लोग छोड़ते हैं। एक राष्ट्रके लिए प्रान्तीयता छोड़नी चाहिए। एक व्यक्ति केन्द्रमें मिनिष्टर होनेके लिए प्रान्तमें विधानसभाकी सदस्यता छोड़ देगा। बड़ेके लिए छोटेका त्याग किया जाता है। सम्पूर्ण सृष्टि अभावग्रस्त है। जो वस्तु अभावग्रस्त नहीं, उसे प्राप्त करनेके लिए सम्पूर्ण संसारको छोड़ना ही इष्ट है। इस स्थूल पांच-भौतिक सृष्टिसे बड़ी सूक्ष्म कारण-सृष्टि है। स्थूल सौन्दर्यको सूक्ष्म-ध्यानके सौन्दर्यके लिए, सूक्ष्म सौन्दर्यको समाधिके सौन्दर्यके लिए, समाधिके सौन्दर्यको आत्मसौन्दर्यके लिए छोड़ना पड़ता है। वह समाधिसे भी विशेष है।

यह ब्रह्म सम्पूर्ण—अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका प्रकाशक है, जिसमें ये सब क्षुद्र मालूम पड़ते हैं। जो ऐन्द्रियक सौन्दर्यमें, परिच्छिन्न-ग्राह्य इन्द्रिय—छोटी चीजमें ही आकृष्ट होकर अटक जाय वह ब्रह्मज्ञानके मार्ग पर नहीं चल सकता। इसलिए नचिकेताने कहा : 'इन्द्रियोंके तेजको नष्ट करनेवाले विषयोंको हम नहीं चाहते, हमें हाथी-घोड़े, लम्बी उमर नहीं चाहिए।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidic Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

२२. अधिकारका निर्णय

संगति :

यमने नचिकेताके मनकी थाह लेनेको अनेक प्रलोभन दिये। जिसके उत्तरमें नचिकेता वोला, 'धनसे मनुष्यकी कभी तृप्ति नहीं होती। तुम-जैसी इतनी वड़ी वस्तु हमें मिल गयी तो क्या हमें धन नहीं मिलेगा ? तुम मिल गये, तो सब धन तुमपर निछावर करके फेंक दें। और लम्बी आयु दोगे तो कवतक दोगे, जबतक तुम मिनिस्टर और हम चपरासी हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुम जबतक यमराजके पदपर रहोगे, तभीतक तो मुझे जिन्दा रखोगे। तुम कहोगे तो हमें भी मरना ही मरना पड़ेगा। हमारे लिए क्या सिफारिश करते फिरोगे कि 'इसे जिन्दा रहने देना। तुम जाओगे, साथ-साथ यह पूँछ भी जायगी। किसीकी पूँछ बनना बड़े खतरेका काम है। व्यक्तिके आधारपर अपने जीवनको निश्चित कर देना महान् अनर्थ है। मैं तो केवल एक वर माँगता हूँ जो अविनाशी, अमृत, अक्षरशील है, परिपूर्ण, अद्वय, प्रत्यक् चैतन्याभिन्न है, उस ब्रह्म-तत्त्वका हमें ज्ञान दो। हमें तो वही चाहिए।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो!
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं
वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥ २७॥

मनुष्यको धनसे तृप्त नहीं किया जा सकता। अब यदि आपको देख लिया है तो धन तो हम पा ही लेंगे। जबतक आप शासन करेंगे हम जीवित रहेंगे; किन्तु हमारा प्रार्थनीय वर तो वही है॥ २७॥

नचिकेता यमसे कहता है, बाहरी चीज देकर किसीको तृप्त मत करो। कर्माध्यक्ष मृत्यु स्वयं हमारा दृश्य हो गया, हमने उससे हाथ मिलाया, उसने हमें पाद्य-अर्घ्य दिया। हमें अब धनकी क्या कमी है। तुम जीओगे तबतक हम जीएँगे। हम क्या धन-आयु माँगेंगे। हम वह चीज माँगेंगे जो देना तुम्हारे लिए भी मुश्किल है। हमें तो चाहिए ब्रह्मज्ञान।

महाभारतके शान्तिपर्वमें 'कुण्डधारोपाख्यान' है। एक ब्राह्मण

RajGuru Math, Shivalaya, Varanasi Collection, Jalgaon Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

यक्षकी आराधना करता था। धनाध्यक्ष कुबेरके अनुचर और धनके मालिक यक्ष प्रसन्न हुए, 'ब्राह्मण देवता, वर माँगो'।

ब्राह्मण : 'हमें धन चाहिए।'

यक्ष : 'देखो, संसारमें बड़े-बड़े धनी हैं, कोई भी धनी सुखी नहीं हुआ। इतिहासमें देख लो। धनी निश्चिन्त होकर भोग भी नहीं कर सकता। वह सोना इकट्ठा करनेमें दूसरेको तकलीफ पहुँचाये बिना नहीं रह सकता। तुम धन मत माँगो।'

ब्राह्मण : 'हमें धन मिलेगा तो हम पाठशाला खोलेंगे, औषधालय चलायेंगे, लोकोपकार करेंगे।'

यक्ष : 'हम तुम्हारे देवता हैं, तुम हमारे भक्त हो। हम जान-बूझकर तुम्हें हानि नहीं पहुँचा सकते। हम तुम्हें धनका वरदान नहीं देंगे।'

यक्ष इतना कहकर लौट गया। ब्राह्मणने फिर अनुष्ठान प्रारम्भ किया कि जो एक बार आया है, वह दूसरी बार भी आयेगा। यक्षने रातको सोये ब्राह्मणकी आत्मा खींच ली, उसे नरकमें ले गया और दिखाया 'जो धरतीपर धनी, बड़े-बड़े राजा थे, उन्होंने दूसरोंको, गरीबोंको दुःख दिया वे यहाँ कीड़ेकी तरह बिलबिलाते हैं।' उसमें-बड़े-बड़े राजाओंके नाम हैं। ब्राह्मणने यक्षसे इसका कारण पूछा। यक्षने बताया, 'ये धनी अधिक सम्पत्ति होनेका अभिमान करते हैं और अभिमानवश प्राणी-हिंसा करते हैं।

सब दिखाकर यक्षने पूछा : हम तुम्हें धन देनेको तो तैयार हैं। तुम इस गतिको पानेको तैयार हो।'

ब्राह्मण, : 'नहीं।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यक्ष : 'तो तुम अमुक महात्माके पास जाओ। सत्संगसे तुम्हें आत्मज्ञान मिलेगा। अपने स्वरूपको तुम जानोगे तो न दूसरोंको दुःख दोगे, न नरकमें जाओगे और कोटि-कोटि जन्म-मरणके चक्करमें नहीं फँसोगे।'

हमारे गाँवमें एक बार दो व्यक्तियोंके बीच बात हुई कि साम्यवाद आने पर सम्पत्ति बँट जायगी। एकने लाठी लेकर कहा : 'देखें कौन और कैसे आता है।' इसपर आपसमें लड़ाई हो गयी।

यहाँ जो अपने धनी होनेका अभिमान करते हैं वे अमेरिका जानेपर वहाँके धनियोंके आगे अपनेको गरीब अनुभव करते हैं।

आजकल लोग रोचक कहानियाँ, उपन्यास, चुटकुले पढ़ना पसन्द करते हैं। दिमागपर जोर पड़े ऐसा नहीं, दर्शनशास्त्र नहीं पढ़ेंगे। हम बताते हैं, महाभारत ऐसा ग्रन्थ है जिसमें रोचकता और मानव-मनोविज्ञानका चित्रण, यथार्थ और आदर्श एक साथ मिलते हैं। यदि यथार्थ चाहिए तो पुराण, महाभारत पढ़िये।

सन् ३१-३२ में एक शिक्षक अपनी पत्नीके मर जानेके बाद नौकरी छोड़कर गीताप्रेसमें आ गये। वे लेख लिखकर छपवाना चाहते थे। मैंने इस कहानीका हिन्दी किया, उन्होंने इसीका अंग्रेजीमें अनुवाद किया और 'कल्याण-कल्पतरु' में यह छपी। अमेरीकामें UNITY में लाखोंकी प्रतियाँ इसीकी छपीं। हमारे विद्वानोंको इसमें क्या महत्त्व है, यह दृष्टिगोचर नहीं हुआ था। वहाँ छपी तब बोले : 'यह इतनी अच्छी है ?'

महात्मा गांधी कहते थे : 'यदि हमारे हृदयमें अहिंसा बनी रहे तो इसके सामने सब तुच्छ हैं। अहिंसा मिटाकर देशकी स्वतन्त्रता नहीं चाहिए। वह बहुत बड़ी वस्तु है!'

RajGuru Math, Shivalaya, Sanaskruti Evam Vaidik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

मैं मनुष्य, बूढ़ा होनेवाला, मरनेवाला, नीचे लोकमें धरती पर रहनेवाला यहाँ आगया हूँ जहाँ लोग न बूढ़े होते हैं, न मरते हैं। अब मैं विषयोंका सेवन करूँ, अन्धकारमें भटकता रहूँ; इससे बढ़कर हमारी और क्या मूर्खता होगी।

पुनः नचिकेता बोला : 'यमराज ! हमें प्रलोभन मत दो। हमारी उसमें आस्था नहीं है। हम धरतीपर रहनेवाले, बुढ़ापे और मृत्युसे ग्रस्त मनुष्य पिताकी और ईश्वरकी कृपासे यहाँ आगये हैं। आप छोटी-छोटी चीजोंमें हमारा मन मत लगाओ। हमें भोग नहीं चाहिए।

'शुक्लेन कर्मणा'—योगदर्शनमें कृष्ण-कर्म और शुक्ल-कर्म दो बताये हैं। कृष्ण माने चित्त गंदा करनेवाले बुरे कर्म और शुक्ल अर्थात् चित्त पवित्र करनेवाले पुण्य कर्म। मिश्र-कर्म माने शुक्ल और कृष्ण दोनों कर्म। व्यापारी ब्लैक करता है यानी कृष्ण-कर्म करता है।

मनुष्य दो घड़ी जिये, पर चमकके साथ जिये, शुक्लकर्म करे। नहीं तो कल्पभर जिये, पर हिरण्याक्ष होकर जिये तो वैसा जीना व्यर्थ है। हिरण्य+अक्ष=सोने पर जिसकी आँख हो, अर्थात् अर्थ-जीवी। हिरण्यकशिपु=सोनेकी शय्यापर सोनेवाला, भोगजीवी। अर्थजीवी, भोगजीवी होकर कल्पभर जिये तो क्या जिये ? धर्मजीवी होकर आत्मबल, प्रज्ञाबल, धैर्यबलका सम्पादन करना और उसे सम्पन्न होकर जीना—जीवन है।

भागवतमें इसका बड़ा सुन्दर प्रसंग है—'कलियुग और अधर्ममें क्या रिस्ता है?' चार जगहपर चार बात हैं :
१. कलियुगका बाप अधर्म है—अधर्मः प्रभवः कलिः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२. कलियुगसे अधर्म पैदा हुआ—कलिः प्रभवः अधर्मः। ३. दोनों आपसमें दोस्त हैं। कौन किसका बाप है यह नियम नहीं कर सकते—अधर्मः सखा कलिः। अधर्मका पन्थ है उसमें बाप-बेटा, भाई-भाई, मित्रका कोई सम्बन्ध नहीं, स्थिरता नहीं।

नचिकेताकी मृत्युपर दृष्टि है। वह कहता है—'यमराज, यह सम्पूर्ण सृष्टि परिच्छिन्न है। एक दिन यह भिन्न-भिन्न, छिन्न-छिन्न हो जायगी। एक दिन कट-पिट जायगी। ये सारे प्राणी मर जायँगे, नहीं रहेंगे अर्थात् कालमें इनकी सत्ता नहीं है। एक ऐसा स्थान है, जहाँ ये हैं ही नहीं। किसी वस्तुकी मृत्यु काल-विशेष और देश-विशेषमें पहुँचनेसे होती है। जैसे ठंढे देशमें रहनेवाली चिड़िया गरमदेशमें और गरमदेशमें रहनेवाली चिड़िया ठंढे देशमें मर जायगी। आदमी किसी विशेष वस्तुका सेवन करनेसे मर जायगा। भाव-विशेष स्थिति-विशेषमें भी मृत्यु होती है।

शेष-अशेष-निषेधावधिमें देश-काल-वस्तु नहीं है। उस अभावमें मृत्युका निवास है। तुम बताओ, जिसके सम्बन्धमें यह विचिकित्सा है, संशय है। 'महति पराये' सबके होने-न-होनेमें इस आत्मलोकके सम्बन्धमें लोगोंमें बड़ी विचिकित्सा है कि 'है या नहीं है?' यह साधारण लोगोंका प्रश्न है। असाधारण लोग प्रश्न करते हैं कि—'यह है तो अविनाशी है कि नहीं?' इसीके क्रममें उत्तरोत्तर अनेक प्रश्न ऐसे लोग करते हैं कि—'यह परिपूर्ण है या नहीं? सर्वोपादान है या नहीं? सर्वाधिष्ठान है या नहीं? स्वयं-प्रकाश है या नहीं। इसके ज्ञानसे मुक्ति मिलती है या नहीं।

'योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टः।' हमारा यह वर मामूली नहीं। पीछे-पीछे घूमे वह वर नहीं। जिसके पीछे या पास जाना पड़े,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

यह वह वर है। बड़े गुप्त स्थानमें यह रहता है। इसके पास पहुँचना बड़ा मुश्किल है। यह गुहामें रहता है। पंचकोषकी पाँच गुहाएँ हैं। जैसे सिंह पाँचवीं गुहाके भीतर जाकर निवास करता हो और उसके पास जाना मुश्किल हो, ऐसे यह हरि अर्थात् सिंह सर्वापहारी सब कुछ ले ले, छुड़ा ले तब मिले। तो वही-वही रहे, एक हो जाय हमसे।

'परमे व्योम्नि' : पंचमहाभूतमें नहीं, अत्यंत गुह्य देशमें, पर व्योममें, सम्पूर्ण गुहाओंसे परे, सबको खाये हुए, सबमें व्याप्त यही-यही है जो गुहारूपमें मालूम होता है।

'तस्मात् नचिकेता अन्यं न वृणीते। इसलिए नचिकेता 'आत्मज्ञानके सिवा दूसरा वर नहीं चाहता। इस प्रकार नचिकेताने अपनी प्रबल जिज्ञासा प्रकट की। यह नचिकेता अपने पिताके सामने भी सत्याग्रह करके आया है। यह न्याय-परायण, सत्य-परायण है, यथार्थ-परायण है, जिसने मृत्युका वरण किया है, जिसने मृत्युसे अपने पिताका परितोष अर्थात् अग्निविद्या प्राप्त की है, यह अग्निसे तादात्म्यापन्न है। यह नचिकेता मृत्युके सिवा अन्य कोई वस्तु नहीं चाहता है।

इसमें अपनी अधिकार-सम्पत्तिका दावा है। वैराग्य यानी परब्रह्म परमात्माके साक्षादपरोक्षानुभवके सिवा नचिकेताको अन्य कुछ नहीं चाहिए। यह स्थिरता, दृढता, अधिकार-सम्पत्ति देखकर आगे यमराज उसे उपदेश करते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

प्रथम अध्याय

द्वितीय वल्ली

१. श्रेय-प्रेय-विवेक

संगति :

प्रथम वल्लीमें अधिकारी कैसा होना चाहिए, यह बताया। उसमें न्याय, सत्य, पितादिके प्रति हितैषिता, मृत्युसे निर्भयता, प्रलोभनमें भी अविचलता तथा धर्म, उपासना एवं वेदान्तमें श्रेष्ठ रुचि हो। विषयकी प्रशंसा करनेके लिए अब यमराज कहते हैं :

> अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेय-
> स्ते उभे नानार्थे पुरुष ँ सिनीतः ।
> तयोः श्रेय आददानस्य साधु
> भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ १ ॥

श्रेय (विद्या) और है तथा प्रेय (अविद्या) और ही है। वे दोनों विभिन्न प्रयोजनवाले होते हुए हो पुरुषको बाँधते हैं। उन दोनोंमेंसे श्रेयका ग्रहण करनेवालेका शुभ होता है और जो प्रेयका वरण करता है वह पुरुषार्थसे पतित हो जाता है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विद्या और अविद्या दो विभाग हैं। विद्याका विभाग अविद्यासे श्रेयस्कर है। हमारे शरीरमें कर्मेन्द्रियाँ हैं, ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और उनके भीतर है मन। आप पहले आँखोंसे देखकर पाँव रखते हैं या पाँव रखकर बादमें आँखोंसे देखते हैं? यदि आँखोंसे देखे बिना चलेंगे तो गड्ढेमें गिरेंगे। पाँव कर्म करता है, पर अंधा है। आँख ज्ञान देती है और देखती भी है। केवल कर्म हमें उन्नति-प्रगतिकी दिशामें नहीं ले जा सकता। पहले हाथसे मुँहमें कोई चीज डाल-कर बादमें विचार करो कि यह क्या चीज है, तो वह मूर्खता होगी। पहले विचार करो। जीभसे बोलनेके पूर्व पहले समझ लो।

वाणी, हाथ, पाँव, मूत्रेन्द्रिय ये कर्मेन्द्रियाँ अविद्याके विभाग हैं। मन, बुद्धि, नेत्र, श्रोत्र, नासिका, रसना और त्वचा ये ज्ञानेन्द्रियाँ विद्याके विभाग हैं। आप किस विभागके अनुसार चलते हैं?

तीस-चालीस वर्ष पूर्व हमारे बचपनकी बात है। हमारे गाँवमें आबादी खासकर ब्राह्मणोंकी थी। छोटी जातियोंमें भी सात-आठ-नौ वर्षके छोटे-छोटे बच्चोंके ब्याह हो जाते थे। अब नहीं होते। बच्चे धूल-माटीमें खेलते; शरीर और कपड़ा गंदा करते। बड़े लोग उनसे कहते: 'ऐ देखो, 'तुम्हें देखनेके लिए कोई देखहरू आया है। क्या माटीसे खेलते हो?' यानी लड़कीका बाप, चाचा, भाई। वह तुरंत भागकर स्नानकर स्वच्छ कपड़ा पहन लेता, क्योंकि उसे ब्याह करनेका मन होता। 'हमें पसंद करें' इस विचारसे उसे साफ-सुथरा रहनेका खयाल हुआ या नहीं, भले ही उसे देखने कोई न भी आये?

हम अपने बाबाके साथ खेतोंसे चलते। खेतकी दो भुजा चल लेनेपर रास्तेपर चलना हो पाता। हमारे बाबा खेतकी दो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajpayee Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

भुजा पारकर ठीक रास्ते पर चलते। हम तो बीचमें ही चलते, ताकि सीधे मेड़पर पहुँच जायँ। रास्ता तो मालूम था ही। बाबा वैसे कभी नहीं जाते। बादमें वे हमें डाँटते : 'देखो, दूसरेके खेतमें चलोगे तो उसकी जुती-बोयी जमीन पैरसे रौंद जायगी। बीज उगते हैं, वे रौंद जायँगे। बेचारेकी खेती खराब हो जायगी। रास्ता छोड़कर खेतसे क्यों चलते हो ?'

आदमी रास्ता छोड़कर क्यों जाता है ? बनी मर्यादा क्यों तोड़ता है ? एक तो कारण है बचपन यानी अविद्या। कई बार हमें अपने गाँवसे शहरमें जाना हुआ। गाँवमें तो रास्ता मालूम रहता। जल्दी पहुँचनेकी धुन रहती कि खेत लाँघकर चले जायँ। मनकी वासना इतनी प्रबल रहती कि तालमें, पानीमें होकर भी चले जायँ। एकबार चित्रकूट गये तो कामदगिरिसे हमें अपना ठहरनेका स्थान दीख रहा था। सोचा, सीधे चलें तो रास्ता भूल गये। बम्बईमें किसी गलीमें घुस जायँ तो ठीक लक्ष्यपर पहुँचना मुश्किल हो जाय !

सारांश, अपना शुद्ध मार्ग छोड़कर अशुद्ध मार्गपर चल पड़ना अविद्या-विभाग है। जो अपना प्रेय और श्रेय चाहता है, उसे अविद्या या अज्ञानका मार्ग छोड़कर, सही मार्ग जानकर चलना चाहिए।

श्रेयः = अतिशयेन प्रशस्यं श्रेयः।' 'प्रशस्य'-में 'शस्य' श्रेय है। 'श्रेयस्' से ही श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, श्रेयान्, ज्यायान्, शब्द बने हैं।

संसारमें जिसका किसीसे राग-द्वेष हो, वह सत्य नहीं जान सकता। राग मीठा है, पर उसमें 'और-और' की प्यास है। इसके विपरीत द्वेष कड़वा है, उसमें जलन है। इसलिए रागी और द्वेषी दोनों यथार्थज्ञानके अधिकारी नहीं। कोई भूखा-प्यासा हो,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

किसीकी दाढ़ीमें आग लगी हो, तो क्या वह ज्ञानकी बात सुनेगा ? द्वेषमें तो कलेजेमें आग लगती है। राग-द्वेषयुक्त चित्तवाला न ठीक सुनेगा और न समझेगा।

अपनी हीनतासे ग्लानि होती है। दूसरेके दोषसे घृणा होती है। दूसरेको अनिष्टकारी समझनेसे द्वेष होता है, तो इष्टकारी समझनेसे राग। द्वेषके कारण दिलमें अपना दुश्मन आ बसता है, तो रागके कारण अपना प्यारा। दिलमें ये हैं और वैराग्य नहीं तो ज्ञान, सत्य, यथार्थ, अपरिच्छिन्न ब्रह्मको कैसे समझोगे ? राग-द्वेषका शैथिल्य 'वैराग्य' है।

श्रेय और प्रेय, सत्संग और सिनेमा अलग-अलग हैं। सिनेमा घरमें उतरकर नहीं आ सकता। उसकी रहनी दिलमें भर जायगी, तो हमारी वासनाएँ उभर आयेंगी। सिनेमा देखकर हम सुखी नहीं हो सकते, क्योंकि बड़े-से-बड़ेके घरमें भी सिनेमाके दृश्य, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, पति-पत्नी-बच्चा कुछ भी नहीं आ सकता। तब सिनेमासे आक्रांत-चित्त कहेगा : 'घरमें नरक है।' इस प्रकार सिनेमा सबके प्रति हीन-बुद्धि उत्पन्न कर देगा। उससे दो घण्टा आनन्द लेकर बाईस घण्टे, पूरी जिंदगी दुःखसे भर देंगे। स्वाप्निक जीवनमें विचरण करते रहेंगे और वास्तविक जीवन अग्निमय हो जायगा। महाराज मनुने इसे 'प्रेय' बताया है।

श्रेय : हमारे पितामहने एकबार हमें मारा। तब मैं सात-आठ वर्षका था। किसी कारण मैं रूठ गया था। मैंने बदमाशी यह की कि पाँव कुएँमें लटकाकर बैठ गया। मुझे उन्होंने मनाया, हाथ पकड़कर वहाँ-से हटाया, फिर भी न माना तो पीटना शुरू कर दिया और डाँटा कि 'यदि आजसे फिर कभी कुएँमें पाँव लटकाया तो …!' उनका पीटना खराब लगता, पर उसमें वात्सल्य, भलाई थी या नहीं ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

असलमें जीवनको सत्य और हितके मार्गपर ले जाना हो, तो हमें तात्कालिक इन्द्रिय-सुखकी ओर नहीं देखना चाहिए। श्रेय देखना चाहिए, जिससे सही जीवनका निर्माण हो।

मनुष्यके जीवनमें निष्काम कर्मका अभ्यास चाहिए। वह श्रेय हो सकता है। प्रतिदिन सन्ध्यावन्दन, अग्निहोत्र, गीतापाठ धन या स्वर्ग पानेके लिए नहीं, अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए एक अच्छी आदत है। यही भारतीय संस्कृति है। वृन्दावनमें लोग आकर रहते हैं, टेलीफोनसे रोज व्यापार करते हैं। 'के भाव, के धारणा' की चिन्ता करते हैं। हर साल बच्चे पैदा करते हैं। उन्हें सन्ध्या-वन्दनके लिए कहें तो कहते हैं : 'सकामभाव हो जायगा!' कहना होगा कि ऐसे लोगोंका दिमाग खराब हो गया है।

आखिर श्रेय-प्रेयकी विभाजक रेखा क्या है? दोनोंके प्रयोजन भिन्न-भिन्न हैं। एक चाहता है मुक्ति, तो दूसरा चाहता है भुक्ति। 'म' के पहले 'भ' यानी मुक्तिके पहले भुक्ति है। किसीको मुक्ति पानेके लिए विवश नहीं कर सकते। गंगा-किनारे विचरण करनेवाले, जंगलमें रहनेवाले साधुओंसे जो सीखा है, उसका हमारे चित्तपर प्रभाव हैं। हम नहीं कहते : सब बैलोंको एक रास्तेपर हाँको और कहो कि 'तुम्हें मोक्ष चाहिए, तुम्हें मोक्ष चाहिए?' नेता लोग 'जनताकी आवाज' बताकर कहते हैं : 'हमारी पार्टी जीत जायगी। सारी जनता हमारे पक्षमें है।' यह निरा प्रचारका ढंग है।

किसी साधारण व्यक्तिसे पूछा जाय कि 'मालूम है, तुम्हें क्या चाहिए?' तो उसका उत्तर सही नहीं होगा।

प्रचारक साधु कहेंगे कि 'तुम्हें मोक्ष चाहिए?' तो वह बोलेगा : 'मालूम नहीं, मोक्ष क्या है?'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

तब वे उसे समझायेंगे : 'अरे, उसमें तो परमानन्द है। वह स्वर्गसे भी श्रेष्ठ है। ईसाई, मुसलमान, हिन्दूके स्वर्गसे भी सुन्दर यह परमानन्द है।'

वह पूछेगा : 'महाराज, कैसे मिलेगा ?'

महाराज बतायेंगे : 'आ जाओ हमारी पार्टीमें, तभी मिलेगा। नहीं तो नहीं।'

भारतीय संस्कृतिमें, वेदोंमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ बताये हैं। 'अर्थ' और 'काम' पर धर्मका नियन्त्रण हो। ये दोनों धर्मसे विपरीत नहीं होने चाहिए। पहले ही दिन अर्थ-काम छोड़नेको कहा जाय, तो वे बाहरसे तो छोड़ देंगे, पर दंभी हो जायँगे। उनकी वासनाको निकासका मार्ग नहीं दिया गया तो विप्लव मचेगा। धर्मसे नियंत्रित उनकी वासनाको नहर मिलेगी। धर्मशास्त्रमें बताया गया है कि वैराग्य और राग-द्वेष भेदसे वासना दो प्रकारकी है :

'वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातो भयलक्षणा। एकके अन्तः-करणमें राग-द्वेष होता है, तो दूसरेके अन्तःकरणमें वैराग्य। राग-द्वेष हो तो पहले अर्थ-कामकी प्राप्ति की जाय, पर चोरी, बेईमानी, व्यभिचारसे मुक्त रहकर।

अन्तःकरणको ठीक रास्तेपर चलानेके लिए धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थ समन्वित और नियन्त्रित होने चाहिए। जबतक ब्राह्मणोंके हाथमें यह बात रही, तबतक गृहस्थोंके लिए वे ही चारों विभागोंकी योजना कर देते थे। जब विद्वान् ब्राह्मणोंके आचार-व्यवहारमें न्यूनता दीखी, तो इस क्षेत्रमें साधु उतर पड़े। साधुओंने आकर मोक्ष-पुरुषार्थकी विशेषता सबके सामने रख दी। भले ही कोई रागी-द्वेषी हो, पापी-पुण्यात्मा हो, चोरी-बेईमानी करता हो,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaishnavi Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

वे कहते : 'आओ, हम तुम्हें बृहदारण्यक उपनिषद् ही सुनाते हैं : अहं ब्रह्मास्मि।' पूछेंगे : 'ऐसा करनेमें साधुको क्या लाभ हुआ?' उसने गृहस्थसे कहा : 'तुमने जो कमाया है, उसमें हमारा हिस्सा! तुम्हारा अधिकार देखकर तो हमने नहीं बताया। हम दोनों ही अनधिकारी ठहरे तो हो जाय मेल-मिलाप! हमें तुम धन दो! और हम तुम्हें वेदान्त देंगे!' सारांश, यह एक कटु सत्य है, पर ऐसा नहीं होना चाहिए। अधिकारी देखकर ही किसीको किसी प्रकारका उपदेश देना चाहिए।

गुरु यमने भी शिष्य नचिकेताको परीक्षा कर, योग्यता देखकर कि 'यह विरक्त है या नहीं,' ज्ञान दिया। यमने कहा : 'वत्स! हमसे सब कुछ माँग लो, पर ब्रह्मविद्या मत माँगो।' इसका अभिप्राय यह कि वैराग्यवान् ही मुक्तिका अधिकारी है।

मुक्ति आखिर क्या है और किससे वह पानी है? जेलमें कोई मुद्दतसे बन्द हो तो वह जेलरको प्रार्थनापत्र देता है कि 'हम बहुत दिन जेल रहे, अब गड़बड़ी नहीं करेंगे, हमें मुक्त कर दो।' लेकिन यहाँ किससे मुक्त होना है?

> नाविरतो दुश्चरितात् नाशान्तो न समाहितः।
> नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैवमाप्नुयात्॥

यह आरण्यक-विद्या है। चार बातें बतायीं : (१) दुश्चरित्र छोड़ो। (२) नाशान्तः—काम - क्रोध भी निकाल दो। (३) सिद्धिकी इच्छा छोड़ो और (४) मनको शान्त करो। इसमें अवरोह या क्रमपूर्वक नहीं बताया गया है। श्रेयस् या कल्याणका मार्ग अपनाना है तो जरा साधनपर भी दृष्टि डालो। अर्थ, भोग, यज्ञकर्म भी दुःखके कारण हैं। मुक्ति-भोगके झगड़ेमें अर्थात् ग्लानिमें मत फँसो। धनके झगड़ेमें मत फ़ँसो। आगके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सामने बैठकर होम न करना पड़े। अर्थ, भोग, सांसारिक वस्तुओं, लोक-परलोकके सुखके लिए दिन-रातका जो विक्षेप है, उससे मुक्ति मिले। आप किससे मुक्ति चाहते हैं? यदि किसीसे पूछें : 'क्या छोड़ सकते हो?' तो उत्तर सुनकर आश्चर्य ही होगा।

हमारे घरकी बात है। कल्पना नहीं, स्वयं मेरे पिता यह आपबीती सुनाते थे। वे जगन्नाथपुरी गये। दर्शनके बाद पण्डोंने कहा : 'तीर्थमें आये हो तो कुछ छोड़ कर जाओ।' उनके मनमें यह नहीं सूझा कि काम, क्रोध, झूठ छोड़ दें। कोई सब्जी या फल छोड़ें, यह तयकर सोचने लगे—'आलू सब्जियोंका राजा है, उसे कैसे छोड़ा जाय? भंडारेवाला काशीफल (लाल कोंहड़ा) घर पर तो छोड़ सकते हैं। लेकिन ब्याह हो, सत्यनारायणकी कथा हो, ब्रह्मभोज हो तो उसका शाक बनेगा ही। इसलिए उसे भी छोड़ते नहीं बनता। पण्डेसे कहा : 'विचार कर कल बतायेंगे।'

दूसरे दिन बहुत सोच-विचारके बाद उन्होंने बताया कि 'गूलरका फल नहीं खायेंगे।' गूलर जिन्दगीभरमें खानेका मौका ही नहीं आता।

यह है हमारे त्यागकी दशा! लोगोंको छोड़नेकी बात तो मालूम ही नहीं, और चाहते हैं मुक्ति। सभी चीजोंकी चाह है, तो मुक्ति कैसे हो? इसलिए मुक्तिको 'श्रेयस्-निःश्रेयस्' कहते हैं। इस मुक्तिमें राग-द्वेषका अत्यन्ताभाव हो जाता है। मनुष्य जिन्दा रहता है, पर राग-द्वेष ऐसे होते हैं कि उसका मन ढीला कर डालते हैं।

तेरे भावे जो करो भलो-बुरो संसार।
नारायण तू बैठके अपनो भवन बुहार॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

उत्तरी ध्रुवपर छह-छह महीनेतक रात नहीं होती, दिन ही दिन होता है। वहाँसे एक आदमी आया। दिनके बारह घंटे बाद ही रात आती देख शोर मचाने लगा : 'भागो, भागो। असमयके समय पर कहींसे अंधकार छा गया। सृष्टिमें कहीं उपद्रव-उपप्लव होने जा रहा है।'

एक आदमी शांतिसे अपने कमरेमें बिजलीका बल्ब जलाकर बैठा था। उसने पूछा, 'क्या है ?'

वह बोला : 'अरे अंधेरा आ गया।'

कमरेमें बैठे आदमीने कहा : 'तेरेलिए आश्चर्य है, पर हमारे तो रोज ही रात आती है।'

कालक्रमसे त्रेता, द्वापर, कलियुग आते ही हैं। इन्हें दूर करनेके लिए नहीं दौड़ते : उपासना करो, धर्मका पालन करो, ईश्वरको पुकारो, जप-तप करो, तो रात न आने पाये। हम तो दिया जलाकर बैठे हैं, सो जायँगे। रात बीत जायगी। सुबह प्रकाश होगा। तुम तो अंधकार हटानेका ही कोलाहल मचा रहे हो। वह तो अपने आप हट जायगा !

अंधकार रूप अधर्म दूर करनेके लिए तुम भी कुछ करो। दिया नहीं जलाओगे और सोओगे ? भाई, यह सृष्टिका क्रम ही है। चित्तको शान्त करो। बच्चे चित्त अशान्त करते हैं। उदार-चित्त महापुरुष महाप्रलयकी हुंकारमें भी चित्त अशान्त नहीं होने देते।

आप कहेंगे : 'हम जरा आंदोलन छेड़ दें, मातमपुर्सी मना लें, आग, रेल-दुर्घटनापर व्याख्यान दे दें। छात्र-आन्दोलनका विरोध कर दें, तब तो आप कठोपनिषद् नहीं, सामयिक परिस्थितियों-पर व्याख्यान ही सुनते रहेंगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

जब दिन आता है, तो रात भी आती ही है। सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, मन्वन्तर, कल्प बीतते हैं और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र भी मरते हैं। आपसमें टकराकर ब्रह्माण्ड भी टूटते हैं। प्रकृति शान्त-क्षुब्ध होती है। लेकिन उधरसे दृष्टि हटा लो। अधिष्ठान-चैतन्य, स्वयंप्रकाश, सर्वाधिष्ठान, सर्वावभासक कोई मामूली चीज है? क्षुद्रोपद्रवसे विद्रावित हो जाना, परब्रह्म-परमात्माकी अपरिच्छिन्नता, स्वयंप्रकाशता, सर्वाधिष्ठानतासे विमुख हो जाना, श्रेयका मार्ग नहीं। श्रेयके मार्गपर चलना बड़ा विलक्षण है। श्रेय और प्रेय दोनोंके प्रयोजन भिन्न-भिन्न हैं। जिसका जैसा अधिकार हो, वैसे ही साधनमें वे लगते हैं।

एक ही सड़कपरसे दो आदमी अपने-अपने प्रयोजनकी भिन्नतावश दाँये-बाँये चलते हैं। आपका प्रयोजन मुक्ति, निःश्रेयस्की प्राप्ति, प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्मका साक्षात्कार है न? नैमित्तिक सुखसे विरत हो नित्य, पारमार्थिक सुख ही चाहते हैं न?

ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः। तयोः श्रेयः आददानस्य साधु भवति। उभे=श्रेय प्रेय दोनों। पुरुषं=विशिष्ट अधिकारीको। नानार्थे=भिन्न-भिन्न प्रयोजनोंमें लगाते हैं। जो चाट खाना चाहता है, वह चौपाटीपर जायगा। जो सत्संग करना चाहता है, वह प्रेमकुटीरमें जायगा। जो संसार चाहता है, वह भोगमें जायगा। उसे चौरंगी अच्छी लगेगी। पैसा कमाना, बाज़ारमें जाना अच्छा लगेगा। इसलिए जिसे विद्याके मार्गपर चलना है, वह संसारके आवागमनसे, स्वर्ग-मृत्युसे, राग-द्वेषसे और जन्म-मरणसे मुक्त होकर सत्यका साक्षात्कार करे।

बहुमतका झुकाव प्रेयकी ओर ही रहता है, जहाँ वृत्तियोंकी तृप्ति होती है। लेकिन मोक्षका निर्णय वोट (vote) से नहीं होता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidik Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जो सत्संगमें रुचि रखनेवाला है, वह अनन्तकालीन श्रेयका ही वरण करता है और उसे अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। यदि सम्पूर्ण विश्वमें एक भी तत्त्वज्ञानी होगा, तो भी उसकी परम्परा चलती रहेगी। कभी उसका लोप नहीं होगा, क्योंकि वह सत्य है, यथार्थ-वस्तु है, ईमानदारी और अपने लाभ-कल्याणकी बात है। संसारका लोभ छोड़कर उसका लोभ करना श्रेयस्कर है।

हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते। 'प्रेय' अर्थात् इन्द्रियोंके भोगोंका वरण करनेवाला नित्य-अविनाशी परमार्थसे वंचित हो जाता है। वह प्रेयमें आसक्त होकर परिणाममें कड़ुवाहटके सिवा और कुछ नहीं पाता। यह जानते हुए भी कि प्रेयका उपसंहार कड़ुवा होगा, वह अपनेको बचा नहीं पाता।

क्षत्रिय लोग मांस-मछली खाते हैं। हमारे गाँवके पास एक क्षत्रिय था, उसे जलोदर हो गया। डॉक्टरने उसे मछली खानेसे मना किया और बताया कि 'मछली कभी खाओगे तो मर जाओगे।' मैं गीताप्रेससे घर जा रहा था। रास्तेमें देखा—नौकर उन्हें पालकीमें लेकर डॉक्टरके पास जा रहे थे। डॉक्टरके मना करनेपर भी उन्होंने मछली खा ली थी। डॉक्टर अब कुछ नहीं कर सका। आखिर वे सज्जन मर गये।

जीभकी तरह सारी इन्द्रियाँ हमें धोखेमें डालनेवाली हैं। इनके सामने मनुष्य अपनी बुद्धि, ज्ञान, अन्तरात्मा, भलाई और हितका भी तिरस्कार कर देता है। श्रेय ही परमार्थ है, नित्य शाश्वत और हित है। यदि उसे छोड़ तात्कालिक सुखको वरण करोगे तो परमार्थसे वंचित हो जाओगे। श्रेय-प्रेयमें द्वन्द्व मचा हुआ है।

तुम्हारे जीवनका ड्राइवर कौन है? तुम्हारा ड्राइवर होश-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हवाशमें है या शराब पिये है ? यदि इन मतवाली इन्द्रियोंने तुम्हारे जीवनका नेतृत्व पाया तथा प्रज्ञा निद्रित और बेहोश है, तो निश्चय ही तुम प्रेय-मार्ग पर चल रहे हो। अन्यत् उ त एव प्रेयः। वर्तमानमें मिठाईका जो मजा लूट रहे हो, उसमें जहर मिला हुआ है। गाँवमें कहावत चलती है :

गयी नार जब खाय मिठाई।
गया पुरुष जब खाय खटाई॥

अर्थात् परपुरुषोंका संपर्ककर स्त्री अपनी जिह्वा तृप्त करने लगे, तो वह काबूमें नहीं रहेगी। पुरुष जब खट्टी चीजका अधिक सेवन करने लगेगा, तो मान लो उसका पुरुषत्व जानेवाला ही है।

अभिमान करनेवाले भी बाहरी चीजोंसे ही राग जोड़ते हैं। अच्छे खानदानमें पैदा होनेका अभिमान करके भी मनुष्य सत्य, सदाचार, ईमानदारीसे नहीं चलता। गुंडे भी तो अभिमान करते ही हैं कि 'हमने दस जानें लीं। ऐयाश कहता ही है : 'सैंकड़ों स्त्रियोंसे हमारा सम्बन्ध है।' हाँ, इन्होंने तो बहुत गंदा विभाग चुन लिया है। इसकी अपेक्षा यह अभिमान कहीं अच्छा कि 'मैंने ऐसे-ऐसे बेशकीमती कपड़े, जेवर और भोग छोड़ दिये हैं।'

दरअसल अभिमान कोई बुरी चीज नहीं। लेकिन जब वह गंदे रास्तेपर ले जाता है, तो बुरा बन जाता है। हमें बहुत बचपनमें एक सन्तने बताया था : 'कोई कहे कि हमारा जूठा खा लो' तो अपने ब्राह्मणपनका अभिमान रखकर साफ इनकार कर देना।'

हम भी गृहस्थ रह चुके हैं। हमारी लड़कीकी M. A. पास सज्जनसे शादी हुई। वे हमारे 'जमाई बाबू' हुए, उसके पहले भी हमारे अच्छे दोस्त थे। उन्होंने कहा : 'हम एक थालीमें खायें।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijayanti Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

मैंने कहा : हमें बचपनसे आजतक ऐसा खानेका अभ्यास नहीं।' वे चुप हो गये। उन्हें बुरा लगा होगा।'

उस संतने कहा था : जूठा खानेसे इनकार करते समय कहना कि हम ब्राह्मण, यज्ञोपवीती होकर जूठा कैसे खायें ? हम ब्राह्मण होकर झूठी गवाही कैसे दें ? हमारा ऐसा खानदान, ऐसे माता-पिता ! भला हम कभी ऐसा बुरा काम कर सकते हैं ? यह अभिमान बुरा नहीं है।

यह अभिमान किसीको अपनेसे छोटा बतानेके लिए नहीं, बुरे कामसे बचनेके लिए है। अभिमान सभीमें रहता है, कोई निरभिमान नहीं होता। तुम्हारा अभिमान कैसा हो ? 'हम भोगी नहीं, योगी हैं; रोगी नहीं, स्वस्थ हैं; दोषी-दुर्गुणी, जन्मने-मरनेवाले नहीं, परब्रह्म परमात्मासे एक हैं !'—बिना समझे-बूझे भी ऐसा अभिमान धारण करोगे तो तुम्हारे दुःख दूर हो जायँगे। समझ-बूझकर करो तब तो कहना ही क्या ? यह ऐसा सत्य है कि अनजाने भी इसे धारण करनेवालेका कल्याण हो जाता है। इन्द्रियोंकी तृप्तिका मार्ग छोड़कर आत्माकी नित्यशुद्धिको जानो।

कल एक व्यक्तिने हमें बताया : "हम सिनेमा देखने जाते हैं, उसमें जैसी वेषभूषा देखते हैं, वैसी दरजीको बनानेको कहते हैं। वह कहता है : 'हम नहीं जानते' तो हम उसे सिनेमा देखनेको पैसा देकर कहते हैं : जाओ, देखो और बनाओ।"

यदि पति-पत्नी भी एक-दूसरेको अभिनेता-अभिनेत्री बननेको कहें तो ? वह तो झूठा नाटक होगा, जीवनका सत्य नहीं।

भई, अधिष्ठान ब्रह्मके परदेपर भिन्न-भिन्न प्रकारसे स्फुरित होनेवाले दृश्योंके रूपमें प्रपंचका सिनेमा तो दीख ही रहा है। इसमें किसीको पकड़ो और कहो कि यह ऐसा हो, तो कुछ भी नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajrapani Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

बनेगा, मजा किरकिरा हो जायगा और दुःख ही मिलेगा। श्रेय चाहिए तो भोग छोड़नेकी सामर्थ्य बढ़ाओ।

नानार्थे पुरुषः सिनीतः। सभी कुछ-न-कुछ पानेके लिए प्रयत्नशील हैं। जगह-जगह टकराते-लड़ते, धक्कम-धुक्का खाते रहे तो क्या लक्ष्य पाओगे? यदि शान्त-शुद्ध जीवन चाहिए तो जीवन-निर्वाह जितना पाकर संतुष्ट हो जाओ। संग्रह-परिग्रहमें मत फँसो।

एकके घर गये तो पत्नी दस-पन्द्रह साड़ियाँ ले आयी। पतिने पूछा : 'क्यों इतनी साड़ियाँ लायीं?'

पत्नी : 'हमारे पास साढ़े तीन सौ साड़ियाँ हैं। ननदजीके पास पाँच सौ हैं।'

ये लोग वर्षमें एक दिन भी एक साड़ी नहीं पहनेंगी, पड़ी-पड़ी सड़ जायँगी। दूसरे लोग नंगे-भूखे मर जाते हैं। उनका खयाल नहीं करेंगे तो एक दिन इनका पाप तुम्हारे सिर पड़ेगा।

'विमूढः' = विविधं मूढः।' जहाँ गया, वहीं अटक गया। सुन्दरता, स्त्री-पुरुष, गुण-रूप, मीठी आवाजपर मनुष्य मूढ हो जाता है। साड़ी, सौन्दर्य-प्रसाधन आदिमें ऐसा रम जाना कि पूर्णतः बहिर्मुखता आ जाय तो वैसा करनेवाला मूढ होता है। पहले मेरे एक सेवकका भी अभ्यास था। 'कहीं दवाकी दूकानमें पहुँच जाय तो सोचता 'हमारे घरमें सारी दूकान आजाय!' हमें उसे सम्भालना पड़ता था। हम डरते थे कि कहीं इसे दवाकी दूकान न मिल जाय! जीवन-निर्वाहके लिए भोग, धन, वस्त्र आवश्यक हैं, पर तुम अपनी पचीस पीढ़ीके लिए इकट्ठा करो और वर्तमान पीढ़ी भूखों मर जाय, यह श्रेयमार्ग नहीं। य उ प्रेयो वृणीते—केवल प्रेयका चाहनेवाला नित्य परमार्थ, निःश्रेयस्से च्युत हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

२. धीर पुरुषको श्रेय प्रिय है

संगति :

भगवान्ने सृष्टि ऐसी बनायी है कि मनुष्यके सामने श्रेय-प्रे दोनों चलकर आते हैं। हम लोगोंके ऐसे संस्कार हैं कि केवल दो वर्षकी वयमें बच्चेकी पण्डित बुलवाकर पूजा करवाते हैं। फिर उसके सामने कई चीजें रखते हैं—पुस्तक, चाकू, तराजू, कुदाली, फावड़ा, हीरा, सोना और देखते हैं कि उसका स्वाभाविक झुकाव किस ओर है। यह एक प्राचीन शिक्षा-पद्धति है। इतने वैज्ञानिक उत्थानके युग भी दस वर्षकी शिक्षाके बाद ईंट-पत्थर, कल-कारखाना, डॉक्टर आदिका विभाजन किया जाता है।

प्राचीन गुरुकुल-शिक्षा-प्रणालीमें आठ वर्षकी वयसे ही बच्चा गुरुके संसर्गमें रहने लगता था, माँ-बापके नहीं। तभीसे परिवारके पक्षपात, दुश्मनी, भोग-रागकी आदत छूट जाती। उसे अपरिचितों बीच सहज ही असंग रहनेका अभ्यास हो जाता था। अब तो कहती है : 'हम अपने बच्चेको गोदसे उतारेंगे ही नहीं।'

मनुष्य असलमें स्वतन्त्र है। तिपाई चलानेकी विद्या, ईश्वर आदेश पानेके लिए साँस मिलानेकी विद्या, प्रेत और ग्रहसे आशीर्वा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaimanika Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पानेकी विद्या—ये सारी-की-सारी परेशान होनेकी, पराधीन होनेकी विद्या हैं। सपना भी कभी वास्तविक नहीं होता। एक आदमीको सपनेमें फीचर आते थे। उसके बलपर उसने तीस-चालीस लाख रुपया इकट्ठा किया। एक दिन ऐसा सपना आया कि सारी कमाई बह गयी।

तुम्हारे सामनेसे जो-जो चीजें गुजरती जायँ, सबको क्या तुम अपना भोग्य मानोगे? गुण देखकर चीज़ अपनाना गलत है। फायदेकी चीजें तो दुनियामें बहुत हैं। उनमें हमें अपना धर्म, संस्कृति, जाति, सम्प्रदाय, बुजुर्गोंका आचरण डॉक्टरकी सलाह आदिके आधार पर चीजकी उपयोगिताका निश्चय होता है। जैसे दलालकी सलाहसे स्त्री अपनी नहीं होती, वैसे डॉक्टरी सलाहसे भोजन अपना नहीं होता। धर्मका विज्ञान अध्यात्मके, मनके निर्माणकी दृष्टिसे कल्याण-कर होता है।

मनुष्यके सामनेसे अच्छी और बुरी, तत्काल देखनेमें प्रिय और परिणाममें हितकारी, श्रेयस्कर और प्रेयस्कर दोनों प्रकारकी चीजें निकलती हैं। विवेकी तात्कालिक चीजको नहीं चुनता। अब मन्त्रमें यही बात विस्तारसे समझायी जा रही है :

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥ २ ॥

श्रेय और प्रेय [परस्पर मिले हुए-से होकर] मनुष्यके पास आते हैं। उन दोनोंको बुद्धिमान् पुरुष भलीभाँति विचारकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajramesh Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अलग-अलग करता है। विवेकी पुरुष प्रेयके सामने श्रेयका ही वरण करता है; किन्तु मूढ़ योग-क्षेमके निमित्त प्रेयका वरण करता है॥ २॥

मनुष्यके सम्मुख श्रेय और प्रेय दोनों स्वयं आते रहते हैं। मनुष्य उसे कहते हैं, जो मनुकी सन्तान हैं। व्याकरणकी रीतिसे यह अर्थ घटित होता है। मनु = मनन और शतरूपा = श्रद्धा। मनुष्य-जातिके मूलमें दो भाव मुख्य हैं: विवेक और श्रद्धा। उसके सम्मुख जो उपस्थित होता है, उसके बारेमें वह विवेक करता है अथवा वेद-पुराण और महापुरुषोंसे जानकर श्रद्धा करता है। जो लोग यह समझते हैं कि बिना श्रद्धाके भी जीवनमें काम चल सकता है, कहना होगा कि उन्होंने गंभीरतासे जीवनका अध्ययन नहीं किया।

तुम नाईपर श्रद्धा करते हो कि वह उस्तरेसे तुम्हारा गला नहीं काटेगा। डॉक्टरपर श्रद्धा करते हो कि वह तुम्हें विष नहीं देगा। माँपर श्रद्धा करते हो कि वह तुम्हारे बापका नाम ठीक बता रही है, नहीं तो बाप ही गड़बड़ा जायगा! अध्यापकपर श्रद्धा किये बिना 'क', 'अ' मालूम नहीं होगा। बच्चा जन्मसे ही वैज्ञानिक नहीं होता, वह श्रद्धापूर्वक मार्गदर्शककी बात स्वीकार करके ही अनुसन्धान कर पाता है। नहीं तो न आणविक या रासायनिक अनुसन्धान हो सकेगा, न मानसिक विकास।

श्रद्धा और मननके मिश्रणसे जिसके जीवनका निर्माण हुआ हो और इन्हीं दोनोंकी मददसे जिसका जीवन पूर्णतातक पहुँचा हो, उसको 'मनुष्य कहते हैं।

निरुक्तमें 'मनुष्य'की व्युत्पत्ति बतायी है: 'मनसा जीव्यति' अर्थात् वह अपने मनसे सम्बन्ध जोड़ लेनेवाला व्यक्ति है। राष्ट्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection. Vaimanic Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

यता मनसे ही जोड़ा हुआ सम्बन्ध है। भारतमाता, राष्ट्रपति, राष्ट्रपिता, राष्ट्रपुरुष मानस-सम्बन्धके अलावा और क्या हैं? जातीयता, साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता आदिको मानकर अपनेको उस छोटे बन्धनमें घेर लेना मात्र मानस-बन्धन है। मानव इसी प्रकार अपने महान्‌से सम्बन्ध जोड़कर इन सब बन्धनोंसे मुक्त हो सकता है। सुईसे ही बखिया करके वस्त्र जोड़ना पड़ता है और सुईसे ही बखिया उधेड़ वस्त्रको अलग भी करना होता है। मनसे जो सम्बन्ध जोड़े-तोड़े, वह मनुष्य है।

लोग घरमें सूर्यकी धूप आये तो लेना पसन्द नहीं करते, चाँदनीका आह्लाद, मजा पसन्द करते हैं। विरक्त साधु नंगे रहकर पौष-माघकी रातकी ठंड सह लेते हैं। उसका विज्ञान है—दिनभर धूपमें रहें तो रातकी सर्दी सह सकेंगे। जो जेठकी गरमीके लिए एयर-कंडीशन ढूँढ़ता है, वह जनवरीकी सर्दी नहीं सह सकता। जो जेठकी गरमी सहता है, वही जनवरीकी सर्दी भी सह सकता है। हमारे जीवनमें रोज सर्दी-गरमी आती ही रहती हैं।

किसीकी कड़वी बात न सह सकें, तो उसकी मीठी बात भी नहीं सुन सकेंगे! मीठी बातके लिए कड़वी बात सहनी पड़ेगी, यह नियम है। मनुष्यके जीवनमें ये दोनों आती रहती हैं।

तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः। दही गाढ़ा अच्छा होता है, पानी होकर बह जाय तो निस्सार माना जाता है। इसी तरह मनुष्यमें यदि धैर्य न हो तो वह सुख-दुःख, शोक-मोह और विषय-भोगोंमें तुरन्त बह जायगा। ऐसे मनुष्यका जीवन निस्सार है। कालिदासने कहा है :

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijayanagar Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

विकारके निमित्त उपस्थित होनेपर भी जिसका चित्त विकृत नहीं होता, वही धीर है।

किसीने तुम्हें गाली दी और तुम्हारी त्यौरियाँ चढ़ गयीं, आँखें लाल हो गयीं, एकके बदले तुमने उसे दो गालियाँ सुना दीं तो तुम धीर नहीं। धीर वह है, जो गाली देनेवालेको ऐसे समझाकर मना ले कि वह गाली देना छोड़ दे। उसे अपने पक्षमें कर ले। ऐसा हो कि गाली दी तो अपना पक्ष छोड़ उसके पक्षमें मिल गया, उसकी जीत हो गयी!

श्रुतिमें अनेक प्रकारके धीर पुरुष बताये हैं :

तं धीराः स कवयः उन्नयन्ति।

तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः।

अर्थात् 'जो धीर है, वह जीवनमें परमात्माका सत्यका, अनुसंधान करता है। वह भोगमें आसक्त नहीं होता।'

'धीर पुरुष उसे जानकर अपनी प्रज्ञा उसीसे ब्याह देते हैं, फिर दूसरी कोई वस्तु नहीं रहती।'

इन्द्रिय-लोलुप व्यक्ति विषयको सामने पाकर उसके भोगमें प्रवृत्त होकर कहता है कि 'परमात्मा कहीं जाता थोड़े ही है?'

किसी व्रजवासीसे पूछे कि 'लड्डू खाओगे? तो पहले वह यह उत्तर देगा कि 'नहाये नहीं, गोपालजीकी पूजा नहीं की, तो पहले लड्डू कैसे खायेंगे?'

'कब लड्डू खाओगे?'

'पूजा करके।'

'हम और किसीको खिला देंगे। कबतक तुम्हारा इन्तजार करें?'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnanik Dharma Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

'लाओ, लाओ; गोपालजी तो घरके हैं, पराये थोड़े हैं ? पूजा तो बादमें कर लेंगे, पहले लड्डू खा लें !'

ऐसे ही हैं जो कहते हैं कि—'परमात्मा कहीं जाते थोड़े ही हैं। पीछे प्राप्ति कर लेंगे, पहले इन्द्रियोंको ही तृप्त कर लें।'

इन्द्रियोंकी भूख बड़ी भारी होती है। ये सदैव भूखी, महा-पापी हैं। ये कब विषयके भोगमें लगा देंगी, पता भी नहीं चलेगा। तब न परम सत्यकी खोज या प्राप्ति होगी, न परमात्माके साथ प्रज्ञाका नित्य अवस्थान।

तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः। 'हंसैवाम्भसः पयः—जैसे हंसके सामने दूध-पानी मिलाकर रखो तो वह दूध ही ग्रहण करता और पानी छोड़ देता है, वैसे ही धीर पुरुषके सामने जब श्रेय-प्रेय दोनों आते हैं, तब वह प्रेयको छोड़ श्रेयका वरण करता है!

(१) धीरः=धत्ते इति धीरः।' (जो अपनी इन्द्रियोंको धारण करनेमें समर्थ है, उनपर नियन्त्रण रख सकता है, वह धीर है।)

(२) 'धियं राति इति धीरः।' (जो बुद्धिको अपने पास रखता है, मनोवृत्तिके प्रवाहमें बह नहीं जाता।)

(३) धियं ईरयति 'धियो यो नः प्रचोदयात्' इति श्रुतेः, धीरः। अर्थात् 'धी' (बुद्धि) का जो प्रेरक हो, वह धीर है।

(४) गीताकी भाषामें धीरकी व्याख्या देखें :

> यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
> समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

जिसे सर्दी-गरमी व्यथा नहीं पहुँचा सकती, वह धीर है। सब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaiaman Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

स्थितियोंमें घबड़ाना, प्रत्येक ऋतुमें ईश्वरको उलहना देना, प्रत्येक प्रसंग और वस्तु पर आलोचना करना धीरका लक्षण नहीं। ईश्वरके लिए प्रशंसा करनेकी तो कोई चीज रखो! हम तो अपने मनके ऐसे वश हो गये हैं कि सभीमें ईश्वरका दोष ही बताते हैं, गुण देखते ही नहीं।

विविनक्ति बीनता है। चींटी शक्कर बीनती है, बालू छोड़ देती है। हमने देखा—बहुत सारी स्त्रियाँ हिमालयमें कहीं झरनेके पास किनारेपर बैठकर बालू उठाकर पानीमें डालतीं और वहाँसे बालू बहाती थीं। बड़ा भारी परिश्रम कर रही थीं। बात मेरी समझमें नहीं आयी तो पूछ बैठा: 'क्या कर रही हैं?'

उन्होंने बताया: 'इस झरनेमें सोनेके कण बहते आते हैं। इसीसे दिनभर लगी रहती हैं।'

मैंने पूछा: 'तुम्हें रोज सोनेका कण मिलता है?'

वे: 'नहीं, कभी-कभी मिलता है, तो महीनोंकी मजदूरी वसूल हो जाती है।

हमने किसी पुस्तकमें पढ़ा है कि विदेशमें एक ऐसी नदी है, जहाँ कभी-कभी हीरे बहकर आते हैं। लोग तीन-तीन, पाँच-पाँच वर्ष नदीके किनारे तेल लगा, लंगोटी पहनकर रहते हैं और उसमें-से कंकड़ निकाल लाते हैं। कभी एक भी बढ़िया हीरा मिल जाय तो वे जीवन और श्रम सफल मानते हैं।

बीनना—बुराइयोंमें-से अच्छाई, बन्धनमें-से मुक्ति, दुःखके समुद्रमें-से सुख ढूँढ़ निकालना धीर पुरुषका काम है। जरा-जरा-सी बातमें घबड़ानेवाले यह काम नहीं कर सकते। इसके लिए बड़ा धैर्य चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri / Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते। जो धीर पुरुष है, वह प्रेयकी अपेक्षा श्रेय पसंद करता है।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

—भर्तृहरि

भोग तो भोगे नहीं गये, भोगोंने ही हमें भोग लिया। हमारे दाँत टूट गये, गला, पेट, अँतड़ियाँ खराब हो गयीं। हम समझते हैं, हम गेहूँको चबा रहे हैं, किन्तु गेहूँ हमारे दाँत, पेट, अँतड़ीको चबा रहे हैं। जितना प्रयोजन हो, उतना ही गेहूँ लेना उचित है। अधिकका लोभ करनेपर वह हमारे पेटमें छेद करेगा। तप नहीं तापा गया, हम ही तप गये। समय नहीं बीता, हम ही बीत चले—वही हमारे सिरपर ऐसा सवार हो गया कि हमें ही बोरिया-बिस्तर बाँधना पड़ रहा है। तृष्णा बूढ़ी नहीं हुई, हम ही बूढ़े हो गये हैं।

धीर पुरुष श्रेय-प्रेयके द्वन्द्वमें विवेक कर—सोनेका कण और बालूका कण, दूध और पानी, मुक्ति और बन्धन, योग और भोगका विवेक कर—प्रेयस्से श्रेयस् निकाल लेता है।

'मन्द' का अर्थ है, जो प्रगतिशील नहीं। ग्रहोंमें शनैश्चर 'मन्द' है। चन्द्रमा सवा दो दिनमें जितना चलता है, उतना शनैश्चर ढाई वर्षमें। अपने प्रियकी ओर चलनेमें त्वरा क्यों नहीं आती? चारों ओर देखते चलते हैं, इसीलिए।

मालिकने नौकरसे कहा: 'हमें दवाकी बड़ी जरूरत है, पत्नीको कै आ रही है। जाओ, बाजारमेंसे दवा ले आओ।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

नौकर दवा लेने चला तो देखा—रास्तेमें मदारी डमरू बजाकर, बन्दर नचाकर तमाशा दिखा रहा है। वह वहीं रुक गया, डेढ़ घण्टा बीत गया।

हमारे गाँवमें कहावत चलती है—'गये' कार्तिकमें' लौटे चैतमें।' खेतकी बोवाई कार्तिकमें होती है। किसीका हल चल रहा था। अपने खेतको बराबर करनेके लिए उसने अपने भाईसे कहा: 'अपने घरसे हेंगा (पाटा) उठाकर ले आओ।'

भाई लेने गया तो गायब हो गया! फसलकी बोवाई-सिंचाई, निराई हो गयी। कट गयी और उसपर दाँय चल रहा था, तब वह सिरपर हेंगा लेकर आया और बोला: 'भाई, तुम हर काममें जल्दी करते हो; देखो, हम कितनी जल्दी ले आये!'

इन्द्रिय = इन्द्र कर्मका, हाथका देवता है। जो कर्म होता है, वह प्रमुख रूपसे इन्द्रके लिए होता है। इन्द्रने कर्म कराया और उसे ले लिया, तो इन्द्रियको क्या मिला? इन्द्र कर्मफलका भोक्ता भी हुआ। कर्ता, कर्ममें औजार रूपसे रहनेवाला हाथरूप करण और उसका अनुग्राहक देवता, इन कर्मोंका फल देनेवाला देवता और भोगनेवाला भोक्ता जीव, जो इतनी चीजोंसे मुक्त है, वही वास्तवमें इन्द्रियसे मुक्त है। इनमें एक भी चीज बाकी रह जाने पर वह मुक्त नहीं होगा।

मुक्ति प्रमेय है, साध्य नहीं। जैसे आँखसे रूमाल देखी या बतायी जाती है, मुक्ति वैसे देखने या बतानेकी चीज नहीं। इस प्रकार मुक्ति कर्मसे नहीं बनती। जबतक अपने ब्रह्मत्वसे इन्द्रिय, कर्म, फल और जीवका बाध नहीं होगा, तबतक मुक्ति क्या चीज है, यह समझमें नहीं आयेगा। इसी कारण झगड़ा करनेवाले लोग कहते हैं:

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

१. 'शुभ कर्म करनेपर पापसे मुक्ति होती है।'
२. 'उपासना करनेपर स्थूलदेहसे मुक्ति होती है।'
३. 'योग करनेसे स्थूल-सूक्ष्म दोनों शरीरोंसे मुक्ति होती है।'

यदि मुक्तिमें प्रतिबन्धक केवल कर्म, कर्म-वासना, कर्मभोग होता तब तो मुक्ति कर्मसे हो जाती। इन्द्रके हाथमें मुक्ति होती। किन्तु वह उसके हाथमें है ही नहीं। उससे जो मुक्ति मिलेगी, वह समाधिरूप या इहलोकगमनरूप मुक्ति होगी। इष्टसे तादात्म्य-रूप सालोक्य, सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य या सार्ष्टि मुक्ति अथवा स्वर्गादिप्राप्तिरूप मुक्ति होगी। असली मुक्ति अपने स्वरूप-ज्ञानके बिना होना सम्भव ही नहीं : इसलिए इसमें सकाम-निष्कामका भी भेद नहीं है।

निष्काम-कर्ममें कर्तापन रहता है या नहीं? जो निष्काम होकर कर्म करेगा, उसका कर्तापन बाधित हो जायगा या नहीं? कर्तव्य बाधित न होनेतक कर्तृत्वभाव रहता है। निष्काम कर्म करनेवाला कर्ता ही बना रहेगा तो उसे भोक्ता बनना ही पड़ेगा, यह कर्मका नियम है। निष्काम-कर्मसे वासनानिवृत्ति होकर अन्तः-करणकी शुद्धि होती है और तब तत्त्वज्ञान द्वारा परमात्म-ज्ञानके प्रतिबन्धक अज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है।

श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।

'मन्दः'—एक जगह किसी सिपाहीने एक ड्राइवरको पकड़ा कि 'तुम शराब पिये हो।'

ड्राइवर बोला : 'नहीं, बिलकुल नहीं।'

सिपाहीने कहा : 'सौ कदम चलकर दिखाओ!'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaimanasi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ड्राइवर चलने लगा तो उसके पाँव लड़खड़ाने लगे। शराबीकी गति मन्द होगयी।

एक शराबी एक दिन अपना एक पाँव पटरीपर और एक पाँव सड़कपर रखकर ऊपर-नीचे चल रहा था। सिपाहीने पूछा : 'तुम शराब पिये हो ?'

शराबी : 'नहीं।'

सिपाही : 'तो ऐसे क्यों चलते हो ?'

शराबी : 'मैं समझता हूँ कि मैं लंगड़ा हो गया हूँ। अच्छा किया, तुमने याद दिला दी। मैं तो इसी ध्यानमें था कि मैं लंगड़ा होगया। इसलिए पाँव नीचे-ऊपर रखकर चलता हूँ।'

'योगक्षेम' : वह शराबके नशेमें अपनेको लंगड़ा मानता था। जिसकी गतिमें मतवालापन है, वह मदी है, मन्द है। परमात्माकी ओर न चलनेवाला मन्द है। वास्तवमें वह कर्ता-भोक्ता, पापी-पुण्यात्मा, सुखी-दुःखी नहीं है, पर अपनेको वैसा मान रहा है। यह उसका मन्दभाग्य है। मन्द सोचता है—'यदि हम ऐन्द्रियक भोग न भोगेंगे तो हमारा योगक्षेम कैसे होगा ?' गीतामें जिस अर्थमें 'योगक्षेम' है, उस अर्थमें यहाँ वह नहीं है। यह तो बीमा-कंपनी योगक्षेमका जैसा विज्ञापन करती है, वैसा है। 'तुम्हारी कमाई, ब्याह, पढ़ाईका बन्दोबस्त हम करेंगे'—ऐसी यह योजना है।

स्वर्गाश्रमका बहुत बड़ा ट्रस्ट है। उसमें मैं भी हूँ। चालीस-पचास लाखकी भूमि है। वहाँ हमने एक बात देखी। जो ईश्वर-पर विश्वास नहीं करते वे 'बैंकमें थोड़ा पैसा रहे, रहनेकी एक कुटिया बने, तो भजन कर सकेंगे' ऐसा खयालकर कुटिया पहले बनवाते हैं। लेकिन उनकी कुटिया किसी दूसरे साधुके काम आती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri/Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

है, क्योंकि उनको न प्रारब्धपर विश्वास है, न कर्म-सिद्धान्तपर नहीं तो सोचते कि 'जैसा हमारे प्रारब्धमें होगा, वैसे रह लेंगे, खा लेंगे।' ये लोग आस्थाहीन हैं, बेपरवाह नहीं कि मिले तो खायेंगे, नहीं तो भूख सह लेंगे। ठंड आयेगी तो सह लेंगे या मर जायँगे। हम तो परमात्मामें बैठते हैं!' क्या यह उनके चित्तको बेपरवाह, बेख्वाहिश स्थिति है? वेदान्तकी रीतिसे वे न बेपरवाह-बेख्वाहिश हैं, न भक्तिकी रीतिसे ईश्वरविश्वासी और न कर्म-सिद्धान्तके अनुसार प्रारब्धपर विश्वासी। ये तो जिस सिद्धान्तसे दूकानपर व्यापार किया करते हैं, उसीके अनुसार हिमालयमें रहकर भवन बनाना चाहते हैं!

स्वर्गाश्रममें एक साधु पकड़ा गया। वे पूर्वाश्रमके धनी थे। अच्छी कोठी बनायी थी। उनके पास ट्रान्समीटर था। जब उनका नौकर ऋषिकेश-बाजारमें सब्जी खरीदने जाता, तो वे बात करते कि- 'यह चीज लो, यह लो।' एकबार देहरादूनसे भी ऐसी बातचीत की। एक पुलिसने यह देखा और मालूम हुआ कि 'इस साधुके पास तो खबर लेने-भेजनेवाला ट्रान्समीटर है,' तो वह पकड़ा गया। यदि पहलेसे ही नौकरको सूचना दे देते तो यह नौबत न आती। इतनी छोटी-सी चीजके लिए कि 'फूल-गोभी खरीदें या पत्तागोभी,' ट्रान्समीटर का उपयोग क्यों किया जाय? अदालतमें मुकदमा चालू है, बेचारे जमानतपर छूटे हैं।

योगक्षेमाद् वृणीते। जब कोई पैसा, नौकर, मकानका बहुत बन्दोबस्त करते हैं तो क्या वे सोचते हैं कि जिन्दगीभर ये साथ देंगे या नहीं? इसका न किसीको विश्वास दिला सकते हो, न अपने मनको मनवा सकते हो। अपना मन जैसा आज है, वैसा कल नहीं रहेगा। फिर भी कोई सोचे कि आज जैसा ही कल भी मन रहेगा, तो वह गलत सोचता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

मनका स्वभाव है प्रियताको पकड़ना। वह तो तभीतक उस प्रियताको पकड़ता है, जबतक उसमें उसे असुविधा-अरुचि नहीं होती। नयी प्रियता आनेपर वह बदल जाता है। अतः संसारमें जो फँसा है, वह मन्द है। 'इकट्ठा किया हुआ कैसे बचा रहे' इसीकी वह चिन्ता करता है। लोग गुफामें लोहेकी चहार-दोवारी बनवाकर धन रखते हैं। वहाँ भी चींटी सूँघ लेती है।

एक आदमीको जेब कटानेको आदत थी। बादमें वह सुधर गया। उसने प्रतिज्ञा की कि 'अब नहीं काटेंगे।' स्वामी शुकदेवा-नन्दजी उन लोगोंसे फॉर्म भरवाते, प्रतिज्ञा करवाते। एक आदमी-ने लिखा—'आजसे हम जेब नहीं काटेंगे।

मैंने पूछा : 'तुम्हें पता कैसे चलता था कि अमुककी जेबमें पैसा है या नहीं ?'

वह बोला : 'यह तो बड़ा आसान है। जो चीज अपने शरीरमें महत्त्वपूर्ण होती है, उसे हम बार-बार देखते हैं है या नहीं। जेबपर हाथ रखनेसे मालूम पड़ जाता है कि उसमें कुछ है।'

इस प्रकार मनुष्यके चित्तमें ऐसा भाव हमेशा रहता है दुनिया-की चीजें बनी रहें, उन्हें पकड़कर रखें आगे और कुछ आये। अप्राप्तकी प्राप्ति योग है और प्राप्तकी रक्षा क्षेम। लोग इसीमें फँसे हैं, इसमें तो बड़ी साधना है।

प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते। यहाँके राजभवनके बड़े-बूढ़े अधिकारीने हमें हँसी-खेलमें एक बात सुनायी थी। 'पंजाबमें हमारे एक अफसर जाँच करने गये। उनके साथ मोटर, दो-तीन नौकर थे। तीन हजारका वेतन था। सरदार लोगोंने सलाह की : 'जैसे हम हैं, वैसे ये भी हैं। हमें सौ-डेढ़ सौ मिलता है और इन्हें मोटर,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

दो-तीन नौकर और तीन हजार वेतन, ऐसी इनमें क्या विशेषता है ? चलो, इन्हींसे पूछें ।

वे सब अफसरके पास गये । अफसर बड़े विनोदी थे । जब उन्होंने उनसे यही बात पूछी तो वे बोले : 'देखो, हम मेजपर हाथ रखते हैं । तुम उसपर एक घूँसा मारो ।'

पहले तो वह झिझका, पर उन्होंने कहा : 'तुम घूँसा मारो तो तुम्हारी समझमें बात आजायगी ।'

उसने ज्योंही घूँसा ताना त्योंही अफसरने हाथ हटा लिया । उसे मेजपर चोट खानी पड़ी ।

उसने पूछा : 'यह क्या ?'

अफसर : 'हममें इतनी अक्ल है कि तुम घूँसा मारनेकी कोशिश करो तो हम हाथ हटा लें । हमें अक्लके कारण ज्यादा वेतन मिलता है ।'

वह बोला : 'अच्छा, बात समझमें आगयी । वे बाहर निकले तो सब लोगोंने घेर लिया और पूछा : 'जवाब मिला ?'

वह : 'हाँ ।'

सब : 'क्या ?'

वह : 'देखो, इसपर घूँसा मारो ।'

उसने अपने मुँहपर हाथ रखा था । जैसे ही उसने घूँसा मारा, उसने हाथ हटा लिया, तो बेचारेकी कनपटी टूट गयी । ऐसी अक्ल सीखकर आये कि वहाँ हाथपर चोट लगी और यहाँ कनपटी टूटी । यह मन्दबुद्धि है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vamanashi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

घर और मन्दीमें फरक क्या है ? धीर परिणाममें मंगलपर दृष्टि रखता है, कष्ट, तपस्या श्रमपर नजर नहीं। मदबुद्धि तत्काल लाभको देखता है। सत्य प्रादेशिक या तात्कालिक नहीं, अनादि-अनन्त होता है। सत्य मुट्ठीभरका नहीं कि हमारी मुट्ठीमें आजाय। सत्य छटांक या तोलेभरका नहीं, अनन्त, सर्वव्यापक, सर्वात्मक होता है। सत्य पानेके लिए तप किया जाता है, व्यक्तिका होम किया जाता है। अर्थात् व्यक्तित्वका बाधित होना आवश्यक है। जो अपने छोटे-से-छोटे सुखका, इन्द्रियकी तृप्तिका त्याग न कर सके, वह मन्द है। खाने-पीने, पहनने-रहनेकी क्या चिन्ता करना ?

श्री उड़ियाबाबाजी कहते : 'रोटीकी फिकर मत करना। किसी भी गाँवमें चले जाओ, भले वह छोटा-से-छोटा, तीन-चार घरोंकी बस्तीवाला ही क्यों न हो। गाँवके बाहर पेड़के नीचे बैठ जाओ। तीन दिनतक चुपचाप भूख सह लोगे तो ईश्वर तुम्हारे जीवनभरके भोजनकी व्यवस्था कर देगा।'

देना ईश्वरका कर्तव्य है तो देगा, मँगता बनकर ईश्वरके पास भी मत जाना। श्री उड़ियाबाबाजी बोलते थे : 'हम ईश्वरसे भी कुछ नहीं माँगते।'

यह वेदान्त-विद्याका गौरव है। वेदान्त-विद्या वक्ताके नहीं, वस्तुके गौरवसे गौरवान्वित है। इसीको अपौरुषेय ज्ञान कहते हैं। मन्द अधिकारी, जो ज्ञानजन्य ज्ञानपर विश्वास करता है, वेदान्त-विद्या ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं है किन्तु नचिकेता वैसा मन्द-अधिकारी नहीं है। वह ऐसा उत्तम अधिकारी है कि यमराज भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

३. सदसद्-विवेककी प्रक्रिया

संगति :

नचिकेता धीर होनेके कारण प्रेयको छोड़कर श्रेयका वरण करता है। यदि वह मन्द होता, तो प्रलोभनमें फँसता और श्रेयसे वञ्चित हो जाता। यमराजको भी 'कहना पड़ा कि नचिकेता, सचमुच तुम धीर हो। अब हम तुम्हें उपनिषद्का मूल उपदेश सुनाते हैं :

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामा-
नभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।
नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो
यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥ ३ ॥

हे नचिकेता ! उस तूने पुत्र-वित्तादि प्रिय और अप्सरा आदि प्रियरूप भोगोंको, उनका असारत्व चिन्तन कर, त्याग दिया है और जिसमें बहुत-से मनुष्य डूब जाते हैं, उस धनप्राया निन्दित गतिको प्राप्त नहीं हुआ ॥ ३ ॥

कोई जिज्ञासु-अधिकारी भरी सभामें प्रश्न पूछ बैठे और उसे कुछ भी उत्तर न दिया जाय या खुलेआम कह दिया जाय कि 'तुम मूर्ख हो, नहीं समझते', तो उसका बुद्धिभ्रंश हो जाता है :

सभामध्ये मानभङ्गात् बुद्धिभ्रंशो भवेद् ध्रुवम् ।

इन्द्र और विरोचनको प्रजापति स्पष्टरूपसे नहीं बताते कि अभी तुम्हारी समझमें नहीं आया । क्योंकि वे जब एकबार आकर कहते हैं कि 'मैं अब समझ गया', तो प्रजापति मौन रहे । ब्रह्मज्ञानकी लीला अद्भुत है । इसमें परिच्छिन्नग्राहिणी बुद्धि प्रेयको ही अपना उद्देश्य समझ बैठती है । वह अपरिच्छिन्न पदार्थको ठीक-ठीक नहीं समझ पाती । तब प्रजापतिको क्या यह कह देना चाहिए कि 'विरोचन, इन्द्र, अभी तुम लोगोंने नहीं समझा ?'

विरोचन तो एकान्तमें प्रजापतिसे मिलने आया ही । जो परछाईं पानीमें पड़ती थी, उसे हो प्रजापतिने 'पुरुष है' यह उपदेश किया । परछाईं तो शरीरकी पड़ती है । अतः 'यह शरीर ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

आत्मा है 'ऐसा समझकर वह लौट गया और अपनेको ब्रह्मज्ञानी मानने लगा।

इन्द्र एकान्तमें प्रजापतिसे मिलने गया और बोला : 'महाराज, यह शरीर कैसे आत्मा हो सकता है? यह तो जनमता-मरता है! बच्चा, जवान, बूढ़ा और रोगी होता है। हमें तो इस शरीरमें कहीं भी शाश्वतता, ब्रह्मपन, सनातनता देखनेमें नहीं आती। जो विकारी होता है, वह साक्षी नहीं और जो साक्षी होता है, वह विकारी नहीं। यह शरीर तो विकारी है। फिर आत्मा कैसे?'

यह सुनकर गुरु प्रजापति बोले : 'अच्छा, थोड़े दिन और निवास करो।'

सद्‌गुरु बड़े वात्सल्यसे धीरे-धीरे शिष्यको आगे ले चलता है। वह यह नहीं कहता कि 'तुम अयोग्य हो, तुम्हारी समझमें कभी नहीं आयेगा। तुम्हारी बुद्धि अशुद्ध या भ्रष्ट है!'

इस मन्त्रमें यम नचिकेताकी प्रशंसा करते हैं :

स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्य-स्राक्षीः।

नचिकेता! न तुम्हें चयनमें रुचि है, न केतनमें। तुम अग्निरूप हो! संपूर्ण संसार और वासनाओंको भस्म करनेको तैयार हो। इसलिए तुमने अपने प्रिय और प्रियवासनाओंका परित्याग कर दिया है।

'प्रियान्'—संसारमें जो अपनेको तृप्ति दे, उसका नाम 'प्रिय' है। संसारी लोगोंकी यह धारणा है कि जो सुख हमें मिलता है, वह बाहरके पदार्थोंसे मिलता है। पत्नी, बेटा, धन आदि जो-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जो अविवेकी, मूढ़जनों द्वारा प्यारे माने जाते हैं, वे यहाँ 'प्रिय' शब्दसे गृहीत हैं। यह मूढ़जनोंकी मान्यताका अनुवाद है।

आपका प्रिय-से-प्रिय व्यक्ति आपके सामने खड़ा हो—पत्नी, पुत्र, धन, भोजन, ऊँची कुर्सी सब आपको प्राप्त हों, किन्तु यदि आप बेहोश, समाधिस्थ या सुषुप्तिमें हैं तो क्या उन सबकी उपस्थिति या प्राप्तिका कुछ मजा आयेगा ? नहीं, अर्थात् सुख बाहरी पदार्थोंमें नहीं ! जब हम होश-हवाशमें होते हैं, तब भीतर ही कोई ऐसी प्रक्रिया होती है, जो प्रिय वस्तुके रूपमें परिणत हो जाती है। बाह्य पदार्थके विलासका नाम 'प्रियता' नहीं, अन्तरंग पदार्थके विलासका नाम ही प्रियता है। प्रियता बाहरसे भीतर नहीं आती, भीतरसे-बाहर जाती है। बहुत मीठी वस्तुमें विष मालूम पड़े, तो उससे द्वेष हो जायगा, तुम उसे उठाकर फेंक दोगे।

'प्रियरूपान्'—इनके रूप बड़े प्रिय हैं ! विषरस-भरा कनक-घट जैसे।

'प्रियाणि रूपाणि येषाम्, न पुनः वस्तूनि प्रियाणि भवन्ति।' संसारकी वस्तुएँ प्रिय नहीं, उनका रूप ही प्रिय होता है। चमड़ेमें पाउडर, स्नोसे और बालोंमें तेलकी चिकनाईसे बनावटी सौन्दर्य पैदा किया जाता है। ये सब बाहरी हैं, भीतरसे प्यारे नहीं।

अप्सरा, घना उद्यान, विमान आदिके रूप प्यारे हैं, वस्तुतः वे प्यारे नहीं। हमारे परमानन्दका स्रोत तो भीतर अन्तःकरणमें है जो वृत्तिमें प्रतिबिम्बित सच्चिदानन्दसे तादात्म्यापन्न होनेपर संसारके रूपोंमें प्रियताका अनुभव करता है। इस विवेकके लिए आवश्यक है कि वृत्तिको अपरिच्छिन्नाग्रहिणी बनायें। परिच्छिन्नको सत्ता-चेतना-आनन्द दे दिया, तो शाश्वत आनन्द, अखण्ड चैतन्य, पर-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

आनन्दकी उपलब्धि कैसे हो ? इसके लिए भोग-कामना छोड़नी पड़ती है।

कामान् यः कामयते मन्यमानः
स कामभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्त कामस्तु कृतात्मनस्तु
इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥

अर्थात् जो कामनाओंके चक्करमें पड़ा जाता है, वह स्वयं अपनेको तो जानता नहीं और 'यह चाहिए - वह चाहिए' की रट लगाता रहता है। उसे सच्चिदानन्दघन परब्रह्म क्या है, यह जाननेकी इच्छा नहीं होती। बालकके बचपनेकी-सी इनकी स्थिति हो जाती है। किन्तु कृतात्मा पुरुष कामनाओंकी ओरसे मुँह मोड़ लेता और अपनी आत्माको जानता है। मरनेके बाद या स्वर्गमें कामना छूटेगी ऐसा नहीं, वहाँ तो और बढ़ेगी। ब्रह्मलोकमें जाकर कामना छोड़ोगे, ऐसा खयाल मत रखो। छुड़ानेकी जो चीज है, उसे यहीं छुड़ा लो। तत्त्वज्ञकी सारी कामनाएँ यहीं प्रविलीन हो जाती हैं।

'यमराज नचिकेतासे कहते हैं : 'तेषाम् अनित्यत्वासारत्वादिदोषान् अभिध्यायंश्चिन्तयन्।' तुमने संसारके विषय-भोगमें जो अनित्यता, जड़ता, पराधीनता, दुःखरूपता है, उसे पहचान लिया है।'

पहचाननेका भी एक ढंग होता है। एक आदमी कहता है : 'हमने पहले दिन ही पहचान लिया कि संसारके सब विषय असत् हैं।' लेकिन उसने क्या यह भी पहचान लिया कि 'अन्तःकरण असत् है ?' यदि हाँ तो 'असत् अन्तःकरण असत् विषयोंमें जाय तो तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं है ?'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

बोले : 'कोई आपत्ति नहीं है।'

तब तो मर गये ! असत्वादसे ऐसे काम नहीं चलता। इसकी एक प्रक्रिया है। गुरु-शिष्यका सम्प्रदाय होता है। पहले यह पहचानना होता है कि हमें अपने जीवनमें परमानन्द प्राप्त करना है। यदि परमानन्द अपना स्वरूप है, तो अनन्त-नित्य स्वाधीनता हमें प्राप्त है। यदि परमानन्द अन्य है, तो पराधीनता होगी, दुःख होगा। पहले अपने स्वरूपानन्दके अतिरिक्तसे वैराग्य हो, फिर विवेक हो कि अपना स्वरूप क्या है। तब यह बोध होगा कि दृष्टा आत्मासे अन्य दृश्य होगा और 'हम सम्पूर्ण जड़ दृश्यसे न्यारे दृष्टारूप हैं, सम्पूर्ण दुःखसे न्यारे आनन्दरूप हैं और सम्पूर्ण जड़ दृश्यसे न्यारे चेतनरूप हैं।' फिर सद्-असद्का विवेक होने पर यह मालूम होगा कि सम्पूर्ण सत् आनन्दरूप है, चित्रूप है और सम्पूर्ण असत् जड़रूप और अचित्रूप है।

इस शैलीसे विवेककी प्रक्रियामें पहले वैराग्य, फिर सदसद्-विवेक और अन्तमें सदसद्विज्ञान हो जानेपर आत्माके सिवा कुछ रहता ही नहीं। यदि पहले 'इन्द्रियाँ असत् हैं, अन्तःकरण असत् है, विषय असत् हैं 'अतः अन्तःकरणको असत्में जाने दो' ऐसा विवेक करने लग गये तो लक्ष्यभ्रष्ट होजाओगे। जिस प्रक्रियासे गुरु-शिष्य सम्प्रदायमें विवेक होता है, उसी प्रक्रियासे विवेक करने पर प्रथम वैराग्य होगा। वैराग्य होनेसे अन्तःकरणकी शुद्धि होगी। चिदचिद्-विवेक होनेसे अविवेक मिटेगा। फिर सदसद्-विवेक होनेसे असत् मिटेगा जो नित्य-निवृत्त ही है। असलमें सच्चिदानन्दघन परब्रह्म आत्मतत्त्व ही सब कुछ है' ऐसा बोध प्राप्त होगा।

भोजनको स्वादिष्ट बनानेके लिए जैसे गरम-ठंडा किया जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

है, वैसे ही गुरु-लोग अपने शिष्यको कभी गरम, कभी ठंडा करते हैं, जिससे शिष्यके स्थूल-सूक्ष्म जीवनका निर्माण हो, उसे वस्तु-तत्त्वका साक्षात्कार हो। पहले यमराजने नचिकेतासे कहा था : 'यह लो हाथी, घोड़ा, सोना, अप्सरा, भोग', किन्तु उनका नचिकेताने साफ परित्याग कर दिया। फलस्वरूप अब वही यम उसको प्रशंसा करते हैं। कभी-कभी प्रशंसा करनेसे भी निराश-हताश शिष्यकी बुद्धि अग्रसर-उन्नत होती है। अभिमान छुड़ानेके लिए ठोंक-पीट भी उसे वैसा करना पड़ता है। जैसे भी शिष्यका निर्माण हो वैसा व्यवहार सद्‌गुरु करते हैं।

आत्मा सर्वान्तर है। पत्नी, अप्सरा, हिरण्य, अपने हाथ-पाँव, आँख, कान, वाणी, जीभ, त्वचा और हड्डीसे भी आन्तर है। यही नहीं, हमारी अपनी चित्तवृत्तियोंसे भी आन्तर कूटस्थ, साक्षी, देश-काल-वस्तुका अधिष्ठान एवं प्रकाशक है। उस वस्तुको ग्रहण करना हो और बाह्य या आन्तर भोगमें हमारी रुचि हो जाय, तो भोग कल्पनाके आन्तर-प्रकाशक साक्षी अधि-ष्ठानका ज्ञान कैसे होगा ? अतः जिज्ञासुके लिए उसका परित्याग सर्वथा आवश्यक है।

'अभिध्यायन्'—संसारमें पति-पत्नी या माँ-बेटेका प्रेम दुहरा होता है और जमीन, धनका प्रेम इकहरा होता है। पैसेके लिए तो सभी लोग, दूकान, तिजोरी, सेठ-साहूकार, चोर-डाकू बराबर होते हैं। सोना-चाँदी, रुपये, जमीन प्रेम नहीं करते। यमने देखा कि नचिकेताने इस रहस्यको समझ लिया कि बाह्य पदार्थ न आनन्द-रूप हैं, न स्वयंप्रकाश, वे दुःखरूप हैं; वे नित्य नहीं, अनित्य हैं। वे न चेतन हैं, न सत्। उनकी प्राप्तिमें पराधीनता है, बड़ा भारी परिश्रम है ! संसारका कोई भी पदार्थ हो, हमेशाके लिए नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

मिल सकता। वह स्वयं हमारा दिल लिये बिना सुख दे नहीं सकता।'

संसारके पदार्थोंके भोगोंमें चार बातें होती हैं :

(१) हमेशा मिलते नहीं।
(२) हमेशा इन्द्रियोंमें उनके भोगकी शक्ति होती नहीं।
(३) हमेशा उनके भोगकी मनमें रुचि नहीं रहती।
(४) हमेशा कोई भोक्ता होकर रह नहीं सकता।

विचारवान् पुरुष कहीं इन भोग्य पदार्थोंमें सार नहीं देखते। जीवनमें एक स्थिति ऐसी आती है जिसमें कामना और कर्म दोनों रहते हैं। कामना मनमें रहती है, तो कर्म बाहर, कर्म दो तरहके होते हैं : विहित और निषिद्ध। मनमें कामना होगी तो निषिद्ध कर्म द्वारा भी मनुष्य उसे पूरी करना चाहेगा। चोरी-बेईमानी, झूठ, व्यभिचार इसी कारण होते हैं। मनमें कामनाके कारण और धर्मका अनुशासन मानकर चलनेके कारण मनुष्य धनके लिए चोरी नहीं करेगा, वह वेद-विहित पद्धतिसे धन कमायेगा। जो पुलिस या इन्कमटैक्सके अफसरसे डरेगा, उसे वेदान्तका उपदेश नहीं मिलेगा। जो निषिद्ध कर्म करते हैं, उनके मनमें कामना उग्ररूप धारण करती है। विहित कर्म करनेवाले निषिद्धसे निवृत्त होकर विहितमें प्रवृत्त होते हैं। वह साधनाके मार्ग पर एक कदम आगे चलते हैं। संसारकी ओरसे एक कदम खींच लेते हैं।

कुछ ऐसे लोग होते हैं, जो मनमें कामना होनेपर भी बाहरसे कर्म नहीं करते। क्यों? वे बिना कर्म किये बाहरके पदार्थोंका भोग चाहते हैं। दूसरेके हकका घर बैठे भोग चाहनेवाला मनुष्य मिथ्याचारी है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

—गीता

कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो बाह्य कर्म नहीं करते, मनमें रही कामनाको मिटानेके लिए उपासना, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, जप, अनुष्ठान, धर्म करता है और प्रार्थना करता है : 'हे भगवान्, हमारे हृदयमें जो कामना है उसे मिटा दो।'

वह ईमानदारीसे इनकी निवृत्ति चाहता है पूर्ति नहीं। इस-लिए वह वैराग्य करके ईश्वरके मार्गपर चल रहा है। उसे मिथ्या-चारी नहीं कहेंगे।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो निष्कामभावसे कर्म करते हैं। उनके मनमें कामना नहीं होती। लोकमान्य तिलकने अपने 'गीता-रहस्य'में निष्काम कर्मयोगका उपदेश दिया है। वे कहते थे—'तत्त्वज्ञानके अनन्तर भी कर्म करना चाहिये।'

सेठ जयदयालजी गोयन्दकाका सिद्धान्त था : 'तत्त्वज्ञानके पूर्व निष्काम कर्म करना चाहिए। बादमें वह करे या न करे इस विषयमें स्वतन्त्र है। उसका आग्रह नहीं हो सकता।'

'हमारे मनमें कोई कामना नहीं है' ऐसा मेरा खयाल था। एक दिन एक सज्जन हमारे पास आये, पर बिना प्रणाम किये बैठ गये। हमें अपमान मालूम हुआ। हम अपनेको बिलकुल निष्काम अनुभव करते थे, पर अपमानकी भावना आनेपर सोचा : 'हमारे मनमें मानकी कामना अवश्य है।' उन्हें देखनेके पूर्व हमारे मनमें ऐसा नहीं था, देखा तब खयाल हुआ 'तात्पर्य, 'हमारे मनमें अभी मानकी कामना थी।' यदि अमुक व्यक्तिसे खास तरहका व्यवहार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

न पाकर हमारे मनमें दु:ख होता है तो हम दु:खके भोक्ता हैं। मान प्राप्त होनेपर सुखके भोक्ता हैं। तो, यह न समझ लेना चाहिए कि हम भोक्तापनसे ऊपर उठ गये हैं। यदि यह खयाल हो कि और सब तो कर्ता-भोक्ता, सुखी-दु:खी हैं और हम नहीं हैं तो बिलकुल परिच्छिन्नताका अभिमान बैठा हुआ है।

यदि त्याग या संग्रह द्वारा अभिमान आये तो? एक सेठको पाँच रुपयेके दानका अभिमान होता है तो एक साधुको पाँच रुपयेके त्यागका। त्याग और दान दोनों परिच्छिन्नताका, खण्डका ही भूषण बना, उसने अखण्डका स्पर्श नहीं किया।

मैंने सेठ जयदयालजीसे पूछा: 'भोक्तापनके रहते कोई निष्काम कैसे हो सकता है?'

सेठजीने हमारे प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा: 'पण्डितजी, जब हम कामनाका वर्णन करते हैं तो आप जितनी सूक्ष्मतासे बात कर रहे हैं उतनी सूक्ष्मतासे हम नहीं कर रहे हैं। हम कहते हैं: मनुष्यको निष्काम-कर्म करना चाहिए। अपनी भलाईके लिए मनुष्यके मनमें शुभ भावना हो और मनमें जो क्षुद्र स्वार्थ है, उसे छोड़कर निष्काम कर्म करे। निष्काम कर्म यानी सच्ची निष्कामता पानेके लिए निष्काम कर्म, निष्काम होनेपर करनेवाला नहीं। यह तो परमात्माकी प्राप्तिका साधन है। मनमें कामना न हो तो यज्ञ-याग, साधन-भजन भी परमात्माकी प्राप्ति करायेंगे, कामना हो तो नहीं।'

कर्तापनका सवाल तो ज्यों-का-त्यों रहा! असलमें निष्कामता ही अन्त:करण-शुद्धि है। कर्तापन मिट गया तो अपनी अपरिच्छिन्न ब्रह्मताका ज्ञान होकर कर्तापन मिटाया केवल भाव बना कि 'हममें कर्तापन नहीं है!' यदि ज्ञान होकर कर्तृत्व-भोक्तृत्व मिटा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

तो वास्तविक निष्कामता आगयी; क्योंकि द्वैतका, कर्तृत्व-भोक्तृत्वका बाध होनेपर जो निष्कामता आती है, वही वास्तविक है, जबानी-जमाखर्च नहीं। रोज दूकानपर ब्लैक हो, हर साल बच्चा पैदा हो तो जीवनमें निष्कामता कैसे आयेगी? निष्कामताकी भी एक स्थिति, एक व्याख्या होती है।

नचिकेताने यमराज द्वारा दिये गये प्रलोभनमें सब प्रकारके भोगोंका मात्र त्याग ही नहीं किया, विवेकपूर्वक अपने स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उन भोगोंका परित्याग कर दिया।

नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः। श्री शंकराचार्यने भाष्यमें लिखा है :

अहो बुद्धिमत्ता तव! नैतामवाप्तवानसि सृङ्कां सृतिं कुत्सितां मूढजनप्रवृत्तां वित्तमयीं धनप्रायाम्।

अर्थात् यह बुद्धि कैसी कुत्सित है, जो चैतन्यका नहीं, जड़का आदर करती है। आप अधिक आदर किसका करते हैं? अपने हृदयमें बैठे आत्मदेवका आदर-सत्कार, आदेश-संदेश, ध्यान-दर्शन-साक्षात्कार करते हैं या संसारमें जो जड़ वस्तुएँ फैली हुई हैं उनका? आपकी दृष्टि कहाँ है? जिस हृदयमें ईश्वर रहना चाहिए, उसमें अप्सरा, पैसा, झूठ, बेईमानी आकर तो नहीं बस गये हैं? '**नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तः।**'

हमारे महात्माओंने अध्यात्मविद्या प्राप्त की। यह कठोपनिषद् उनका दुग्धामृत है। "किसी कुतिया या बकरीने अमुक बच्चेको दूध पिलाया अथवा अमुक माताने रोज अपने बच्चेके मुँहमें अपना स्तन डालकर दूध पिलाया।' ऐसा अखबार-वाले क्यों नहीं छापते? यह इतना स्वाभाविक काम है कि उसमें कोई कृपा है ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

नहीं ! इसीप्रकार 'यह ब्रह्मविद्या जिज्ञासु जीवको ब्रह्मामृत प्रदान करती है, यह अखबारवालोंका समाचार नहीं है।

यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः। इसमें बहुत सारे मनुष्य डूब गये हैं। डूब जानेका अर्थ है, परमार्थसे वंचित हो जाना। पानीमें डूब जानेसे घर, बेटा, पत्नी, पैसा, शरीर छूट जाता है पर जो भोगोंमें डूबा, उसका सब छूट जाता है। अपने आत्माका, ब्रह्मका, ईश्वरका ज्ञान नहीं, हृदयमें भक्ति नहीं तो मनुष्य अपने सम्पूर्ण पुरुषार्थोंसे वंचित होकर इन्द्रियोंकी, मनकी हिंसामें, भोगमें आसक्त हो जाता है। हमारे नीतिके आचार्य साफ-साफ रास्ता बताते हैं—

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥

इन्द्रियोंका असंयम आपद्-विपद्का रास्ता–तूफान, नदी-समुद्र, ऊबड़-खाबड़ धरती, हिंस्र जन्तु, सांप-बिच्छू का रास्ता है, उस मार्गपर भूलकर भी पाँव मत रखना। इन्द्रियों पर संयम संपत्तिका मार्ग है। अपनी मौजसे जीवन जीनेके लिए आत्मज्ञानका मार्ग है। छोटे-छोटे टुकड़ोंको पकड़कर मनुष्य संसारके भोगमें डूब जाता है।

हमारे पास कोई-कोई आते हैं और कहते हैं : 'महाराज, हम बड़ा ही वैराग्य लेकर ज्ञानप्राप्तिके लिए आये हैं !'

हम पूछते हैं—'कैसे वैराग्य हुआ भाई ?'

'घरवालीसे लड़ाई हुई।'

सारांश, अप्रियसे होनेवाला वैराग्य सहज नहीं होता। वह तो घृणा, ग्लानि या द्वेष है, वैराग्य नहीं। प्रियसे सुख और तृप्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Digitized by Vasundhara Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

होनेपर भी वैराग्य हो तभी वह सच्चा माना जायगा। क्या तुम्हें अनित्यत्व, जडत्व, दुःखरूपत्वके चिन्तनसे वैराग्य हुआ ! जब तीनोंका निषेध होगया—देश-काल-वस्तुका निषेध हो-गया, तो सत्-चित्-आनन्द ही अपरिच्छिन्न शेष रह गया। यह घृणा, ग्लानि या द्वेष नहीं। वैराग्यका अर्थ है, राग और द्वेष—दोनोंका शैथिल्य। अपरिच्छिन्नग्राहिणी वृत्ति होनेके माने हैं योग्यताका उदय होना।

एक महाशय बोले : 'संसार असार कैसे ? 'सम्यक् सार' ही संसार है। बाबाजी उल्टा बताते हैं।'

वेदान्तमें संसारका अर्थ है, संसरण, नित्य जन्म-मृत्युका प्रवाह। अपने स्वरूपके अज्ञानसे जन्म-मृत्युके प्रवाहसे तादात्म्या-पन्न हो अपनेमें उसे आरोपित करनेके कारण मनुष्य सुखी-दुःखी होता है। स्वरूपज्ञान होजाने पर यह प्रवाह भले भागता रहे, हजार-हजार जन्म-मरण होते रहें उसका किञ्चित् भी स्पर्श नहीं होता।

अन्यसाक्षी : विषयभोगकी अनित्यता, इन्द्रियोंका असामर्थ्य, रुचिका और भोक्तृत्वका हमेशा न रहना—इसका चिन्तन कर संसारको असार समझकर नचिकेताने इसका बिलकुल अतिक्रमण कर दिया। यमराज वरदान दे रहे हैं, पर उसने उसका स्वेच्छासे परित्याग कर दिया 'नैनां 'सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तः' आत्मज्ञानके प्रेमीको वित्तमयी कुत्सित गतिमें ले जाना उसकी स्तुति नहीं। वह तो भरमाने वाली चीज है। यह सृङ्का शृंखला है। एक आदमी भजनमें बैठकर अपनी दृष्टि नोटके बंडल पर रखता है, तो उसकी दृष्टि अपने पर नहीं है कि 'मैं कौन हूँ।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipin Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

एक व्यक्ति ऋषिकेशमें पचीस वर्षसे रहता है। हमसे उसने पूछा : 'एक आदमी हमसे दुश्मनी करता है। हम चार गुन्डे लगाकर उसे मरवा डालें?' जिस हृदयमें द्वेषका उदय हुआ उसमें साधुता कैसी?

एकने हमसे बताया 'यदि हम ऐसी बेईमानी करें तो लाख रुपयेकी आमदनी होजाय।' किन्तु नचिकेता लाख रुपया देने पर भी नहीं लेता वह तो कहता है : 'हमें परमात्मा चाहिए। अपरिच्छिन्न वस्तु चाहिए, वह वित्तमयी श्रृंखला नहीं चाहिए जो हमारी आत्माको भीतरसे लेकर बाहर फेंक देती है!

'यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः।' इसमें डूबनेवालोंका बहुमत है। बहुमतकी ओर झुक जानेसे वोट नहीं, खोट है; क्योंकि डूबना होगा। यदि हम लोग परब्रह्म परमात्माका चिन्तन छोड़कर छोटी-छोटी बातोंमें लग जायें—जैसे कि स्वर्गके लिए होम, धनके लिए व्यापार, समाधिके लिए प्राणायाम, लोकान्तरमें जानेके लिए उपासना—तो प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्वके चिन्तनकी परम्परा टूट जायगी। उसका नमूना भी सृष्टिमें नहीं होगा। लोग आमूलचूल स्थूलतामें डूब जाते हैं, कोई-कोई सूक्ष्मतामें। आत्माको ब्रह्म जाननेके लिए थोड़े वैराग्य और निवृत्तिकी आवश्यकता होती है।

किसी मनुष्यके मनमें कामना हो, शरीरसे कर्म होता हो और वह निषिद्ध कर्म करे, तो पामर है। विहित कर्म करे, तो विषयी है। कोई अपनेको निष्काम भी कहे और निषिद्ध कर्म भी करे, तो वह ढोंगी, धोखेबाज है। जो कामनाको मिटाना चाहता है, वही साधक है। वही निवृत्तिपरायण विविदिषु है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४. ज्ञान और कर्म

संगति :

तीसरे मन्त्र में श्रेय-प्रेयके विवेकका बड़ी सूक्ष्मतासे विचार किया गया। नचिकेताने प्रेयका परित्याग कर श्रेयका वरण किया। अर्थात् अविद्या छोड़कर वह विद्याका प्रेमी है, यह प्रमाणित हुआ। अब चौथे मन्त्रमें इसीका विस्तार और विकास किया जा रहा है :

दूरमेते विपरीते विषूची
अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये
न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जो विद्या और अविद्यारूपसे जानी गयी हैं वे दोनों अत्यन्त विरुद्ध स्वभाववाली और विपरीत फल देनेवाली हैं। मैं तुझ नचिकेताको विद्याभिलाषी मानता हूँ; क्योंकि तुझे बहुत-से भोगोंने भी नहीं लुभाया ॥ ४ ॥

विद्या और अविद्या के दो अलग-अलग विभाग हैं :

सत्यानृतयो: इतरेतरा विवेकेन इतरेतरस्मिन् अध्यास एव हि अविद्या। तद् विवेकेन वस्तु-स्वरूपनिर्धारणं तु विद्या।

'ऋत्' का अर्थ है सत्य और अनृत यानी मिथ्या। इन दोनोंका ठीक-ठीक विवेक न कर सचको झूठ और झूठको सच समझ बैठना अविद्या है। विवेकपूर्वक वस्तुके स्वरूपका निर्धारण करना विद्या है। इस विषयमें लोगोंकी धारणा बड़ी चित्र-विचित्र है। जीवनमें ही देखें जहाँ आपको काम करना हो, वहाँ विद्या-अविद्याके विवेककी जरूरत रहेगी।

'सनातन धर्म'को लेकर आर्यसमाजने अनेक सम्मेलन, शास्त्रार्थ किये। चालीस वर्ष पहले एक गाँवमें, मन्दिरमें शंकरजीकी पूजा होती देखकर आर्यसमाजी बोले : 'मूर्तिपूजा तो मूर्खता है।'

इस पर शास्त्रार्थके लिए पंच चुना गया। शास्त्रार्थके समय सनातन धर्मके पण्डित नहीं आये, तो पुजारी बोला : 'वे भले न आयें, हम तो अपने भगवान्को लेकर आये हैं, शास्त्रार्थ करेंगे। जिसे करना हो शास्त्रार्थ कर लें।'

पुजारीके पास नर्मदाशंकरकी बड़ी मूर्ति थी। उसने कहा : 'तुम्हें निराकारकी ओरसे जो कुछ कहना हो कह लो।'

आर्यसमाजीने ज्ञान-विज्ञानसे मूर्तिपूजाका खण्डन किया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Jalgaon Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पुजारीकी बारी आयी तो बोले : 'अब देखो हमारे साकारका चमत्कार कि विजयी कौन होता है ? हम तुम्हारे सिर पर साकार मारते हैं। साकार पर तुम अपना निराकर मारो।'

आर्यसमाजियोंने देखा कि यह मूर्ति तो जिसके पर पड़ेगी उसका सिर तोड़ देगी। इससे अच्छा कि यहाँसे निकल भागें यही हुआ भी।

हमारा परमेश्वर निराकार, साकार और दोनोंसे विलक्षण भी है। दोनोंकी अनुकूल शक्तिसे अवच्छिन्न ब्रह्ममें तो निराकारता और साकारता विवर्तमात्र हैं, तो लड़ना ही क्या ? वेदान्तमें लड़ाई-झगड़ा नहीं है। तत्त्वको समझानेके लिए कल्पना करने पर बात कहते हैं। जैसे आँखसे देखे बिना पाँवसे चलना नहीं होता, हाथमें लड्डू रहते हुए भी जीभके बिना खाया नहीं जा सकता, ज्ञान-कर्मके समुच्चयके बिना व्यवहार या भोग नहीं हो सकता, वैसे ही क्या आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें ज्ञान-कर्मका समुच्चय आवश्यक है ? क्या वहाँ भी भोग और कर्म है ?

अविद्यासे निवृत्त होकर ही विद्यासे आत्मामें स्थिति प्राप्त होती है। आत्मस्वरूप विद्या और अविद्या दोनोंसे विलक्षण है।

प्रश्न होगा, साधन-कालमें इस विद्या-अविद्याका निर्णय कैसे किया जाय ?

दूरमेते विपरीते विषूची : समझदारी और नासमझीका रास्ता एक-दूसरेसे विपरीत है। 'परीत' = समन्वित, अनुगत, उसके विरुद्ध 'विपरीत'। अद्वितीयका विवेक करना पड़ेगा। यह विवेकका, जिज्ञासुओंका मार्ग है। अविद्या परिच्छिन्नमें ले जाती है, जबकि विद्या अपरिच्छिन्नमें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।

विद्याके मार्ग पर चलनेवाला श्रेयको ग्रहण कर निःश्रेयस्‌का भागी होता है: श्रेय आददानस्य साधु भवति ।

हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते । जो प्रेयका वरण करता है वह अपने स्वार्थ और परमार्थसे भ्रष्ट हो जाता है। वह केवल इन्द्रियोंकी तृप्तिके मार्ग पर चलता है ।

अविवेकात्मक होनेके कारण अविद्या अंधी है, जबकि विवेकात्मक होनेके कारण विद्या दृष्टि है । वह साफ बता देती है कि हम कौन हैं और कहाँ रहते हैं ? लौकिक दृष्टिसे भी यदि हम इसका विवेक करें, तो लोकमें स्थान प्राप्त कर सकते हैं ।

हम जीना चाहते हैं अर्थात् हममें 'जिजीविषा' है । हममें 'बुभुक्षा' है अर्थात् शरीरके रूपमें जीना चाहते हैं, इसलिए हमें पांचभौतिक भोजन चाहिए। वस्त्र, मकान, औषधि चाहिए। सदंशके प्राधान्यसे कल्पित जीवनचर्यामें सब प्रधान विवर्तोंकी अपेक्षा है। अपनेको शुद्ध सत्-रूप न जानकर और मरणशील जानकर जिलाये रखनेकी आवश्यकता होती है । अपनेको शुद्ध चिद्-रूपमें न जानकर चिद् विवर्त अन्तःकरणवाला जाननेके कारण हमें पोथी, पुस्तकालय, शिक्षककी आवश्यकता होती है । किन्तु अपनेको शुद्ध चिद्-रूप—चिन्मात्र वस्तु जान लेनेपर पोथी, पुस्तकालय या शिक्षककी आवश्यकता नहीं रहती । ज्ञान-प्राप्तिमें बाह्य साधनोंकी अपेक्षा नहीं होती । जीवनके सात्त्विक स्वरूपमें, अपनेमें नामरूपका अध्यारोप नहीं है। अपने ज्ञानको बढ़ानेके लिए हम बाहरी चीजोंकी आवश्यकताका अनुभव करते हैं । अपने परिछिन्न-जीवनमें, लौकिक गतिमें सत्संग और सत्संगभवन, विद्यालय और अध्यापक, पुस्तक और पुस्तकालयको हम आवश्यक समझते हैं ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

स्वरूपगतिका अर्थ है विद्यागति। आत्मानन्दके लिए दूसरेकी आवश्यकता हो या माँगने जाना पड़े तो निश्चित है कि हम अपनेको आनन्दस्वरूप नहीं, दुःखरूप ही जानते हैं। तब हमें मनोरंजनके लिए बाजा, भोग, व्यक्ति, भोजन सब उपकरणोंको आवश्यकता होती है। अपनेको परिछिन्न जाननेके कारण स्थान और सारी लौकिक सामग्री आवश्यक हो जाती है। समाधि या निवृत्तिका नाम ब्रह्मज्ञान नहीं। ब्रह्म तो समाधि और विक्षेप, निवृत्ति और प्रवृत्ति, स्वर्ग और नरक, मर्त्यलोक और ब्रह्मलोक सर्वत्र एक ही है। जन्म और मरण, सृष्टि और प्रलय सब समय एक अद्वितीय ब्रह्म है। अपनेको प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ज्ञानस्वरूप ब्रह्म जान लेने पर हो दुःख और जड़ता नहीं रहते, निर्वाण हो जाता है।

निर्वाण : शरीरमें बाण लगने पर पीड़ा होगी, बेहोशी और मृत्यु भी हो सकती है। अपनेको ब्रह्म जान लिया तो दुःखरूप बाण नहीं लगेगा। हम अपनेको आनन्दरूप जानेंगे, तब बेहोशी रूप अज्ञान भी नहीं होगा और हम अपनेको चिद्रूप जानेंगे, तब मृत्यु रूप 'असत्' नहीं, हम अपनेको 'सद्रूप' जानेंगे। द्वैतका अत्यन्ताभाव हो जानेके कारण हम राग-द्वेष, अपेक्षा आदिसे विनिर्मुक्त हो जाते हैं। विद्याकी यह गति अविद्याकी गतिसे नितान्त भिन्न है। यमराज कहते हैं : 'हे नचिकेता, तुम तो विद्यार्थी होकर आये हो, क्यों ?'

न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त : सारे काम-भोगोंने तुम्हारा विच्छेद नहीं किया ! अविद्याने तुम्हारा लोप नहीं किया ! तुम्हारे हृदयमें जिज्ञासा उदय हुई, तुम सद्गुरुके पास आये ! मृत्यु पर भी तुमने विजय पा-ली ! आओ, हम तुम्हें ब्रह्मज्ञानका उपदेश करते हैं : विद्याभीप्सिनं विद्यार्थिनं नचिकेतसं त्वामहं मन्ये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

श्रीशङ्कराचार्य कहते हैं :

दूरं दूरेण महतान्तरेणैते विपरीते अन्योन्यव्यावृत्ते विवेकाविवेकात्मकत्वात्।

अविद्या संसारमें फँसानेका, अविवेकका और क्रिया-कारक-फलका मार्ग है, जबकि विद्या संसारसे छूटनेका, विवेकका और स्वतःसिद्ध आत्माके स्वरूपज्ञानका मार्ग है। दोनों एक-दूसरेसे बिलकुल भिन्न-भिन्न हैं। जीवनमें कर्म अप्रधान है, और ज्ञान प्रधान। जबतक ज्ञान नहीं होगा, कोई वस्तु मिलेगी ही नहीं। किसीके घरमें धन गड़ा है, पर न जाननेके कारण वह अपनेको दरिद्र, कंगाल मानता है। जबतक नहीं जानेगा, भ्रान्ति निवृत्त न होगी। यदि किसीको स्वर्गका बादशाह बनाया जाय, लेकिन वह अपने इस गौरवको ही न जाने तो उसे इसका आनन्द नहीं मिल सकता। मनुष्य स्वयं ब्रह्मरूप होने पर भी स्वरूप-ज्ञानके अभावमें अपनेको जीव मान लेता है।

ऐसी कौन-सी वस्तु है जो ईश्वररूप नहीं है? ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण ईश्वर नहीं है? वह परिणामी नहीं, विवर्ती है। अधिष्ठान होनेसे परमात्मा अविनाशी, कालका प्रकाशक है। काल परमात्मामें कल्पित या अध्यस्त है। परमात्माके स्वरूपमें कालका अस्तित्व ही नहीं है। इसलिए परमात्मप्राप्तिमें कालकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। परमात्मा देशका आधार है। देश परमात्मामें अध्यस्त है। परमात्मा देशका प्रकाशक है, वह देशपरिच्छिन्न नहीं। उसमें देशकी कल्पनाका अस्तित्व ही नहीं है, अर्थात् परमात्मा परिपूर्ण है। ये पदार्थ अलग-अलग मालूम पड़ते हैं। कभी एकसे दूसरेका हिस्सा मालूम पड़ता है, कभी नहीं भी पड़ता। 'घटः पटो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vimarsh Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

भवति'—घड़ा कपड़ा नहीं है। इन सब वस्तुओंका जो अधिष्ठान या प्रकाशक है, जिसमें वस्तुएँ अध्यस्त हैं, जिसमें भिन्न-भिन्न वस्तुओं-का अस्तित्व ही नहीं है, वह वस्तुभेदसे रहित परमात्मा इन सत्ता-शून्य वस्तुओंमें क्या नहीं है? है तो पहचानते क्यों नहीं? स्पष्ट है कि अविद्याके कारण।

हम-तुम, यह-वह, अब-तब, यहाँ-वहाँ जो कुछ मालूम पड़ता है, वह परमात्मा ही है, तो देश-काल-वस्तु व्यक्तिसे अपरिच्छिन्न पदार्थकी उपलब्धिमें केवल अज्ञान ही प्रतिबन्धक है। नहीं पह-चानते तो पहचाननेकी चेष्टा करनी चाहिए।

जो क्रिया-कारकमें आसक्त हो जाते हैं, उनके हाथ-पाँव आदि कारक, अमुक सामग्री और फलका स्वयंको भोक्ता और कर्मका कर्ता मान लेते हैं। परमात्मा मिलेंगे तो वह उसका भोग्य या भोक्ता होगा अथवा परमात्माको अपना भोग्य या भोक्ता जानेगा। यदि परमात्मा भोक्ता होगा, तो तुम उसके साक्षी हो जाओगे।

विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये।—परमात्माकी प्राप्तिका सच्चा इच्छुक विद्याभीप्सी है। यमराजने कहा: 'नचिकेता, मैं जानता हूँ कि तुम सचमुच कोई क्रिया-कारक-फल, अविद्याके विस्तारस्वरूप हिरण्य, हस्ती आदि प्रेय चीजोंको नहीं चाहते। तुम तो परमात्माकी विद्या चाहते हो!'

जिसके मनमें बहुत बढ़िया विमान, मोटर, मकान, उद्यान, अप्सरा, अफसरीकी चाह है, वह 'विद्याभीप्सी' नहीं। अमुक काल-की समाधि, अमुक देश, अमुक वस्तु, बड़प्पन आदि चाहने वालेको यथार्थज्ञान नहीं होता। नचिकेता सचमुच यथार्थ-ज्ञानका प्रेमी है: '**न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त।**'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

श्रीशङ्कराचार्य कहते हैं 'अविद्वद्बुद्धिप्रलोभिनः।' नासमझ लोग प्रलोभनोंके चक्करमें आजाते हैं। साधारण बालकको दवा लानेको भेजा जाय और रास्तेमें मदारीका खेल हो तो वह अपना कर्तव्य भूलकर खेल देखनेमें तन्मय हो जायगा। किन्तु श्रीहनुमान्‌जी सीताजीकी खोजमें निकले और मैनाक पर्वत उनके स्वागतके लिए आया और बोला : 'आओ, खाओ, पीओ मौज करो' तब उन्होंने उत्तर दिया :

'रामकाज कीन्हें बिना मोहि कहाँ विश्राम ?' उन्होंने मैनाकको दूरसे ही नमस्कार कर दिया। छाया पकड़नेवाली राक्षसीके भी चक्करमें नहीं आये। लंकिनीने रोका तो उसे घायल कर दिया। विघ्न करनेवालोंमें किसीको मारा, तो किसीको हाथ जोड़ लिया! संसारमें कई तरहके लोग मिलते हैं! हनुमानजीको सीताजीसे मिले बिना विश्राम ही नहीं है।

संस्कृत कविने ठीक ही कहा है :

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा कामक्रोधादिराक्षसान्।
शान्ति-सीता-समायुक्तः आत्मारामो विराजते॥

हनुमान्‌जी विवेककी मूर्ति हैं। अपने गन्तव्यकी दिशामें सीताजीका पता लगाने जा रहे हैं। रास्तेमें किसी प्रलोभन, विघ्न-बाधाके कारण वे अपनी यात्रा शिथिल नहीं करते, थोड़ी देरके लिए विश्राम भी नहीं करते। उनका निश्चय है, 'कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि' नचिकेताका भी निश्चय है—'अब तो ज्ञान लेकर छोड़ेंगे।' यह ज्ञानस्वरूपका माहात्म्य है।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

५. अविद्याग्रस्तोंकी दुर्दशा

संगति :

संसारमें एक कर्म, क्रिया, कारक और फलका मार्ग है तो दूसरा स्वतःसिद्ध आत्माके स्वरूप-ज्ञानका मार्ग है, यह प्रथम मन्त्रसे चतुर्थ मन्त्रतक विविध दृष्टान्तों और विवेककी प्रक्रिया द्वारा समझाया गया। दोनों मार्ग एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न हैं। कोई भी वस्तु आपको देखनी हो तो पाँवसे नहीं आँखोंसे देखेंगे। यही बात वेदान्तकी भाषामें कही जायगी तो बोलेंगे कि ज्ञानमें कर्म सहायक है। इस मन्त्रमें ज्ञानमें कर्मकी सहायता और ज्ञानके अभावमें कर्मकी असामर्थ्य कहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaipayan Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ५ ॥

वे अविद्याके भीतर रहनेवाले, अपने-आप बड़े बुद्धिमान् बने हुए और अपनेको पण्डित माननेवाले मूढ़ पुरुष, अन्धेसे ही ले जाये जाते हुए अन्धेके समान अनेकों कुटिल गतियोंकी इच्छा करते हुए भटकते रहते हैं ॥ ५ ॥

क्रियाकारकफलभेदबुद्धिः अविद्या ।
आत्मैकत्व - बुद्धिस्तु विद्या ।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः । कहाँ वर्तमान है ? क्या सच और क्या झूठ इसका विवेक नहीं और मनुष्य परस्पर एक दूसरेका अध्यास कर अविद्यासे ग्रस्त हो रहे हैं । श्रीशंकराचार्य कहते हैं: ये तु संसारभाजनाः । घनीभूत इव तमसि वर्तमाना वेष्ट्यमानाः पुत्रपश्वादितृष्णापाशशतैः । अर्थात् संसार यानी ईंट-पत्थर नहीं ।

कर्तृत्व-भोक्तृत्वलक्षणः संसारः । संसारका लक्षण है कर्तापन और भोक्तापन—यह किया और यह पाया । जैसे कोई घने अन्धकारमें गिर गया हो ऐसे मनुष्य संसारमें भटक रहा है ।

मनुष्यके जीवनमें हाथी-घोड़ा, धन-बेटा सब इधर-उधरसे आये, किन्तु उसे पूर्व-परिश्रमका-लक्ष्यका पता नहीं है । हृदयसे तृष्णा निकलकर उसे इस प्रकार भटका रही है कि जो भीतर है, उसे वह बाहर ढूँढ़ता है : जो पास है, उसे दूर ढूँढ़ता है । वह तो बड़ा नचैया है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

कभी उसका हाथ काँपता है, कभी सिर और कभी कमर! कभी निरुपाधिक होकर स्थिर हो जाता है, तो कभी सोपाधिक होकर नाचता है। कभी निष्काम होता है, तो कभी सकाम। लीलामें—तदन्तरस्य सर्वस्य गोपीजनाय—आगया संम्पूर्ण वृत्तियों के बीचमें और नाचने लगा। भीतर छोड़ बाहर आकर खड़ा हो गया। वेद वर्णन करते हैं :—

क्वचिदज्या क्वचिदात्मनाय चरतो निगमः।

किन्तु मनुष्य जब लक्ष्यभ्रष्ट होकर अविद्यामें फँसता है तो पुत्र-धनादिके पाशमें बँध जाता है : स्वयं धीराः पण्डितमन्यमानाः। उसे स्वयंके पाण्डित्य और धैर्यका अभिमान हो जाता है। 'स्वयं वयं धीराः प्रज्ञावन्तः पण्डिताः शास्त्रकुशलाश्चेति मन्यमानाः।' 'हम बड़े इन्द्रिय-विजयी, भारी पण्डित हैं,' ऐसा वह मानने लगता है, किन्तु परमात्मा कभी मानके भीतर नहीं आता। जैसे घड़ेमें आकाश या मुट्ठीमें हवा बन्द करना कभी सम्भव नहीं, वैसे परमानन्दस्वरूप भगवान् किसीके चाहनेपर भी देश-काल-वस्तुके मानमें कभी नहीं आ सकता।

दस मिनट, वर्ष, युग या मन्वन्तर कालका विवर्त है, परिणाम नहीं। अमुक इञ्च, फुट, मील देशका विवर्त है, परिणाम नहीं। अमुक किलो या टन वजन वस्तुका विवर्त है, परिणाम नहीं। मिनट-घण्टे आदि कालके टुकड़े नहीं, कालमें कल्पित हैं। पूरब-पश्चिम आदि देशके टुकड़े नहीं, दिक्तन्त्रमें कल्पित हैं। वस्तुमें वज़न भी उसका कोई हिस्सा नहीं, कल्पित है। देश, काल, वस्तु तीनों अपने अधिष्ठान ब्रह्मतत्त्वसे पृथक् नहीं हैं। परिमाण जो भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

मालूम पड़ता है वह विवर्त ही है। अमित आत्माको मित-देहमें घेरकर मनुष्य धीर-पण्डित होनेका अभिमान करता है।

'दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढाः'

व्यक्तिको साधनसाध्य वस्तुकी इच्छा हुई, थोड़ा साधनसाध्यका सम्बन्ध जाना कि 'इतना यह करनेसे पैसा या स्वर्ग मिलेगा, यह करेंगे तो यह सुख मिलेगा, हम उसके भोक्ता बनेंगे'—यह फलका ज्ञान है। मनमें काम होनेसे कर्तापनका, साधनका, फलका ज्ञान होता है और मनुष्य उसीमें फँस जाता है।

(कर्मकी गति बड़ी कुटिल है। टेढ़े-मेढ़े, ऊपर-नीचे, दाँयें-बायें रास्तेकी तरह संसारमार्गमें सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक, जड़ता-चेतनतामें मानव मूढ़ होनेके कारण भटक रहा है। पहाड़में यात्रा करनी हो और एक अनजान आदमीको अपना मार्गदर्शक बना लें, तो वह हमें इधर-उधर भटकाता फिरेगा।) वैसे ही जो परमात्माको नहीं जानते, वे अन्धे हैं, वे परमार्थ-मार्गका दर्शन नहीं कर सकते। उन्होंने प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्वके रूपमें परमतत्त्वको यथार्थतः नहीं जाना है।

स्वतःसिद्ध परमात्मा इसी देशमें है और इसी देशका प्रकाशक है, जिसमें यह देश कल्पित है। काल, वस्तु, यह-वह, मैं-तू उसीमें कल्पित हैं। किन्तु जहाँ है, वहाँ परमात्माको मनुष्यने देखा नहीं और अन्यत्र ढूँढ़ रहा है।

कोई पागल जा रहा था। मैंने पूछा : 'कहाँ जा रहे हो?'
बोला : 'मैं अपनेको ढूँढने जा रहा हूँ!'
ऐसा ही यह किस्सा है।

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

६. प्रमाद ही मृत्यु है

संगति :

मन्त्र पाँचवेंमें बताया गया कि जो मूढ़ होकर भी अपनेको बड़ा धीर-पण्डित माने, अविद्यासे छूटनेकी चेष्टा ही न करे, 'दिनभर चले ढाई कोस' की भाँति संसारमें बार-बार जन्म-मृत्युका चक्कर लगाता रहे, सन्त, ज्ञानी, ब्रह्मानुभवीका संग ही न करे, वह संसारचक्रसे बाहर निकल ही नहीं सकता। क्योंकि वह मूढ़ है : **परियन्ति मूढाः**। उसे भासता ही नहीं कि **न साम्परायः**। मूढ़ताके कारण उसकी जो गति होती है सो बताते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajpayee Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥ ६ ॥

धनके मोहसे अन्धे हुए और प्रमाद करनेवाले उस मूर्खको परलोकका साधन नहीं सूझता । यह लोक है, परलोक नहीं है—ऐसा माननेवाला पुरुष बारम्बार मेरे वशको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

साम्परायः : विद्वानोंने 'साम्पराय'का अर्थ किया है, परात्पर ब्रह्म अर्थात् सगुण-निर्गुण कार्य-कारण ब्रह्म और कार्य-कारणातीत ब्रह्म । अपरब्रह्मके निरूपण द्वारा यहाँ परब्रह्म परमात्माको अद्वितीय रूपसे सिद्ध कर जिज्ञासुकी बुद्धिमें उसे अद्वितीय रूपमें बैठाना ही प्रयोजन है । जिज्ञासुके सामने यह अनेकता-भेदरूप सृष्टि है, यह प्रपंच भास रहा है । प्रपंच अर्थात् पाँचका बखेड़ा विस्तार । पाँच इन्द्रियाँ, पंचभूत, पाँच प्राण, ज्ञान, कर्म, तन्मात्राओंका विस्तार ही प्रपंच है । यदि यह विस्तार एकमें ही समन्वित न हो, एकमें-से ही पाँचोंकी उत्पत्ति और उसी एकमें पाँचोंका लय न हो एवं इस उत्पत्ति-लयकी प्रक्रिया द्वारा एक कारणत्वकी सिद्धि न होती हो, किसी अन्य कारणसे उत्पन्न अन्यमें लीन हो जाय तो द्वैतकी सिद्धि होगी, अद्वैतकी नहीं । यदि इनकी उत्पत्ति प्रकृति, परमाणु या शून्यसे या कारणान्तरसे हुई हो अथवा हुई ही न हो, चार भूतोंसे हुई हो या नित्य ही हो तो अद्वितीय-तत्त्वकी सिद्धि नहीं हो सकती । अतः पहले अपरब्रह्म अर्थात् कारण-ब्रह्मका निश्चय करना पड़ता है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri / Jyoti Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

श्रुति करती है :

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्ति अभि संविशन्ति।

कारण ब्रह्मका निरूपण जिज्ञासुकी बुद्धिमें यह बैठानेके लिए किया जाता है कि पाँच-पाँचका विस्तार यह प्रपंच, इन्द्रियों और विषयोंका यह बखेड़ा जो भास रहा है, वह वस्तुतः एकका ही विस्तार है। यह उसका 'परिणाम' नहीं, 'विवर्त' है। अद्वितीय वस्तु केवल उसके रूपमें भास रही है। कार्य-कारण भाव केवल उसमें कल्पित है, वस्तुतः परब्रह्म ही परब्रह्म है। अद्वितीय परब्रह्म-में इस प्रपंचको संगत करनेके लिए अपर ब्रह्मका निरूपण भी शास्त्र ही करते हैं। परन्तु जो बालक हैं, नासमझ है, वह अपर ब्रह्म या परब्रह्मको जानना चाहे तो—

'**न साम्परायः प्रतिभाति बालम्।**' अविवेकी, मूढ़, बालक, अविद्वान्‌के प्रति इस परब्रह्मका ज्ञान नहीं हो सकता, वह इसे समझता ही नहीं।

प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्। वह तो प्रमादमें है। अर्थात् खेल-खिलौनोंमें लगा है, मतवाला हो गया है। वह अमृतत्वके मार्गपर चलना नहीं चाहता। उसे पता ही नहीं कि वह मृत्युके मार्ग पर चल रहा है, यही प्रमाद है। **न वै मृत्युः व्याघ्र इवाऽत्ति जन्तून्।** मौत बाघकी तरह मूर्तिमान् हो, किसीको नहीं खाती किसीने नहीं देखा कि मौत लंबी-चौड़ी, लाल-काली-गोरी, आकृति, आयु या वज़नवाली है।

पुराणोंमें कथा है—'ब्रह्माजीने कुमारीके रूपमें मृत्युकी रचना की। पहले वह बच्ची थी। जवान हुई तो ब्रह्माजीको उसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaipanent Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विवाहकी चिन्ता हुई। उन्होंने कहा : 'जा बेटी, तुझे जो पसन्द हो उसे वरण कर।'

वह चली तो पहले-पहल रास्तेमें नारदजी मिले। मृत्युने उन्हें देखकर सोचा : नारदजी स्वस्थ, सुन्दर, जवान और ब्रह्मचारी हैं, इन्हींसे ब्याह करें।' उसने नारदजीसे कहा : 'नारदजी, तुमसे ही ब्याह करेंगे!'

मृत्यु नारदजी पर लुभा गयी। नारदजी बड़े घबड़ाये। बोले : 'हमने तो जीवनभर ब्रह्मचर्यका व्रत ले रखा है। हमारे पास न धन-दौलत है, न घर-द्वार! विवाहके लिए तो यही सब चाहिए न?'

अन्तमें मृत्यु मान गयी तो नारदजी बोले : 'जा, तू सारे लोकमें घूम।'

वह लोकमें घूमने चली तो कोई उसे पसंद ही नहीं करे। तब वह लौटकर पिता-ब्रह्माजीके पास आयी और बोली : 'पिताजा, हमें तो कोई स्वीकार ही नहीं करता।'

ब्रह्माजी : 'हम क्या करें बेटी? जब तुम्हें कोई अंगोकार ही नहीं करे तो?'

मृत्यु एकान्तमें बैठकर रोने लगी तो ब्रह्माजी उठे। उसकी आँखोंसे गिरते आँसुओंको उन्होंने बटोर लिया और बोले : 'बस-बस बेटो, तुम्हें कोई वरण करे या न करे, लोगोंको तेरा पता ही नहीं लगेगा। तू तो निराकार हो जायगी। तेरे आँसूकी ये बूँदें संसारमें रोग बनेंगी—टी-बी, दमा, बुखार, जुकाम।' इसोलिए स्त्रीको कभी उलहना देते हैं तो कहते हैं—'देवी, तुम्हारे आँसू ही मारनेको काफी हैं, तुम और क्या करोगी? तुम्हें अस्त्र-शस्त्र प्रयोग करनेकी जरूरत नहीं।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

(मृत्युके आँसू ही संसारको मारनेके लिए पर्याप्त हैं। मौत तो कहीं दीखती नहीं। महाभारतमें बताया है :

प्रमादं वै मृत्यु अहं ब्रवीमि।)

मनुष्यके जीवनमें प्रमाद आये, भगवान्से और कर्तव्यसें, सत्पथ और सत्संगसे वह विमुख हो जाय तो समझ लें कि मृत्यु इसके सिरपर नाच रही है। बिना मृत्युका आवेश हुए कोई भला मार्ग नहीं छोड़ता। वह जाति, सम्प्रदाय, राष्ट्र नष्ट हो जाता है जो अपने कर्तव्यके बारेमें प्रमाद करता है। जो मृत्युके चंगुलमें रहेगा, निश्चय ही वह प्रमाद करेगा। वह मृत्युसे मुक्त होकर अमृतत्वकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न कैसे करेगा!

महात्मा-लोग अपने हृदयमें ही ईश्वरका अनुभव कर लेते हैं। न प्रवृत्ति, न निवृत्ति; जहाँ हैं, वहीं ईश्वर है। हमारे आत्मा और ईश्वरका अस्तित्व अलग-अलग देश-काल-रूपमें नहीं है। ऐसी अवस्थामें भी परमात्माका अनुभव मनुष्यको क्यों नहीं होता ?

वित्तमोहेन मूढम् : मनुष्य असलमें धनके मोहमें मूढ़ हो गया है। 'वित्त' यानी जानी हुई चीजें। सत्ता, विचार, लाभ, कई अर्थोंमें 'विद्' धातु पठित है। आत्माके अतिरिक्त जो-जो ज्ञात हो रहा है, वह साराका सारा वित्त है। असलमें मनुष्य अनात्मरूप दृश्यके मोहमें मूढ़ हो गया है। वह जिसे अपनेसे अलग अनुभव कर रहा है, उसे तो चाहता है और अपने आपको, जिसके लिए चाहता है, उसे भूल गया है।

कभी-कभी चलते-चलते मनुष्यका पाँव आगे-पीछे या वहीं फिसल जानेसे वह गिर जाता है और उसकी यात्रा स्थगित हो जाती है। मनुष्य जीवनकी यात्रामें प्रमादके फलस्वरूप भूतमें चला जाता है, तब पीछेको फिसलता है—'हमारा जीवन बच-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipramarsh Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पनमें ऐसा था, अब नहीं रहा।' भूतमें बिताया उत्तम जीवन, सुखदायी घटनाएँ भी दुःखका कारण बनती हैं। मन पीछेको फिसलकर शोकग्रस्त हो जाता है। इसी प्रकार कभी उसका मन भय और कम्पन से आक्रान्त होने तथा मोह और लोभग्रस्त होनेके कारण आगे भविष्यमें फिसल जाता है।

जयत्यसौ काचन मोहलीला।

भक्तोंके मण्डलमें जैसे रामलीला और कृष्णलीला होती है, वैसे हमारे जीवनमें और हमारे हृदयमें एक मोहलीला होती है। वर्तमानमें प्राप्तको पकड़कर बैठ जाते हैं कि यह जाय नहीं, बदले नहीं। मोहका अर्थ है, चित्तकी विपरीतता, जानेवाली चीजको रखनेकी कोशिश। कोई आदमी कोशिश करे कि हमारा बचपन या जवानी बनी रहे तो असम्भव है। काले बाल सफेद न हों, दांत न टूटें, चेहरे पर झुर्रियाँ न पड़ें, बुढ़ापा-मौत न आये, यह सम्भव नहीं। व्यष्टि-समष्टिके प्रारब्धानुसार धन भी आता-जाता है। ईश्वर हमारे पूर्वकर्मानुसार बहुत सारे फल हमें भेजता है और हटाता भी है। उसमें अपना तो कुछ वश ही नहीं। फिर भी मनुष्य धनके मोहमें मूढ़ होकर टस-से-मस नहीं होता। यही हठ पकड़े रहता है कि 'हमारे पास तो यह रहना चाहिए, होना चाहिए।'

मूढ़ कौन? 'गर्भो मूढः'—माँके पेटसे नियत समयपर बच्चा न निकला तो कहते हैं, 'गर्भ मूढ़ हो गया' अर्थात् उसे बाहर आनेका रास्ता नहीं मिला। इसी तरह मनुष्य संपत्तिके चक्करमें पड़कर ऐसा मूढ़ हो जाता है कि निकलनेका अवसर आनेपर भी नहीं निकल पाता। यही इसकी मूढ़ता है।

एकबार एक अन्धे आदमीको चहारदीवारीमें डाला गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vijaymani Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

उसमें एक ही दरवाजा था। दीवार का घेरा चौरासी कोसका था। उसके हाथमें लाठी दे दी गयी। उससे कहा गया : 'तुम दीवारके सहारे चले चलो और जहाँ दरवाजा मिल जाय, बाहर निकल जाना।'

वह दीवारपर हाथ रखकर चला! चौरासी कोस चलते-चलते उसके शरीरमें खुजली आयी। एक हाथमें डंडा था। दूसरे हाथसे शरीरमें खुजली करने लगा और चलता रहा, तो दरवाजा पार हो गया और फिरसे उसे चौरासी कोसका चक्कर काटना पड़ा।

इसीप्रकार यह जीव संसारमें चौरासी लाख योनियोंमें भटक रहा है। मनुष्य-योनि संसारसे निकलनेका दरवाजा है। यदि यहाँ आकर भी वह धन, परिवार, भोग में डूब गया, लोभ, भय, तृष्णा, काम, मदसे आक्रान्त और मोहित हो गया, परमात्माको जाननेकी चेष्टा नहीं की तो वह निश्चय ही मूढ़ हो गया।

अयं लोको नास्ति पर इति मानी : अर्थात् 'जो कुछ है वह यही लोक है, मरनेके बाद कुछ है ही नहीं, खाओ-खेलो, इसीमें मौज उड़ाओ, यही जीवनका मेला है' ऐसा समझनेवाले लोग मानी हो जाते हैं। वे सोचते हैं कि 'हमारे पास जो है वह और किसीके पास नहीं है।'

एकबार काशी-विश्वविद्यालय, वाराणसीमें सम्मेलन हुआ। उसके सभापति एक करोड़पति थे। विवेचनमें साहित्य, विज्ञान और दर्शनकी परिषदें उपस्थित थीं। सेठजीको तार बाँचनेके सिवा और कुछ आता नहीं था। वे बड़े सच्चे थे। जब उन्हें प्रेसीडेण्ट बनाया गया तो बोले : 'तुमने हमें विज्ञान, दर्शन और साहित्यकी परिषद्‌का सभापति बनाया है। पर हम जानते हैं कि हमें नहीं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हमारे पैसेको बनाया है। तुम्हें जो चाहिए सो ले लो। हम तुम्हारे घटाकाश-मठाकाशके चक्करमें पड़नेवाले नहीं। हम तुम्हारी इस परिषद्को नहीं जानते।'

ये मानी हो जाते हैं कि हम ऊँची कुर्सीवाले! वे 'कुरसिक' तो हैं, इसमें कोई शंका नहीं, पर उनमें मान भी भारी आ जाता है। वहाँ परमात्माका आविर्भाव कैसे हो? देश-काल-वस्तुके मानमें परमात्मा आनेवाला नहीं और मानी लोग यही चाहते हैं कि 'परमात्मा हमारी मुट्ठीमें आये और हमारी सेवा करे।' ऐसे लोग परमात्माको प्राप्त नहीं कर सकते।

यमराज नचिकेतासे कहते हैं: 'ऐसे मूढ़ लोग मृत्युके घेरेमें-से बाहर नहीं निकल सकते। **पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।** बार-बार वे जन्मते-मरते हैं। कभी उन्हें अमृतत्वकी प्राप्ति नहीं होती है। मूढ़ लोगोंको परात्पर ब्रह्मकी कोई जानकारी नहीं होती। वेदान्त-विद्या या अमृतत्त्व-विद्या ढूँढनेपर बहुतोंको भी नहीं मिलती। इस मार्गपर चलनेवालेको अनेक विघ्नोंका सामना करना पड़ता है। श्री हनुमानजी लक्ष्मणजीके लिए संजीवनी बूटी लेने गये तो बीचमें अनेक रुकावटें आयीं। लेकिन वे उन्हें पारकर निकल गये तो उन्हें संजीवनी बूटी प्राप्त हुई और वे लक्ष्मणजीको स्वस्थ कर पाये।

संसारमें लगे लोगोंको तो वेदान्त-विद्याका श्रवण भी प्राप्त नहीं हो सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

७. ब्रह्मविद्याका ज्ञाता आश्चर्य है :

संगति :

घोर मन्त्रमें प्रमादी और मूढ़ मनुष्यकी शोचनीय अवस्थाका वर्णन कर आत्मज्ञानकी दुर्लभताका वर्णन किया गया। संसारमें आत्मजिज्ञासु भी दुर्लभ होता है। इसलिए यमराज नचिकेताके अधिकारकी प्रशंसा करते हैं—'जो प्रेय नहीं श्रेय चाहे; अनात्मा नहीं, आत्मा चाहे; जगत्‌में न फँसे; ईश्वरसे प्रेम करे—ऐसा श्रेय चाहनेवाला पुरुष हजारोंमें कोई एक होता है :

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-
श्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥ ७॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Vipramukt Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जो बहुतोंको सुननेके लिये भी प्राप्त होनेयोग्य नहीं है, जिसे बहुत-से सुनकर भी नहीं समझते, उस आत्मतत्त्वका निरूपण करनेवाला भी आश्चर्यरूप है, उसको प्राप्त करनेवाला भी कोई निपुण पुरुष ही होता है तथा कुशल आचार्यद्वारा उपदेश किया हुआ ज्ञाता भी आश्चर्यरूप है ॥ ७ ॥

बहुत-से लोग ऐसे होते हैं, जिन्होंने कठोपनिषद् वेदान्त या ब्रह्मविद्याका नाम भी नहीं सुना हो। बहुत-से लोगोंको इसका श्रवण भी नहीं मिलता। श्रवणसे भी हृदय पवित्र होता है। वेदान्तमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन आत्मदर्शनके उपाय बताये हैं :

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो, मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः

इनमें श्रवणका लक्षण है : आदिमध्यावसानान्तः इत्येतेपामन्तराणाम् अशेषानां ब्रह्मात्मनि एव तात्पर्यम् इतिभिः श्रवणं भवेत्।

अर्थात् 'सम्पूर्ण वेदान्तोंका तात्पर्य आत्मा-ब्रह्मकी एकतामें है, यह निश्चय श्रवण है। जहाँ आदिमध्यावसानमें सबका बाध कर यह पक्का निर्णय हो, वह श्रवण है।

बहुत-से लोगोंके लिए यह सुनना मुश्किल है और बहुत-से लोग सुनकर भी समझ नहीं पाते। नचिकेता-सरीखा सच्चा जिज्ञासु कहीं-कहीं कोई एक हजारोंमें मिलता है। जहाँ जाओ, वहीं राज-कथा, जगकथा और भोगकथा सुनने-सुनाने वाले मिलते हैं। ब्रह्मचर्चामें किसे रस है ? लोग समझते हैं : 'ब्रह्मचर्चाका उपयोग ही क्या ? ब्रह्मचर्चा करनेवालेको न तो चुनावमें वोट मिलेगा, न मिनिस्टरी और न संसारी लोग ही प्यार करेंगे। उनको तो संसारकी चर्चा सुननी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

बचपनका एक संस्मरण याद आता है, जब मैं साधुओंमें जाता था। सत्रह-अठारह वर्षकी वय थी। जब किसी मठमें महन्तके पास ठहर जाता तो कोई-न-कोई भण्डारा जरूर आता। खानेके लिए जाना पड़ता। साधुओंमें तीन दिन पहले चर्चा छिड़ती—'कैसे लड्डू बनेंगे, कैसा कपड़ा मिलेगा, कौन कर रहा है—समष्टि-व्यष्टि।' खानेका दिन आता तो सवेरेसे उसीकी प्रतीक्षा करते। बारह बजे जाकर पंगत लगा देनी पड़ती। एक-दो बजे तक भोजन होता। खाकर आते तो साधु कहते: 'कपड़ा सड़ा है, लड्डू डाल्डेका है।' फिर चार दिन उसकी चर्चा चलती। हफ्ताभर एक भण्डारेकी चर्चामें बीत जाता।

सारांश, बहिरंग विषयमें ही लोगोंकी वृत्ति फँसी रहती है। भूत-चोरकी चर्चामें, दूसरेकी बहू-बेटी, बेटा, पैसाकी चर्चामें ही वे घण्टों बिता देते हैं!

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः। बहुत-से लोगोंको वेदान्त-श्रवणका सुअवसर तक प्राप्त नहीं होता। यदि वे सुनें तो कानके रास्ते वह चित्तमें घुस जाय। श्रवणकी बड़ी भारी महिमा है। भागवतमें लिखा है: 'जब हृदयमें ईश्वरविषयक श्रवणकी इच्छा उत्पन्न होती है, तत्क्षण ईश्वर हृदयमें कैद हो जाता है।' आप क्या सुनने जा रहे हो?

मुरलीमनोहर, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर, यमुनातट-बिहारी, मन्द-मन्द मुसकानवाला, प्रेमभरी आँखोंवाला, गाय चरानेवाला, व्रजबिहारीकी चर्चा सुनने जा रहे हैं? नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त, सच्चिदानन्दघन, अद्वितीय, प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न, परमानन्दस्वरूप ब्रह्मतत्त्वका श्रवण करने जारहे हैं?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

किं वा परैरीश्वरः।
सद्यो हृद्यवरुद्ध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्।

श्रवणकी इच्छा होने पर उसकी योग्यता, अधिकार और मनका पता चलता है कि उसे परमात्माकी चर्चामें रस आता है या नहीं? दुनियामें लोग दूकानदारीकी चर्चामें लगे हैं। कैसे भोग, पैसा, कल-कारखाना हो, इसीका चिन्तन करते हैं। परमात्माका श्रवण कौन चाहता है?

एतान् वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसां शोकमोहभयापहा॥

अर्थात् श्रवण करो तो तुरन्त अनात्म-पदार्थका त्याग होकर आत्मचिन्तन होने लगेगा। लेकिन यह श्रवण कहाँ मिलेगा? दिल बिगाड़नेवाले राग-द्वेषपूर्ण प्रसंगोंका ही अधिकांश लोग श्रवण करना पसन्द करते हैं, जिससे मोह-ममता और अभिमानकी ही वृद्धि होती है।

श्रीरामकिंकरजी और उनके पिता भी रामायणकी कथा करते थे। वे बहुत छोटे थे, तबसे हमारे पास आते थे। एक दिन जब वे कथा करके उठे तो सामने पानवालेकी दूकान थी, वहाँ वे पानके लिए गये। दूकानदार बोला: 'पण्डितजी' हम आपकी कथा भी सुन लेते हैं, पान भी बेच लेते हैं।'

उन्होंने कहा: 'क्यों नहीं भैया, तुम दूकानदार जो हो। तुम्हारा एक कान इधर ग्राहककी आवाज़ सुनता है, दूसरा उधर कथा! तुम दो-कानवाले हो?'

शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः। लोग कथामें माला बनाते हैं, स्वेटर बुनते हैं, लिखते हैं, किताब पढ़ते हैं। सुननेका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidik Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

दिखावा करते हैं ! वे समझते हैं 'कानमें यह आवाज पड़ जायगी, उसीसे कल्याण हो जायगा। इसमें समझने-बूझनेकी तो कोई बात ही नहीं हैं।' उन्हें समझदारी व्यापारमें आवश्यक मालूम होती है, वेदान्तमें नहीं। बड़े आश्चर्यकी बात है कि लोग सुनते हैं, पर समझ नहीं पाते। इसे समझना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि जब कोटि-कोटि जन्मके पुण्य इकट्ठे होते हैं, ईश्वर और गुरुकी कृपा होती है, तभी वेदान्तश्रवण मिलता है। खण्डनखण्डखाद्यके कर्ताने कहा है :

ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना।

ईश्वरकी बड़ी कृपा हो तो अद्वैतश्रवणकी वासना, उसमें रुचि होती है। यही बात अवधूतशिरोमणि दत्तात्रेय भी अवधूतगीतामें कहते हैं।

एक बड़े भारी विद्वान् गंगाकिनारे रहते थे। बचपनसे वेदान्त-श्रवणका अभ्यास था। छहों दर्शनोंके विद्वान् थे, दण्डीस्वामी थे, बादमें सुनाते भी थे। उनसे पूछा : 'महाशय, आपको तत्त्वज्ञान हो गया या नहीं ?'

यह हमारे बचपनकी ढिठाईकी बात हम सुना रहे हैं। 'वे बोले : 'देखो भाई, हमारे अद्वैत-ज्ञानकी परम्परा बनी रहे, इसलिए हम शास्त्रका अध्ययन-अध्यापन करते हैं। हमारा अन्तःकरण इतना शुद्ध कहाँ कि हमें ज्ञान हो जाय ?'

कोई अविद्या-लक्षणाके चक्करमें पड़ जाते हैं और जिंदगी-भर जहत्-लक्षणा, अजहत्-लक्षणा, जहदजहत्-लक्षणा बकते रहते हैं। अरे, यह कोई चीज है ! जिनकी बुद्धि अन्तर्मुख नहीं, उन्हींके लिए यह सब सारा बखेड़ा है।

अजहत् लक्षणा : आपके घरमें कोई मेहमान आये. और आप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Varanasi Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

उन्हें भोजनके लिए कहें और वह कहे-'भूख नहीं है।' तब आप कहेंगे, दो कौर खा लो' तो यह अजहत् लक्षणा हुई।

जहत् लक्षणा : 'अरे भाई, आपने खबर क्या सुनायी, हमको तो बिच्छूने डंक मार दिया।' यहाँ बिच्छू कहाँ है, ढूँढो टॉर्च लेकर। राम-राम! बिच्छू मत ढूँढो। यह है जहत् लक्षणा। बिच्छू और डंक छोड़ दो, दुःखमें लक्ष्यार्थ है।

हम जो बोलते हैं, उसे शास्त्रीय भाषामें बाँध लेते हैं। महावाक्य बमगोला है :

विनैव लक्षणाम्, विनैव सम्बन्धान्तरम् शब्दशक्तेरचिन्त्यत्वात्। शब्दशक्तिके अचिन्त्य होनेके कारण बिना लक्षणा और बिना किसी सम्बन्धके पुकारो सुषुप्त-पुरुषको—अरे 'देवदत्त!' यहाँ कौन-से सम्बन्धका ज्ञान हुआ? अरे, शब्दमें अचिन्त्य शक्ति है। देवदत्त जाग गया। इसी प्रकार 'तत्त्वमसि' बोल दिया।

तत्त्वश्रवणमात्रेण शुद्धबुद्धिर्निराकुलः।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति॥

अष्टावक्रजीने कहा है कि शुद्धबुद्धि श्रवणमात्रसे ही निराकुल हो जाता है। किसीसे कहे : 'तत्त्वमसि'! 'असि' तक न पहुँचे, 'तत्त्व'से ही बोध होगया, जैसे कि 'गोविन्द'को पुकारते समय गजके मुखसे 'गो' निकला कि भगवान् चल पड़े।

जिनमें शुद्ध बुद्धि नहीं है, मनमें आत्मज्ञानके बारेमें असम्भावना है कि 'भला शुद्ध-बुद्ध-मुक्त अद्वितीय आत्माके ज्ञानमात्रसे ही क्या अविद्याकी निवृत्ति और मुक्ति हो सकती है? इन्हें भी सुनकर भी ज्ञान नहीं होता। सद्योमुक्ति, विदेहमुक्ति, क्रममुक्ति, जीवन्मुक्ति ऐसे हजारों भेदोंकी कल्पना ही छोड़ दो। हिरण्यगर्भका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajramuni Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

प्रतिबन्ध नित्य-निवृत्त ही होता है। वामदेवका प्रतिबन्ध गर्भमें निवृत्त होता है। श्वेतकेतुका प्रतिबन्ध नौ बार उपदेशसे निवृत्त होता है।

उतो वा भावी वा वर्तते भवा। इस तरह तीन प्रतिबन्ध होते हैं। अक्ल मारी गयी अर्थात् सुनते रोज हैं, रोज समझनेकी कोशिश भी करते हैं, पर अक्ल है वहीं-की-वहीं, नोन-तेल-लकड़ीमें अटकी रहती है। व्यापार तो हर रोज करेंगे, भले वैराग्यकी बात कितनी भी सुन लें। ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान कितने भी सुनें, बच्चे हर साल करेंगे! तात्पर्य यह कि सुनते हुए भी शास्त्रोपदेशको जीवनमें धारण करने-समझनेकी लोगोंमें रुचि नहीं है।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

एक दिन बहुत सारी वाग्देवियाँ इकट्ठी हुईं! वे बोलीं : 'चलो, हम सब ब्रह्मदेवको ढूँढ़ निकालेंगी!'

उन्होंने सोचा : 'हम सब स्त्रियाँ हैं। वहाँ तो सन्नाटा है, 'तो किसीको साथ लेकर चलें।'

उन्होंने अपने साथ मनको, नपुंसकको ले लिया। किसी पुरुषको इसलिए साथमें नहीं लिया कि उन्हें जाना है 'अपने पति ब्रह्मदेवके पास।' पुरुषको साथ लेकर जायें तो न मालूम पतिदेव क्या समझें? हिजड़ेको ही साथ लेकर चलो।

वे मनको साथ लेकर ब्रह्मदेवके पास तक पहुँच गयीं, पर वह बोधका विषय नहीं हुआ,—नहीं बना, उसे जान न पायीं। वे लौटकर आगयीं। ब्रह्म वाणीका विषय ही नहीं। श्रुतिमें कहा है : अवचने नैव प्रोवाच। ब्रह्मका वर्णन कैसे? तो बिना बोले, बिना जीभ हिलाये। बोले नहीं और ब्रह्मका वर्णन हो जाय। तो,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidic Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

यह सुननेको ही नहीं मिलता। सुनानेवाला मिले तब न सुनें? सुनने पर भी वृत्ति परिच्छिन्नग्राहिणी या ग्रहग्रस्त हो तो भी ब्रह्मज्ञानका ग्रहण होगा ही नहीं।

एकबार हम एक महात्माके पास गये और बोले: 'हमें आप ब्रह्मज्ञानका उपदेश करें।

उन्होंने कहा: 'अच्छा, हम तुम्हें जो बात समझाते हैं, यदि वह तुम्हारी समझमें ठीक-ठीक आजायगी, तब क्या अबतक तुमने जो समझा है, वह सब छोड़ देनेके लिए तैयार हो?'

यही पूर्वाग्रह, राहु, पापग्रह है जो ब्रह्मज्ञानमें प्रतिबन्धक है।

मैं बौरी ढूँढन चली, रही किनारे बैठ।

कई लोगोंका खयाल है कि 'वेदान्त हमारे लिए नहीं, औरोंके लिए है।'

कई लोग जिज्ञासुओंको डरवाते हैं कि 'वेदान्त सुनोगे तो घर-गृहस्थी छूट जायगी।' अरे, वेदान्तसे यह दुश्मनी! सच तो यह है कि वेदान्त सुनकर मात्र तुम्हारी बेवकूफी मर जायगी। ज्ञान तुम्हारी और कोई चीज नहीं मिटायेगा। वेदान्तकी किसीसे दुश्मनी नहीं। ज्ञानसे दुश्मनी करनेवालेको बेवकूफी ही रखनी पड़ेगी। ज्ञान तुम्हारा घर, परिवार, धन, शरीरका कुछ नहीं बिगाड़ेगा। इसमें मन ही तुम्हारा कारण है। तुम छोटी-छोटी बातोंमें खुश होते हो, इसे वह मिटाकर छोड़ेगा।

भगवान् श्रीकृष्णने भक्तिके लिए पापियोंको भी निमन्त्रण दिया है:

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vainamsi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

—गीता

भगवान् पापियोंको आमन्त्रण देते हैं तो क्या ज्ञानियोंके लिए उनका दरवाजा बन्द है? नहीं वे कहते हैं :

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥

—गीता

'आओ आओ, ज्ञानकी नाव पर बैठ जाओ।'

'हम तो पापी हैं!'

क्या नम्बर है तुम्हारा पापियोंमें? कहाँ गया तुम्हारा पाप-पुण्य? इस समय तुम अपना धन, मकान, परिवार और अभिमान छोड़कर श्रद्धासे धरती पर बैठे हो, वेदान्तका श्रवण कर रहे हो और पाप लगा है? एक शब्द भी वेदान्तका जिसने सुन लिया—

भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः। इस समय तुम तपस्वी, पुण्यात्मा, सौभाग्य-भाजन हो। फिर भी अपनेको पापी कह रहे हो तो बताओ कि किस नम्बरके पापी हो?

संसारके सब पापियोंमें-से यदि भूत-वर्तमान और भविष्यको ध्यानमें रखकर एक नम्बरके पापीको छाँट लिया जाय, तो उस 'पापकृत्तम'को भी भगवान् भक्तिका अधिकार देरहे हैं, वेदान्त-श्रवणके लिए आमंत्रित कर रहे हैं।

उन्हें कर्म, उपासना, योग आदिकी अपेक्षा नहीं। श्रवण-मनन-निदिध्यासन करो, परमार्थ-वस्तुको समझनेमें बुद्धिका प्रयोग करो।

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

गीताके उक्त श्लोकमें भगवान् कहते हैं : वृजिनं, सर्वम्। कर्मसे मल-नाश होता है, पर विक्षेपकी निवृत्ति नहीं होती। इसी तरह कर्मोपासनासे मलविक्षेप नष्ट होते हैं, पर आवरण-भंग नहीं होता। किन्तु ज्ञान-नौकासे 'सर्वं वृजिनं' यानी आवरण-पर्यन्त त्रिविध मलोंसे पार पाया जा सकता है।

संतरिष्यसि=सम्यक् तरण पाजाओगे फिर लौटकर न आना होगा। पापी वेदान्त-श्रवण कर इस पापको समुद्रसे पार हो जायगा। तब कभी उसके हृदयमें 'मैं पापी, मलिन, आवृत्त' ऐसा तादात्म्य उदित ही न होगा। स्वयं भगवान् कह रहे हैं—'आओ, सुनो, क्योंकि आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा।

श्रीकृष्ण भगवान्को यह मन्त्र बड़ा प्यारा था। इसीलिए वे गीतामें इसकी शोभा लेते हैं :

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन—
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥

—गीता

कठोपनिषद् भी उन्हें बहुत प्यारी दीखती है। कठका यह मन्त्र देखिये :

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुँ हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥

और

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vraj Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

कठोपनिषद्के ये दोनों मन्त्र कुछ शब्दों और कुछ अर्थके परिवर्तनके साथ हुबहू गीतामें लिये गये हैं। देखिये :

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥

और

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

श्रवणके लिए वक्ताका होना आवश्यक है। श्रोताके मनमें श्रवणके लिए रुचि न होगी तो मन परिच्छिन्न विषयोंके चिन्तनमें भटकता रहेगा! अपना प्यार, अपनी अहंता, अपना व्यक्तित्व, प्रान्त, गाँव, भाषा, धर्म, जातिको लेकर जहाँ हमारा दिल-दिमाग खण्ड-खण्ड, टुकड़ा-टुकड़ा होगया है, वहाँ अखण्ड होनेकी बात सुनकर समझना कठिन हो जाता है। किन्तु अधिकारी कब कहा जायगा? 'जब आत्मा अपना घर है, उसमें घुसना है यह भाव होगा तब अपने ही पास लौटनेमें क्या झगड़ा? अपने घरमें भी जब हम ठाकुरबाड़ी बनाते हैं तो पांव धोकर भीतर जाते हैं। गंदे पाँवसे प्रवेश नहीं करते। पवित्र होकर ही जाना होता है। वेदान्त-श्रवणके लिए पवित्र बुद्धिसे तत्पर होना चाहिए। राग-द्वेष और अहंता-ममतासे कलुषित बुद्धि होनेपर अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vijaymanti Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

ऐसे ब्रह्मतत्त्वका वक्ता भी आश्चर्य है। 'अशब्दम्-अस्पर्शम्-अरूपम्'—इसमें शब्द, स्पर्श या रूप दुःख भी नहीं। इसे वह बोलकर समझा देगा। वह स्वयं परिच्छिन्नताका अतिक्रमण कर गया, उसमें परिच्छिन्नके प्रति ममता नहीं है फिर भी परिच्छिन्नतामें बैठकर बोलता है। सर्वदा प्रकाशमान परमात्मा अप्रकाशमान हो रहा है, जो अपरिच्छिन्न है, वह परिच्छिन्न हो रहा है, चैतन्य जड़-सा, सत् असत्-सा, आनन्द दुःख-सा हो रहा है। इन सारी बातोंको आश्चर्यरूप वक्ता सुनाता है; जिसे सुनकर श्रोता आश्चर्य करने लगता है : 'अहा ! अहा !!'

आश्चर्य शब्द की व्युत्पत्ति है : 'आह-आह इति चर्यते अस्मिन् इति आश्चर्यम्।' क्या आश्चर्य है कि शरीर देखनेमें ज्यों-का-त्यों बना रहे, पर 'मैं पापी, मैं पुण्यात्मा' या 'मैं सुखी-दुःखी हूँ' यह अभिमान कट जाय ! देखनेमें परिच्छिन्नता बनी रहे, फिर भी बुद्धिमें बैठे इन सारे भ्रमोंको कि मैं स्वर्ग-नरकमें जाऊँगा, संसारी हूँ, पुनर्जन्म होगा। निकाल दे और हम ज्यों-के-त्यों बने रहें, ऐसा वक्ता आश्चर्य है। प्रवचन करने पर जिसकी समझमें आजाय, वह श्रोता तो और भी आश्चर्य है। ऐसे श्रोताका मिलना भी दुर्लभ है !

जिज्ञासुको अपना हृदय अशुद्ध है, ऐसी चर्चा नहीं सुननी चाहिए और न करनी ही चाहिए। लोग यही नहीं समझते कि हृदय कैसे अशुद्ध होता है ? एक बार मैं बालकेश्वर रोडसे 'लेडो नॉर्थ कॉट' पैदल आ रहा था। रास्तेमें एक सेठ मिल गये। रास्ते-भर उन्होंने संसारकी चर्चा करनेमें इतने राग-द्वेष और गुण-दोष सुनाये कि हमें सुनकर आश्चर्य हो गया कि 'इन लोगोंका दिल-दिमाग कितना पक्का हो गया है कि इतने राग-द्वेषकी चर्चा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajirao Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

इतनी दिलचस्पीसे कह रहे हैं। ऐसे वातावरणमें रहते हैं, फिर-भी इनका हार्ट फेल नहीं होता। ये इतनी जलन कैसे सह पाते हैं? हमलोग तो यह सुन भी नहीं सकते।'

संसारी लोगोंकी चर्चामें गुणको बात नहीं, सबमें दोष-ही-दोष दिखाया जाता है। इसमें वह परब्रह्म परमात्माको भूल जाता है, यह तो बता दिया कि अमुककी नाक चिपटी है या ऊँची, पर यह नहीं बताया कि दोनोंकी नाक सामने है, दोनोंकी आखें दो हैं, दोनोंका मुँह एक ओर है, दो कान हैं, एक सिर है। अलगाव या भेदकी बातें झट बना दीं, पर समानता, एकताकी एक भी बात नहीं बतायी। सारा संसार जड़की, भेदकी चर्चामें लगा है। दुःख, भोग, स्त्री, धन, छोटी-छोटी बातें, असद् वस्तुएँ उसके चित्तको घेरे हैं। जब मनुष्यको भगवान् सद्बुद्धि देता है, परि-च्छिन्न पदार्थोंसे थोड़ा वैराग्य होता है। ईश्वरकी बड़ी कृपा हो तो हृदय पवित्रताकी ओर बढ़े। जन्म-जन्मके सत्कर्म जाग्रत हों और अपरिच्छिन्न ब्रह्मतत्त्वके श्रवणकी इच्छा हो तब जो सबके हृदयमें एक है, वह सुननेको मिले।

शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः। विषयासक्त पुरुष श्रवण-कालको छोड़कर सारा समय विषय-चिन्तनमें बिताता हो या किसीको अपने विपर्ययमें बड़ा दुराग्रह हो कि 'मैं हाड़-मांस-चामका देहवाला पुतला हूँ, मैं देह हूँ, मैं मनुष्य हूँ; मैं ब्राह्मण-संन्यासी-हिन्दू हूँ' तो उसका श्रवण व्यर्थ है। प्राकृत-पदार्थमें आत्मबुद्धि होना, प्रकृतिके परिणाम या परिवर्तनको 'मैं' समझ बैठना विपर्यय है। मनुष्य-पशु, स्त्री-पुरुषका शरीर प्रकृतिसे बना है। तुम चैतन्य आत्मा, साक्षी हो; वस्तुतः अद्वितीय परब्रह्म परमात्मा हो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

'विपर्यय:' सत्यकी विपर्यंगति विपर्यय है। सत्य यानी पर्यं-गति। यह बात बिलकुल सत्यके विपरीत है कि प्रकृतिमें परिणामको प्राप्त होनेवाले, बिलकुल विपर्ययशील, जन्म-मरणवाले पदार्थोंको 'मैं' माना जाय, चेतनको जड़, द्रष्टाको दृश्य माना जाय। इस विपर्ययमें दुराग्रहके कारण तुम सुनकर भी नहीं समझ सकोगे। और वितर्क ?

तर्क्यताम्, मा कुतर्क्यताम्। अनुभवके अनुसार तर्क करो, पर कुतर्क मत करो। बालकी खाल निकालनेमें मत लगो। कुतर्कमें ही बुद्धि विपर्यय-ग्राहिणी हो जाती है।

प्रज्ञामें संस्कारका न होना ही 'अभागिन:' यानी अशुद्धात्मा होना है। श्रीशङ्कराचार्य कहते हैं :

'शृण्वन्तोऽपि वहवो यं न विद्युः, न विदन्त्यभागि-नोऽसंस्कृतात्मानो न विजानीयुः।'

वे अभागे हैं, जिन्होंने अपनी अन्तरात्माका संस्कार नहीं किया। वे विकारमें फँस गये; जैसे एक पशु दूसरे पशुसे लड़ने लगे। लाल आँख और काला दिल यानी द्वेषी-मोही बन जाय। प्रज्ञाका संस्कार नहीं किया, हृदयकी कालिमा नहीं धोयी तो परमात्म-ज्ञान कैसे ? परमात्माके ज्ञानमें असत्कृतात्मा, विषया-सक्ति, देहाभिमान बाधक है।

वेदान्तका अपौरुषेय ज्ञान अर्थात् अपरिच्छिन्न अद्वय आत्म-तत्त्व इन्द्रियोंकी परीक्षाका विषय नहीं। यह प्रयोगशालामें दूरबीन-खुर्दबीनसे या अन्तःकरणकी मशीनसे दृश्य नहीं होगा। यह तो अन्तःकरणका भी प्रकाशक है। यह आचार्यप्रोक्त होनेसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

नहीं, स्वतः सिद्ध होनेके कारण महत्त्वपूर्ण है। आचार्यप्रोक्त तो जिज्ञासुकी श्रद्धा बढ़ानेके लिए है। भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव आदि दोषोंसे रहित, व्यक्तित्वके सम्बन्धसे शून्य इस ज्ञानके होनेके पश्चात् कोई व्यक्ति ऐसा अनुभव नहीं करता कि मुझसे कोई अव्यक्त-शेष रहा है। अशेष-विशेष-निषेधावधि इस वस्तुका ज्ञान ऐन्द्रियक अनुभवजन्य ज्ञान न होनेके कारण इस ज्ञानको ग्रहण करनेवाला शमदमादिसम्पन्न, शुद्धान्तःकरण, शास्त्रोक्त रीतिसे श्रवण-मनन-निदिध्यासन करनेवाला अधिकारी-विशेष होता है। नहीं तो श्रवण करनेपर भी समझमें नहीं आसकता। इसलिए जितना आश्चर्य इसका वक्ता है, उतना ही श्रोता भी है।

एकबार हम कुम्भके मेलेमें गये, तो एक बड़ा साइन-बोर्ड देखा : 'श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ'। भीतर घुसे तो देखा, गद्दी पर महन्तजी बैठे थे। मैंने उन्हें साष्टांग दण्डवत् किया और पूछा : 'श्रोत्रिय किसे कहते हैं ?'

उन्होंने पूछा : 'तुम कौन हो ?'

मैं : 'मैं ब्राह्मण हूँ।'

वे 'देखो पण्डितजी, हमारे गुरुजी गद्दी पर बैठते थे तो उनके नामके साथ 'श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ' लगता था। उनकी गद्दी पर हम बैठ गये तो हमारे नामके साथ भी 'श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ' लग गया।'

लेकिन क्या उत्तराधिकारमें श्रोत्रियता और ब्रह्मनिष्ठता मिलती है ? नहीं, उन्हें तो श्रोत्रियता और ब्रह्मनिष्ठताका अर्थ भी मालूम नहीं था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnath Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

श्वेतकेतुको तरह-तरहसे नौ बार समझाना पड़ा, तब उसका प्रतिबन्ध दूर हुआ ! 'तद्' और 'त्वं' दोनों एक कैसे ? कहाँ वह, सम्पूर्ण भूत-भौतिक-अव्याकृतका अधिष्ठान और कहाँ इस अन्तःकरणमें बैठा हुआ प्रमाता—त्वं ? कैसे यह 'त्वम्' 'तत्' कैसे हो सकता है ? लेकिन 'असि' पद बताता है कि दोनों एक हैं। प्रत्यक्ष 'तत्' और परोक्ष 'त्वं' कैसे ? प्रत्यक्ष परोक्ष कैसे और परोक्ष प्रत्यक्ष कैसे ? उपनिषदोंमें दोनोंको एक बतानेकी जो युक्ति अपनायी गयी है वह अद्‌भुत है। 'बृहदारण्यक-उपनिषद्'के दूसरे अध्यायके ४-६ मंत्रोंसे 'नेति-नेति' द्वारा आत्मा = (त्वं-पद) और परमात्मा = (तत् पद) के साथ जो उपाधि जुड़ी हुई हैं, उनका निषेधकर पहले वाच्यार्थ-लक्ष्यार्थका निश्चय किया गया। फिर दोनोंके वाच्यार्थ भाग 'नेति-नेति' द्वारा अपवादकर लक्षणा द्वारा दोनोंकी एकताका निरूपण किया गया है।

यमराज कहते हैं : 'नचिकेता, तुम्हारे समान दूसरा श्रोता मिलना भी दुर्लभ है।'

'नेति-नेति' द्वारा सर्वका निषेध करदेने पर नचिकेताके सामने केवल मृत्युदेव ही शेष रह जाते हैं। वेद बताते हैं कि 'सब असत् है, तू ही सत् है, शेष है !' मृत्युदेव बिना बोले उपदेश कर रहे हैं कि तेरे सिवा सारी सृष्टि मेरे पंजेमें समा गयी है। तू अमर और अमृत है।'

कोई लक्षणा कर, या अविद्यावृत्तिसे समझा देते हैं। तो कोई बिना बोले ही मात्र इशारेसे समझाते हैं ! किसीके मतमें तो शब्दकी अचिन्त्यशक्तिसे ही बोध हो जाता है।

'आश्चर्योऽस्य वक्ता' पदको लेकर श्रीसुरेश्वराचार्यने पाँच-दस श्लोकोंमें बड़े विस्तारसे इसका प्रतिपादन किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajramati Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

एक हिन्दूको, ब्राह्मणको, संन्यासीको मनुष्य होनेमें जितनी देर लगती है उतनी ही देर जीवको ब्रह्म होनेमें लगती है। वह अपने हिन्दूपन; ब्राह्मणपन, संन्यासीपनसे ज्यों ही ऊपर उठता है, त्यों ही मनुष्य बन जाता है। ठीक ऐसे ही जीवपनसे ऊपर उठते ही वह ब्रह्म हो जाता है। पशु भी प्राकृत है, है तो वह जीवात्मा भी अपने संस्कारके कारण, उपाधि-अन्तःकरणके कारण प्राकृत है और ऊपर नहीं उठ रहा है। गुरुके इशारेसे, जिसने 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यके श्रवणसे इस तत्त्वको जान लिया, वह भी आश्चर्य है, उसमें भी बड़ा कौशल है।

आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः। कुशलेन पुरुषेण—कुशलं यथा स्यात् तथा अनुशिष्टः 'सचमुच, अनुभवी-तत्त्वज्ञानी पुरुष किसी विशेष कौशल द्वारा अनुशासन करता है। जिसे वह इसका शिक्षण देता है, वही इसका ज्ञाता होता है और वह आश्चर्यरूप होता है। यदि कोई कहे : 'हमने अपनी बुद्धिसे जान लिया' तो कहना होगा कि 'बुद्धिका अभिमान' शेष है—तुम्हारी बुद्धि और तुम बुद्धिवाले! और उस बुद्धिमें तुम्हारा 'मैं' जान लिया, पर किसी बुद्धिके बच्चेको ही जाना है।'

ब्रह्मज्ञानकी रीतिमें आखिर क्या आश्चर्य है? उसमें फल-व्याप्ति नहीं होती और वृत्तिव्याप्ति होती है, यही आश्चर्य है। ब्रह्म आत्माकी एकतामें अविद्याके कारण होनेवाले भ्रमको तोड़नेवाला ज्ञान कैसे पैदा हो? अन्धकार तो दूर हो जाय और हमने देख लिया, ऐसा अभिमान न हो—ऐसा यह ज्ञान है।

देखनेकी अनेक रीतियाँ हैं। घरमें घड़ा रखा हो और न दीखे तो लालटेन या टॉर्च यानी चलती-फिरती ज्योति चाहिए। इस ज्योति या रोशनीसे दो काम होंगे, अंधकारकी निवृत्ति और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

घड़ेका दर्शन। 'मैं 'घटज्ञ हूँ' ऐसा अभिमान भी उत्पन्न होगा। ये दो वृत्तियाँ होंगी।

यदि वहाँ दीपक की रोशनी है तो और दीपक की आवश्यकता नही होगी। 'मैं हूँ या नहीं' यह जाननेके लिए किस चीजकी आवश्यकता है?' 'इदम्-इदम्' करके अनेक वस्तुएँ दीख रही हैं। इनका कर्ता और भोक्ता भेदभ्रांतिसे अलग-अलग मालूम होता है। जिस अज्ञानान्धकारके कारण भेदभ्रांति हो रही है, उसकी निवृत्ति-के लिए 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य-जन्य वृत्तिरूप बत्ती तो चाहिए। किन्तु जानकर भी 'अहं ब्रह्म जानामि' ऐसा अभिमान उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि वहाँ तो स्वयम् ही स्वयम् है, ज्ञाता और ज्ञेयका भेद ही नहीं। अन्यका ज्ञाता अन्य नहीं, स्वयंका ज्ञाता स्वयं नहीं, क्योंकि कर्ता और कर्म एक नहीं। केवल जो अन्य विषय है, उसका बाध हो जाता है क्षणभरके लिए 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यजन्य वृत्तिका उदय हुआ, अविद्याको निवृत्त किया और तुम तो—'स्वयं च तत्त्वं स्वयमेव बुद्धम्।' स्वय ही हो। इसमें अभिमान नहीं चलता।

तत्त्वज्ञान हो गया तो 'कोऽहं-सोऽहं' की भी जरूरत नहीं रहेगी। 'अह ब्रह्मास्मि' और 'तत्त्वमसि' जप करनेका मन्त्र नहीं, अविद्या-निवृत्ति तक वह आवश्यक है। तत्त्वज्ञान होने पर—

आश्चर्यवत्पश्यति काश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥

०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaipanasi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

८. उपदेष्टा वर नर हो

संगति :

सातवें मन्त्र में वक्ता और श्रोता दोनों आश्चर्यरूप हैं, यह समझाकर ज्ञानप्राप्तिकी दुर्लभता बतायी गयी। सुननेवालोंमें भी बहुत-से लोग ब्रह्मतत्त्वको नहीं समझ पाते, 'इसलिए श्रोत्रिय ब्रह्म-निष्ठका कुशल अनुशासन आवश्यक होता है। अब कहा जाता है कि 'अवर नर' द्वारा प्रोक्त होने पर इसका ज्ञान नहीं होता, वह वर नर होना चाहिए। भेददर्शीको ज्ञान नहीं होता, यह समझानेके लिए यह मन्त्र है : **'आगमवता आचार्येण प्रोक्तं ज्ञानं सफ-लमेव।'**

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कई ऐसे श्रोता होते हैं जो जीवनभर सुनें और उन्हें जीवनभर समझाया जाय, फिर भी कुछ समझमें नहीं आता। जैसे कोई हाथ-पाँव तो बहुत हिलाये, पर एक तिल भी न हटे ! तिलकी ओटमें पहाड़ छिपा हुआ है। परमात्मा कहीं दूसरे देश-काल-वस्तुके रूपमें छिपा नहीं है, वह तो ज्यों-का-त्यों है फिर भी **शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः**। सुनते हुए बहुतोंने उसे नहीं जाना।

यमराजने पहले नचिकेताकी परीक्षा ली। यदि उसमें वैराग्यकी कमी होती, तो उसे ज्ञान न होता। उसे खूब प्रलोभन दिया। बादमें बताया, बुद्धिमें संस्कार चाहिए; विषयासक्ति, विपर्ययमें दुराग्रह, कुतर्क नहीं चाहिये। इस तरह समस्त प्रतिबन्ध निवृत्त हो तो ज्ञान हो जाय। अब एक कारण और बताते हैं कि तत्त्वज्ञान क्यों नहीं होता? **कस्मात् न विद्युः?** यह बात लोगोंकी समझमें नहीं आती।

न नरेणावरेण प्रोक्त एष
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति
अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥ ८ ॥

कई प्रकारसे कल्पित किया हुआ यह आत्मा साधारण बुद्धि-वाले पुरुषद्वारा कहे जानेपर अच्छी तरह नहीं जाना जा सकता। अभेददर्शी आचार्यद्वारा उपदेश किये गये इस आत्मा में [आस्ति-नास्तिरूप] कोई गति नहीं है; क्योंकि यह सूक्ष्म परिमाणवालोंसे भी सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है ॥ ८ ॥

(१) इसके वक्ता 'अवर-नर' न हों, उच्चकोटिके हों, क्योंकि नरका स्वभाव ऐसा है कि वह अपने पासकी पूँजी दूसरेको देना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vamanesh Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

नहीं चाहता। नर में यह 'अर्थ' है। ज्ञान भी एक पूंजी है। वह ऐरे-गैरे नत्थू-खैरेको देनेकी चीज नहीं।

(२) ज्ञान होनेपर सुख-दुःख एक हो जाते हैं। 'क्या हम दुःखी रहेंगे?' जो ऐसा समझेगा, वह ज्ञान पाकर भी ज्ञानकी बदनामी करेगा। सुखी रहो तो ठीक, दुःखी रहो तो भी ठीक। यह मालूम पड़ना चाहिए कि ज्ञान होनेपर वह वैराग्यनिष्ठ रहेगा।

(३) किसीको मालूम पड़े कि 'पाप-पुण्य दोनों बराबर हैं, तो हम पाप ही करेंगे' तो वह उचित नहीं। ज्ञान होने पर वह जो अपने जीवनमें सदाचारकी आदत डाल देता है, वह ज्ञानको बदनाम नहीं करेगा। उसके जीवनमें सदंश आजायगा। पुजारी वही होगा, जो मन्दिरमें पवित्रतासे रहेगा ऐसा विश्वास हो; क्योंकि देवता तो कहेगा नहीं कि हमारे मन्दिरमें पवित्र क्यों नहीं रहते?

एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य
न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्।

किसीको ऐसी दशामें पहुँचा दिया जाय कि 'कर्मसे न उन्नति हो न अवनति' फिर उससे बुरे कर्म हों तो? यह विश्वास हो जाना चाहिए कि 'वह बुरे कर्म नहीं करेगा।' इस तरह जिसके जीवनमें सदाचार, सद्भाव, शांति और समाधिका अभ्यास हो उसे इसका उपदेश किया जाता है।

(४) ऐसा उपदेश कौन करेगा तो वह सफल होगा? वंध्य नहीं? इसके लिए 'अवर' शब्दके प्रयोग द्वारा समझाया कि 'अवर' = कर्मिष्ठ मनुष्य जो रागद्वेषके सुखदुःखके चक्करमें फँसा है, वह यदि इसका उपयोग करेगा तो उपदेश अविद्या-निवृत्तिमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

समर्थ नहीं होगा। उपदेशमें सामर्थ्य होनेके लिए उपदेष्टाका वर नर होना आवश्यक है।

वर कौन है ? जो वरणीय होवे, कन्या जिसे वरण करे वह वर होता है ? वह एक होता है—

वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

उस वरेण्य परमात्माको दान करके एक हो गया है, जिसने उससे तादात्म्यका अनुभव कर लिया है, अविद्या निवृत्त होनेसे जो उससे एक हो गया है, जो एक परमात्मासे एक हुआ है वह वर नर है। यदि ऐसा वर मनुष्य उपदेश करे तो वह जिज्ञासुकी अविद्या-निवृत्तिमें सफल होता है, अन्यथा अवर नर उपदेश करेगा कि 'तुम ब्रह्म हो' और उपदेशका समय बीत जाने पर कहेगा—'हम आज-कल बडे दुःखी हैं; हमारा एक दुश्मन है उसे कैसे नीचा दिखावें ? झूठ बोलकर, रिश्वत लेकर भी यह काम कैसे बने ?' इस प्रकार उपदेश कालमें वह ब्रह्म बनेगा, उपदेशान्तर कालमें बिलकुल जीव। जिज्ञासु सोचेगा—'जब हमारे उपदेशक पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ, राग-द्वेष और सुख-दुःखके चक्करमें हैं.........'

तत्त्वज्ञानी अपने लिए प्रारब्ध या पूर्व जन्म, वर्तमान जन्म या उत्तर जन्म नहीं मानते। यह तो शिष्यलोगोंकी कल्पना है। महन्तजीसे पूछा : 'आपके पास इतनी धन-सम्पत्ति कैसे ?'

महन्तजी : 'क्या करें, पूर्व जन्मके प्रारब्धका फल है तो भोगना ही पड़ता है।'

प्रश्नकर्ता : 'तो क्या तुम्हारा पूर्व जन्म था ?'

अरे, तुम तो ब्रह्म हो ! तुम्हारा न पूर्व जन्म है, न उत्तर-जन्म। यह प्रारब्ध लेकर कहाँ बैठ गये ? शिष्यसे किसीने पूछा :

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

'ज्ञानीजीके पास इतनी सम्पत्ति कैसे ?'। उसने कहा : 'पूर्व जन्म-का फल, प्रारब्ध !' शिष्यकी दृष्टिमें वह पूर्वजन्मका फल हो सकता है; परन्तु जहाँ गुरुजीने स्वयं अपने ऊपर पूर्वजन्म, प्रारब्धजन्म कर्तृत्व-भोक्तृत्व और जीवत्वको भी आरोपित कर रखा है वह तत्त्वज्ञ कैसे ? और तत्त्वज्ञ नहीं तो वह वर नहीं, अवर नर है। जीव न होता तो कर्म कहाँसे होता और विना कर्तापन-भोक्तापनके कर्म कैसे होता ? तात्पर्य है ऐसी कल्पनाके कारण प्रारब्ध, वर्त-मान जीवन, उत्तर जन्म जिज्ञासुके लिए है, तत्त्वज्ञानीके लिए नहीं। (तत्वज्ञकी दृष्टिमें तो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त ब्रह्मके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं, जीव-जगत् भी नहीं है।)

वर मनुष्य—'ब्रह्म' में 'ब्र' वर है। ब्रह्मसे एकत्वप्राप्त पुरुष वर है।

भववारिधि मृगतृषा समाना।
अनुछिन्न यह भाखन नहिं आना॥

जो कहता है कि यह प्रतीयमान प्रपंच मृगतृष्णाके समान मिथ्या है और नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मतत्त्वके सिवा और कुछ है ही नहीं' वह वर नर है। वर मनुष्य उपदेष्टा हो तो परमात्मा सुविज्ञेय है। अवर नर हो तो नहीं, क्योंकि वह प्रारब्ध, कर्ता-भोक्ता, पापी-पुण्यात्मा, सुखी-दुःखी, रागी-द्वेषी, संसारी, परिच्छिन्नसे तादात्म्य करके अज्ञानवश बैठा हुआ है। श्रीशङ्कराचार्य—'न वरेण=हीनेन प्राकृतबुद्धिना इत्येतद्।' आनन्दगिरिने तो इसकी व्याख्या नहीं की, गोपालयतीन्द्रने की है। कठोपनिषद् पर तीस-तीस प्रकारकी टीकाएँ हैं।

अवर मनुष्य माने दो नम्बरका प्राकृत बुद्धिवाला मनुष्य। वर माने एक नम्बरका वह है जो अपनेंको अविनाशी, अद्वितीय, परि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पूर्णतम, प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्वसे एक जाने। प्राकृत बुद्धि-वाला अवर मनुष्य प्रकृतिके विकार-देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्तिसे जो बनता है, पंचीकरणसे जो बनता है, जो बनता-बदलता-बिगड़ता है सो सब—इनमें जिसकी बुद्धि अटकी हुई है और 'यह मैं हूँ', 'यह मेरा है' ऐसा समझता है। उसके द्वारा उपदेश करने पर परमात्मा सुविज्ञेय नहीं है। क्यों?

बहुधा चिन्त्यमानः

क्योंकि लोगोंने परमात्माका बहुत प्रकारसे चिन्तन किया है। ऐतरेय उपनिषद्के प्रथम अध्यायके अन्तमें आत्माके सम्बन्धमें कितने विकल्प हैं! इनकी चर्चा भगवान् भाष्यकारने स्वयं की है।

कोई कहते हैं: 'अस्ति आत्मा'—आत्मा है।

'नास्ति आत्मा'—आत्मा नहीं है।

'अस्ति च नास्ति च आत्मा'—आत्मा है भी, नहीं भी है।

'स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति'—कदाचित् आत्मा है, कदाचित् नहीं है।

'नास्ति-नास्ति'—बिलकुल नहीं है आत्मा।

चार्वाक: देह ही आत्मा है।'

कोई कहते हैं: 'इन्द्रिय आत्मा है।'

'प्राण आत्मा है।'

'मन आत्मा है।'

'विज्ञान आत्मा है।'

'आनन्द आत्मा है।

'आत्मा कर्ता होनेसे पाप-पुण्यसे ग्रस्त है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vyaparamsh Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

'आत्मा अकर्ता होनेसे पाप-पुण्यसे ग्रस्त नहीं है।

'आत्मा परिच्छिन्न होनेसे आवागमन वाला है।'

'आत्मा अपरिच्छिन्न होनेसे आवागमन वाला नहीं है।'

'आत्मामें जन्म-मृत्यु,स्वर्ग-नर्क नहीं है, क्योंकि वह अद्वितीय, शुद्ध, अपरिच्छिन्न है।'

इस प्रकार भिन्न-भिन्न महात्माओंने भिन्न-भिन्न रीतिसे आत्माका वर्णन किया है और भिन्न-भिन्न कक्षामें जो भ्रान्तियाँ होती हैं उनके निवारणका प्रयत्न किया है। चार्वाकका भी दर्शनशास्त्रमें उपयोग है।

किसीने कहा : 'हम तो अपने बेटेके लिए, पत्नीके लिए, धनके लिये मर जायँगे।' इसको छठा कोश कहते हैं! यदि किसीको छठे कोशमें अत्यन्त आसक्ति है तो उसे समझाना चाहिए—'तुम देह हो'—पैसा, घर, स्त्री, पुत्रके लिए मत मरो। खा-पीकर अपनेको स्वस्थ रखो। पैसेके लिए मनुष्य इतना काम करता है कि स्वयं बीमार पड़ जाता है। चर्वाककी आवश्यकता है न? पहले दूध-दही खाकर तब काम करो, अपनेको बीमार करके काम मत करो।'

उपनिषदोंमें सब तरहसे विचार किया गया है और सब दर्शनोंका—चार्वाकका भी—बीज उसमें मिलता है।

'न वा अरे प्रेत्य संज्ञा अस्ति।'

शून्य, लोकातीत गमन, अलोकाकाशकी नोक पर जानेका, बढ़ने-घटनेका भी वर्णन है। उसमें वैकुण्ठ-गोलोक, स्वर्ग-नरक, पापी-पुण्यात्मा आदिका वर्णन भी है। कौन-सी बात किस कक्षाके लिए है यह भी समझाया है और अपरिच्छन्न ब्रह्मको स्पर्श करनेवाली बातका भी निरूपण है। जिसकी बुद्धि अपरिच्छिन्न ब्रह्मसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaipanesh Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पहले ही कहीं अटक गयी उसे अनुभवी गुरुके न मिलने तक ज्ञान नहीं होगा। लोग प्रायः चार कोटियोंमें अटक जाते हैं—

अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति इति, नास्ति-नास्ति इति वा पुनः फलस्थिरो वया भावैः आविर्णों एत्य शालिनः।

यजुर्वेद संहितामें मंत्र है—

'तदपश्यत् तदभवत् तदासीत्।'

उसको जाना, देख लिया, वही हो गया। जाना और वही हो गया? हम घड़ा-थापी जानते हैं तो घड़ा-थापी क्यों नहीं हो जाते? ब्रह्मको जानते हैं और ब्रह्म हो जाते हैं। क्यों? तदासीत् = पहलेसे वही था। अतः अनुभवी गुरु चाहिए—

'आचार्यसे जानी हुई विद्या जिज्ञासुको ठीक-ठीक प्राप्त होती है।' यदि आचार्यसे नहीं जानी और लायब्रेरी में स्टडी करते हैं तो? तुमको जितना अर्थ मालूम है उससे अधिक अर्थ किताब पढ़कर कैसे मालूम होगा? एक अक्षर भी ऐसा बताओ जो तुम्हें बिना किसीके बताये मालूम पड़ा हो! पद द्वारा पदार्थका और पदार्थ द्वारा पदका निश्चय औत्पत्तिक है। इसलिए ज्ञान कराना पड़ता है। शब्द और अर्थका सम्बन्ध क्या पुस्तकालयमें बैठकर और चोरी-चोरीसे अपरिच्छिन्न ब्रह्मको जान लेंगे? श्रुतिकी यह घोषणा है—

'आचार्यवान् पुरुषो वेद।'

और

'नावेदवित् मनुते तं बृहन्तम्।'

(जो अवेदवित् है, जो वेदके परम तात्पर्यको नहीं जानता वह परमात्माको नहीं जान सकता।)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipramesh Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

'तं तु उपनिषदं पुरुषं पृच्छामि।'

उपनिषद्-प्रतिपाद्य ईश्वरके बारेमें हम प्रश्न करते हैं। भौतिक-विज्ञान ज्ञानजन्य ज्ञान है, परन्तु आत्माके बारेमें जो ज्ञान पाना है वह इन्द्रियोंसे कैसे जाना जायगा? इसलिए इसका उपदेश 'अवर नर' नहीं कर सकता। जो वरेण्य परमात्माके बारेमें जान चुका है उसकी यह बात मालूम पड़ेगी।

अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति
अणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्॥

श्रीशङ्कराचार्य अनन्य अर्थात्—'अनन्येन अपृथग्दर्शिना आचार्येण प्रतिपाद्यब्रह्मात्मभूतेन प्रोक्त उक्त आत्मनि गतिरनेकधास्ति नास्तीत्यादिलक्षणा चिन्ता गतिरत्रास्मिन् आत्मनि नास्ति न विद्यते सर्वविकल्पगतिप्रत्यस्तमितत्वादात्मनः।

जो अपने आपको ब्रह्म जानता है उसे यदि शंका हो कि 'थोड़ी देरके लिए मैं ब्रह्म हूँ, बादमें नहीं' और वह प्रारब्धवान, छली-कपटी, सुखी-दुःखी, रागी-द्वेषी, पापी-पुण्यात्मा, कर्ता-भोक्ता हो गया तो उसका ब्रह्मज्ञान केवल वाचिक है, अनुभव नहीं है। अनन्य वह है जो अपनेको ब्रह्मसे अन्य जानता ही नहीं। अपृथग्दर्शी आचार्य अपनेको ब्रह्मसे पृथक् नहीं जानता। प्रतिपाद्य ब्रह्म जिसका आत्मा है वह जब इस ब्रह्मज्ञानका उपदेश करता है तब—

'अनेकधास्ति नास्तीत्यादिलक्षणा चिन्ता गतिरत्रास्मिन् आत्मनि नास्ति न विद्यते।

फिर शंका नहीं होगी कि आत्माको सत् कहें, असत् कहें या

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सदसत् कहें। कर्ता कहें कि अकर्ता। भोक्ता कहें कि अभोक्ता। शुद्ध कहें कि अशुद्ध। शोकान्तर्गामी संसारी कहें या असंसारी, परिच्छिन्न कहें कि अपरिच्छिन्न, क्या कहें, क्या जानें, किस रूपमें समझें और अनुभव करें? जब छाती ठोंककर 'अहं ब्रह्मास्मि, अययात्मा ब्रह्म' इस प्रकार अनुभवपूर्वक बोलनेवाला आचार्य मिलेगा तो वह तुम्हें अनुभव करा देगा। तुम्हारे मनमें कोई विकल्प नहीं रहेगा।

सर्वविकल्पगतिप्रत्यस्तमितत्वादात्मनः।

अपने आत्माके सम्बन्धमें किसी प्रकारका विकल्प नहीं है। वह निर्विकल्प है— **निर्विकल्पत्वात् आत्मनः।**

अपने होनेके बारेमें क्या कोई विकल्प है? सुषुप्तिमें क्या हम कर्ता रहते हैं? सारा कर्तापन क्या जाग्रत-स्वप्नमें नहीं छूट जाता है? क्या शुद्ध साक्षी कहीं भोक्ता होता है? क्या देश-काल-वस्तुका साक्षी कहीं परिच्छिन्न होता है? जब तत्त्वज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ, श्रोत्रिय, शान्तिपरायण हुए आत्माका उपदेश करता है तो सारे विकल्प शान्त हो जाते हैं। बोलनेवाला वक्ता, देखनेवाला दृष्टा, सुननेवाला श्रोता, मनन करनेवाला मन्ता ही अपना आत्मा है, दूसरा नहीं।

आदमी दोषसे दुष्ट हो सकता है, बतानेमें भूल, भ्रम या प्रमाद कर सकता है। उसके मनमें विप्रलिप्सा माने ठगनेकी इच्छा हो सकती है और कर्णापाटव भी हो सकता है। वह वस्तुको ग्रहण न करे तो क्या हो? मामूली आदमी आकर बता दे कि तुम शुद्ध हो कि अशुद्ध हो तो कैसे उसे मान लोगे? आप वृन्दावन चले जायँ और किसीसे पूछें कि 'मैं कौन हूँ?' भले आप दाढ़ी-मूँछ-वाले हों, अपनेको पुरुष कहते हों, वृन्दावनके लोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vamanit Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

बतावेंगे कि—'आप स्त्री हैं!' ध्यान करो अपने मनमें—'मैं सोलह वर्षकी सुकुमारी कुमारी हूँ। साड़ी पहने, माँग काढ़े, चिकनी-चुपड़ी होकर श्यामसुन्दरसे मिलने जा रही हूँ। यह तुम्हारा असली स्वरूप है और तुम भूल गये हो?'

अयोध्यामें चले जाओ और पूछो: 'मेरा क्या स्वरूप है?'। वे पूछेंगे: 'तुम रामचन्द्रजीके साथ हो या हनुमानजीके साथ? हनुमानजीके साथ हो तो छोटे बन्दर हो!'

काशीमें जाओ तो बतावेंगे—'तुम शंकरके गण हो!'

ये अपने ऊपर नाम-रूपका अध्यारोप करते हैं। इस समूचे नाम-रूपका तिरस्कार करके न तुम सखी हो, न सखा, न तुम दास हो, न सदास, न अणु हो, न विशाल! सम्पूर्ण नामरूपोंका निषेध करके तुम्हारे अग्निरूपको बतानेवाला कहाँ मिलेगा?

एक आदमी दिन-रात तुम्हारे दिलमें दूसरोंकी चर्चा करके उनके लिए राग-द्वेष भरता है तो वह तुम्हें परमात्माका ज्ञान नहीं करा सकता। यदि कोई महात्मा तुम्हारे सामने किसीकी तारीफ करे कि 'वह सदाचारी, गुणवान, पुण्यात्मा है,' फिर कहे कि 'वह पापी-दुरात्मा है' और कथा करते समय कहे—'आत्मा नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त है' तो आप कैसे मान सकते हो कि इस महात्माको आत्माका ज्ञान है।

सब शरीरोंमें, सब जगह और सब समय आत्माका वास्तविक स्वरूप नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त ही है। परन्तु जिसकी दृष्टि गुण-दोष पर, परिच्छिन्न पर लगी हुई है वह जीवात्माको देख रहा है, ईश्वरको नहीं!

'अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajrayana Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कोई पूछे कि 'कहाँ जायँ 'वर नर' ढूँढने ? अपने आप ही कोई वर आजाय !'

ट्रेनमें कभी-कभी हम जाते हैं और रातको दो-तीन बजे उतरना होता है तब गार्डसे कह देते हैं—'हमें जगा देना।' नींद अपने आप ही टूट जायगी ऐसा कोई तर्क करे तो क्या सोनेवाला खुद नींद तोड़नेका प्रयास करेगा ? नींदमें होगा वह, नींद तोड़नेका प्रयत्न कैसे करेगा ? अज्ञान-निद्रामें तुम शयन कर रहे हो, उसमें 'यह मेरा-तेरा, मैं-तू' करके आध्यात्मिक शान्तिके मार्ग पर नहीं चल सकते। आध्यात्मिक शान्ति अभिनयकी वस्तु नहीं है।

शास्त्रोंने यह निर्णय किया है कि यदि किसीको बताना हो कि 'मैं नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त हूँ' तो बोलोगे—शुद्धोऽहम्, बुद्धोऽहम्।' इसको शास्त्रमें बन्ध कहते हैं। शान्तरस दृश्य नहीं है, वह निर्विकार है। शान्त रसको हाथ पैर-ठुड्ढी हिलाकर या आँख मटकाकर या नाक फड़काकर नहीं दिखाया जा सकता। अपनी नींद हम खुद नहीं तोड़ सकते। इसे तोड़नेवाला दूसरा चाहिए।

'अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति।' जबतक अन्य प्रोक्ता नहीं होगा, तुमको जगानेवाला कोई गुरु नहीं होगा, तुम अपनेको पापी-पुण्यात्मा मानकर सुखी-दुःखी, कर्ता-भोक्ता हो रहे हो, तुमको जबतक कोई यह न कहे कि—'तुम निष्पाप हो, निष्कर्म हो, राग-द्वेषसे मुक्त हो,' तबतक तुम अपनेको मुक्त अनुभव नहीं करोगे।

जबतक तुम्हें कोई न बतावे कि 'तुम नन्हें-मुन्ने नहीं, परमात्माके स्वरूप हो, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त हो, जो सच्चिदानन्द ब्रह्म है वही तुम हो।' तबतक अपने स्वरूपका पता नहीं चलेगा, उसमें गति-प्रवेश नहीं होगा !

विन्दुमें सिन्धु समान सुनी कोई अचरज ना करे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhman Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

भगवान् शङ्कराचार्यने इसके चार अर्थ किये हैं—

(१) यदि अभेददर्शी सद्‌गुरु मिल जाय और वह उपदेश करे कि तुम्हारा जो स्वरूप है वह चिन्मात्र साक्षी-स्वरूप है, वह निर्विकार है, वह न कर्ता-भोक्ता है, न परिच्छिन्न आने-जानेवाला संसारी है तो अपने आप सारी चिन्ता मिट जाती है कि मैं शुद्ध हूँ कि अशुद्ध, कर्ता हूँ कि अकर्ता? क्योंकि आत्मामें—अपने बारेमें क्या विकल्प है?

(२) यदि यह बात बिलकुल समझा दी जाय कि आत्माके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं है तो द्वैतका भ्रम मिट जाय, क्योंकि जो किसीका प्रकाशक होता है वह प्रकाशसे भिन्न नहीं होता। अधिष्ठानसे अध्यस्त भिन्न नहीं होता और यह चीज जिसको मालूम पड़ती है वह उससे भिन्न नहीं होती। क्या लीला है कि आदमी गम्भीरतासे विचार ही नहीं करता है।

यह देखो, हमको लगता है—'घड़ी हमको मालूम पड़ती है। मालूम पड़ना नामकी कोई चीज है? घड़ी बुद्धिमें या दिलमें है कि बाहर है? आँख बन्द करो तो घड़ी मनमें है या बाहर? कोई भी चीज आपको तब मालूम पड़ती है जब वह आपके भीतर है, चाहे आँख बन्द हो या खुली! जिस देशमें कल्पना है, वहीं 'बाहर है, वही घड़ी है और आँख बन्द है यह प्रतीति भी वहीं है, अर्थात् देश-काल-वस्तु तीनों एक ही प्रलयमें हैं। इस प्रतीतिसे अवच्छिन्न दृष्टासे पृथक् प्रतीति नहीं है। अर्थात् तुमसे अलग जो मालूम पड़ता है वह तुमसे अलग नहीं है। फिर भी यह ख्याल रहा कि हम शरीर हैं। जिस अन्तःकरणमें साढ़े तीन हाथ देश-वाला शरीर, अमुक उम्र और अमुक वजनवाला शरीर मालूम पड़ता है उस अन्तःकरणसे अवच्छिन्न चैतन्यसे पृथक् देश-काल-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection Vijaymani Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

वस्तुसे अद्वितीय, अपरिच्छिन्न ब्रह्म स्वयं तुम हो।' यह बात उपदेश करने पर कि 'आत्मा अनन्य है,' सिद्ध हुई। यदि फिर भी मालूम न हो सके तो अन्वय-व्यतिरेककी रीतिसे विचार कर लो। अथवा अन्यस्य अभावात्—दूसरा-अन्य पदार्थ कोई है ही नहीं।

(३) जब आत्माका ज्ञान हो जाता है तब अभिमानकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। संसारी मनुष्य पैसेका ज्ञान रखता है और समझता है—'हम इतने बड़े हैं।' कंकड़-पत्थर रखकर, थोड़ा हाथ जोड़कर, सिर-झुकाकर बात करने लगे तो फिर उनको और बात सूझती ही नहीं। 'हम इतने निरभिमानी, इतने विनयी' ऐसा समझकर डबल अभिमानसे ग्रस्त हो जाते हैं। इस प्रकार द्रव्य, विनय और लोकप्रशंसाके त्रिविध अभिमानको समझना मुश्किल है। वेदान्तज्ञानके बिना अभिमानकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं हो सकती। मोक्ष फल नहीं है, अपना स्वरूप है। मोक्ष पानेके लिए कहीं जाना नहीं है।

'जो कबिरा काशी मरै तो रामहि कौन निहोरा?' जब काशी जाना पड़ा, गंगास्नान करना पड़ा, हाथ जोड़कर मुक्तिके लिए प्रार्थना करनी पड़ी और काशीमें मरकर मुक्ति पायी तो उसमें रामने क्या कृपा की? ऐसी मुक्ति जो कृपा करके देनेवाले हैं, वे तो अपनी दी हुई मुक्ति वापस भी ले सकते हैं। बहुत लोग ऐसे होते हैं जो दान देकर वापस माँग लेते हैं।

एक आदमीने एक ब्राह्मणको गोदान किया परन्तु ब्राह्मणके पास उसके लिए भूसा-चारा ही नहीं था। गोदान करनेवाला ब्राह्मणके पास गया और बोला: 'तुम तो गायको ले आये पर खिलाते नहीं।'

ब्राह्मण: 'इसके लिए तो यजमानको बन्दोवस्त करना चाहिए?'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

यजमान : 'तुम गायको ठीक नहीं रखते।' ऐसा बहाना करके गायको वापस अपने घर ले आया। ये संसारी लोग देते-लेते कुछ नहीं। देते हैं तो अभिमान बढ़ता है। जिनके पास तालाब भरा है वे पाँच सौ रुपया दान करके अखबारमें छपवाते हैं। उनका पाँच सौ एक गरीबके पाँच आनेके तुल्य भी नहीं है और 'हम बड़े दाता' का अभिमान जोड़ लेते हैं।

हमें ऐसे कई दाता लोग मिले हैं? पहले दिन कहते हैं— 'हमारा नाम मत बताना।' दूसरे दिन कहते हैं—'ऐसा है महाराज ...।' तीसरे दिन अपने आप लोगोंको बताते हैं। पाँचवें दिन अखबारमें छप जाता है। यह व्यक्तित्वकी—अहंकारकी पूजा है। परब्रह्म परमात्मासे अपनेको एक करना और व्यक्तित्वकी पूजा करना दोनों बात एक साथ नहीं बन सकती। भक्तिकी पुस्तक कैसे पढ़ोगे? सेठ जयदयालजी जब—

> वसुदेवसुतं देवं कंस-चाणूरमर्दनम्।
> देवकी-परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

श्लोक बोलते तो उसमें जो भाव है वह अपने मनमें आता जाय ऐसे बोलते। एक महात्मा कहते—'जितनी देर 'शिवोऽहम्' बोलो, तुम्हारी छाती थोड़ी ऊँची होती जाय।' यह तो ऐसी चीज है जिसमें न आना-जाना, न विकार, न नकार, न धिक्कार। इसमें संसारकी गति नहीं। आत्मज्ञान और मोक्ष एक ही चीज है।

(४) आचार्यश्रीने चौथा अर्थ किया—

'प्रोच्यमानब्रह्मात्मभूतेनाचार्येण अनन्यतया प्रोक्त आत्मनि।'

जब अपनेको ब्रह्म जाननेवाला सद्गुरु शिष्यको बताता है कि 'तू ब्रह्म है' तो उसको ज्ञान होगा ही होगा! उसमें अज्ञानपना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaimanika Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

बना रहे इसका कोई कारण नहीं है। जैसे मैंने जाना—'मैं ब्रह्म हूँ' वैसे शिष्य भी जानेगा कि 'मैं ब्रह्म हूँ।'

'भवत्येवावगतिस्तद्विषया श्रोतुस्तदस्म्यहमित्याचार्यस्येवेत्यर्थः।

गुरुने जैसा जाना है वैसा शिष्य भी जानेगा। इस प्रकार श्रीशङ्कराचार्यने चार अर्थ बताये।

किसी छोटी चीजमें कोई तुम्हारा 'अहं' करावे कहे 'बाल-की नोकके बराबर तुम्हारा स्वरूप है।' कोई कहते हैं : 'एक साल पैदा हुए और एक साल मरे। एक इंचके हजारवें हिस्सेका तुम्हारा स्वरूप चिन्मात्र=माने चिन्गारी है।'

कोई कहे : 'वेद-वेदान्त मत मानो। गुरु-शास्त्र मत मानो' और तुम्हारे हृदयमें अश्रद्धा उत्पन्न कर दे तो तुम्हारे मार्ग पर अवरोध हो गया। तत्त्वमस्यादि महावाक्यका प्रतिपादन करने-वाला जो वेदभाग=उपनिषद् विद्या है, वह हृदयमें ब्रह्मज्ञानका उदय कराती है। यदि श्रद्धा ही कट गयी तो अपनेको खुद मानते हो क्या? भगवान्‌के नामजपसे, सत्संग-भजनसे, चारों धामकी यात्रासे कोई पतित मनुष्यको पतित भावसे मुक्त करने आया, उसमें विश्वास न रखकर अभिमान करके मान लिया कि—'मैं तो पतित ही हूँ!' तो, देखो इसमे बड़ा भारी ढोंग है। तुम खुद नहीं समझते तो दूसरेके समझानेसे समझ लो। तुम सड़क पर चल रहे हो और कोई तुम्हें कहे—'हे पतित!' तो तुम्हें क्रोध आवेगा या नहीं?

ये लोग जो अपनेको पापी-दीन-हीन-पतित कहते हैं वे सब लोग उन्हें अच्छा मानें इसलिए कहते हैं। गुरु सीधे ही कहते है : 'तुम पापी-दीन-हीन नहीं हो, तुम ब्रह्म हो!' तुम खुद हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vyapak Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अपनेको अच्छा कहोगे तो कोई तुम्हें शेर क्यों कहेगा ? जो भगवान्‌में है वह तुममें है, तुम भगवान्‌के अंश हो। भगवान् देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न है तो तुम भी उसी स्थितिमें हो ! फिर भी अपनेको जीव-संसारी परिच्छिन्न मान बैठते हो ?

अणीयान् अणुप्रमाणादपि : अणु-प्रमाणसे भी अणीयान्-अत्यन्त सूक्ष्मतम यह आत्मा है।

इस बारेमें तर्क-वितर्क करोगे, अपनी बुद्धि लगाओगे तो बाहरी वस्तुओंका सम्बन्ध अवश्य जोड़ दोगे, क्यों ? यह पूछने पर कि 'तुम कौन हो ?' तो बताओगे कि 'कलकत्ते-बम्बईमें रहनेवाले हो। यह नहीं, तुम कौन हो सो बताओ। तुम्हारा प्रान्त, जाति, भाषा नहीं पूछते। इसमें तो धरतीका सम्बन्ध है। जाति तो मनुष्य, गाय, भैंस, बकरी है। इसके भीतर जो है, उसकी ओर नजर जाने दो, जिसके होनेसे सब मालूम पड़ता है। वह न हो तो कुछ भी मालूम न पड़े। जब तुम तर्क-वितर्क या अपनी अकलसे अपने-को बताओगे तब जिसका संस्कार मनमें बैठा है वह बताओगे कि 'हम औरत हैं, मर्द हैं। कैसे ? 'नाकके नीचे बाल उगते हैं तो मर्द हैं, नहीं तो औरत हैं !' यही तुम्हारी पहचान है ? पाश्चात्य देशमें ऐसा भेद वे न जानते हैं, न मानते हैं !

एक दिन दो व्यक्ति साथ-साथ जा रहे थे। एकने दूसरेसे पूछा : 'आपका पुत्र बड़ा योग्य है !'

उसने कहा : 'यह मेरी पुत्री है, पुत्र नहीं'।

'आप बड़े योग्य पिता हैं !'

'नहीं, मैं उसका पिता नहीं, उसकी माता हूँ।' शक्ल-सूरतसे तो माता-पिताका पता भी नहीं चलता और अभिमान लेकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vipramesh Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कहते हैं : 'हम अमुक माता-पिताके पुत्र-पुत्री हैं !' अपनेको ढूंढो कि हम कौन हैं ? हमने मकान-मन्दिर-धर्मशालाएँ बनवायीं, दान किया, अस्पताल खुलवाया !' पर तुमने दूसरोंको ठगा है सो बताया है ? सूची बना दो, दस-पाँचकी याद चाहे न आवे, हजार-दो-हजारकी तो जरूर याद आवेगी ! धोखा दिया है, दूसरेकी जेब काटकर धर्मात्मा बने हो उसकी याद थोड़े ही आवेगी ! तो इस चक्करमें नहीं पड़ना चाहिए। जो सच है, तत्त्व है—असलियत है, जिस पर स्थूल द्रव्यका असर नहीं, कर्म, वासना, अभिमानका असर नहीं, समाधि-विक्षेप जिसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते, स्वर्ग-नरक, धरती-गोलोक दोनोंमें जो एक-सरीखा है, वह अपना आत्मा है। उसे न कहीं आना-जाना है, न समाधि-विक्षेप है, न चेला बनना पड़े, न ढेला सहना पड़े ।

बिना अनुभवीके केवल अपने संसारके संस्कारसे संस्कृत बुद्धि-द्वारा जाननेका प्रयत्न विफल होगा। श्रीशंकराचार्य—स्वबुद्ध्या-श्यूहेन केवलेन तर्केण कुछ-न-कुछ दुनियाकी पंख उसमें लगा दोगे। 'नेति-नेति' करके सम्पूर्ण अनात्माका निषेध आत्मज्ञानकी प्रक्रियामें आवश्यक है। ऑपरेशन अपने हाथसे अच्छा नहीं होता दूसरे डॉक्टरसे करवाना चाहिए। अपने शरीरके मोहके कारण थोड़ा छूट जायगा, थोड़ी गंदगी छूट जायगी। यह तत्त्वज्ञान ऑपरेशन है, जो दुनियाकी ओरसे जड़—बेहोश कर देता है अर्थात् दुनियाकी ओरका खयाल छोड़ देनेवाला ही परमार्थकी दिशामें आगे बढ़ सकता है। एक भी वृत्ति—गंदगी भीतर न रह जाय, उसे काटकर फेंक देना। जहाँ कहीं अनात्माका सम्बन्ध है—'यह मैं' 'मेरा'—इसे सम्पूर्ण रूपसे निकाल देनेमें समर्थ होकर जब तुम कहोगे कि 'मैं मुक्त हूँ तो गुरुजी कहेंगे : 'तू मूर्ख है' और जब तुम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri / Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कहोगे कि 'मैं बद्ध हूँ' तो गुरुजी कहेंगे–'तू महामूर्ख है।' तुम अपने आप बद्ध होनेकी कल्पना ढीली और मुक्त होनेकी कल्पना प्रबल कर लो, ज्यादा-से-ज्यादा आप इतना ही कर सकते हो। बन्धन और मोक्ष दोनों कल्पित हैं। तुम बन्धन-मोक्षसे न्यारे हो, यह बात केवल तर्कसे नहीं जानी जा सकती; क्योंकि आत्मा अतिशय अणुतर है और तर्ककी निष्ठा कहीं है नहीं। एक आदमो आकर कहेगा—'इससे सूक्ष्म यह है'। वैसे दूसरा व्यक्ति, तीसरा व्यक्ति भिन्न-भिन्न बतावेगा। सूक्ष्मताओंकी सरदार स्वयं प्रकाशक, सर्वाधिष्ठान आत्मवस्तु है यह दूसरा कोई कैसे बतावेगा ?

किसी मेहमानको उसकी रुचि देखकर खिलाना संभव है। एक भले आदमीकी बात सुनाता हूँ। मेरे संन्यासी होनेके बाद अबसे बीस वर्ष पूर्वका यह प्रसंग है। संस्कृत श्लोकके साथ श्रीमद्भागवतका दुबारा प्रकाशन हुआ। पहले तो भागवतांकके रूपमें मात्र हिन्दीमें छपा था। गीताप्रेसवालोंने यह निश्चय किया कि 'हम श्लोकके साथ छापेंगे। तब हम संन्यास लेनेके बाद भी गीताप्रेसमें गये। दादा भी मेरे साथ थे।

वहाँ हमें मालूम हुआ कि हमें डायविटी है, तो भाईजी (श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार) ने हमको सलाह दी : 'तुम्हे चावल बिलकुल नहीं खाना चाहिए। हमने कहा : 'अच्छा भाई जी, ठहरा तो तुम्हारे घरमें हूँ। पाँच-सात घरमें तो खाता नहीं हूँ, तुम्हारे घरमें ही तो खायेंगे। आपकी पत्नी बनायेगी रोटी और हम खायेंगे, चावल नहीं खायेंगे।' बोले : 'ना, ना, हमारे घर रहोगे तबतक चावल खिलावेंगे, बादमें नहीं खाना।' हम बड़े आदरसे इस बातका स्मरण करते हैं। हम उनके अतिथि हो गये न ? वे अपने घरमें हमारा चावल नहीं छुड़ाना चाहते थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha / Sarayu Trust Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

घीके लिए चाहे कितना मना करें, वे बोलते : सावित्रीकी माँ मानती नहीं है। यह तो दृष्टान्त है।

इसका दार्ष्टान्त क्या ? जब कोई जिज्ञासु हमारे यहाँ आते हैं और हम देखते हैं कि इनके मनमें तो यहाँ रुचि है, खिचाव है, इस बातकी पकड़ है, इसको तो छोड़ नहीं सकते तो हम उस बातका निषेध नहीं करते।

पंचदशीमें दृष्टांत है : 'एक राजा रोज वेदान्त सुननेको आवे, परन्तु उसे ज्ञान न हो।' स्वामीजी महाराजने सोचा कि 'इसको ज्ञान क्यों नहीं होता ?

विद्यारण्य स्वामीने पूछा : राजा जब तुम एकन्तमें बैठते हो तब तुम्हें किसकी याद आती है ? किसके चिन्तनमें मजा आता है।'

राजा : 'रानीका चिन्तन होता है।'

विद्यारण्य स्वामी : 'अच्छा, तो तुम ऐसा चिन्तन करो कि 'रानी ब्रह्म है।'

राजा : 'महाराज, रानी ब्रह्म कैसे होगी ?

स्वामीजी : 'तुम ध्यान तो करो !'

राजा : 'नहीं हम ध्यान नहीं करेंगे, रानी ब्रह्म नहीं हो सकती।'

स्वामीजी : 'रानीका हड्डी-मांस-चामका शरीर है वह ब्रह्म नहीं हो सकती, परन्तु उसमें जो शक्ति है वह तो ब्रह्म है न ?'

राजा : 'अच्छा महाराज !'

दूसरे दिन राजा ध्यान करके आया और बोला : ' महाराज, शक्ति तो जड़ होती है।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वामीजी : 'शक्ति जड़ है तो उसमें जो संकल्प है, प्रेम है वह तो ब्रह्म है न ?'

तीसरे दिन आकर राजाने बताया—'नहीं महाराज, प्रेम तो सोते समय नहीं रहता !'

स्वामीजी : 'प्रेमी है वह ब्रह्म है।'

राजा : 'प्रेमी भी कैसे ब्रह्म होगा ? प्रेमी पहले था नहीं और बादमें रहेगा नहीं !'

स्वामीजी : 'अरे प्रेमी नहीं, शान्ति है उसमें वह ब्रह्म है !'

राजा : 'शान्ति भी ब्रह्म नहीं।'

स्वामीजी : 'अरे, उसमें साक्षी है सो ब्रह्म है !'

राजा जब रानीके शरीरमें साक्षी है यह चिन्तन करने लगा तो स्वामीजीने बताया : 'ऐसे ही तेरे शरीरमें भी देख, हड्डी-मांस है, विष्ठा है, प्रेमी शांति है, साक्षी है। तू शान्तिका भी साक्षी है। जो साक्षी इधर है वही उधर है; साक्षी साक्षीमें भेद नहीं है।'

जहाँ मनुष्यकी रुचि—आसक्ति होती है, वहाँ वह फँसा हुआ है। वहाँ प्रवेश करके या अपने शरीरकी तहमें प्रवेश करके देखे कि यह परब्रह्म परमात्मा है। वेदान्त-विद्या यह बताती है।

अणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ।

अणु प्रमाणसे भी यह अणीयान् है। इसे तर्कके द्वारा नहीं जान सकते। तर्कमें अपनी वासना लग जाती है। यह अतर्क्य है। वासनाकी परतको हटाकर अपने आपको देखना होता है। इसे न स्वयं देख सकते न अवर संसारासक्त पुरुष दिखा सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Vishwas Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

९. तर्कसे ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति नहीं होती

संगति :

यमराज नचिकेतासे कहते हैं : 'केवल तर्क-वितर्क करनेसे आत्म-ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती।' बाहर जो वस्तु मालूम पड़ती है वह बाहरी यन्त्रसे देखी जाती है। बाहर-भीतर जिससे मालूम पड़ता है, वह न बाहरी यन्त्रसे मालूम पड़ता है न भीतरी यन्त्रसे। यह आत्मा न बाहर है, न भीतर। चामके बाहर हवा है, सूर्यकी रोशनी है, भीतर हड्डी-मांस, इन्द्रियाँ, मन काम कर रहे हैं। बाहर आँखसे दूरकी चीज नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीखे तो दूरबीन और महीन चीजोंके लिये खुर्दबीनका प्रयोग करते हैं। 'नचिकेता तर्क-वितर्कसे मुक्त है। नचिकेताकी सत्य-धारणाकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं : 'हमें तेरे समान प्रश्नकर्ता प्राप्त हो।'

> नैषा तर्केण मतिरापनेया
> प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।
> यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि
> त्वादृङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥ ९ ॥

हे प्रियतम! सम्यक् ज्ञानके लिये शुष्क तार्किकसे भिन्न शास्त्रज्ञ आचार्यद्वारा कही हुई यह बुद्धि, जिसे कि तू प्राप्त हुआ है, तर्कद्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है। अहा! तू बड़ा ही सत्य धारणावाला है। हे नचिकेत! हमें तेरे समान प्रश्न करनेवाला प्राप्त हो ॥ ९ ॥

भीतर कोई चीज हो और न दीखे तो अन्वयव्यतिरेककी रीतिसे विचार कर लो या कर्म, उपासना, योगके द्वारा, अन्तःशुद्धि करो। शीशे पर लगी मैल साफ करनेसे प्रतिबिम्ब साफ दीखने लगता है, इसी तरह अन्तःकरणको शुद्ध करनेसे आत्मज्ञान समझमें आता है। बाहर-भीतर दोनोंको दिखानेवाला अपना स्वरूप यन्त्र या इन्द्रियोंका विषय तो नहीं है, मन-बुद्धिका विषय भी नहीं है और स्वयं अपना विषय भी नहीं है। बिना किसी औजारके हम सुषुप्ति और समाधिको जानते हैं एवं अपने आपको भी जानते हैं परन्तु सुषुप्ति और समाधि साक्षीभास्य हैं। ऐसी भास्यता साक्षीमें नहीं है। साक्षी न अनुभव्य है, न प्रमेय, न विज्ञेय, न अनुभाव्य, न भास्य वह तो स्वयं है। स्वयंता इन्द्रिय, तर्क-वितर्क, यन्त्र, बुद्धिके परे है। जब सामनेवाला कहेगा कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

'अरे वह तो तुम खुद ही हो जिसे तुम ढूँढ़ रहे हो ! तब परमात्माका बोध होगा। 'वह स्वयं अनुभवस्वरूप है' पंचदशीमें विद्यारण्य-स्वामीने कहा—

'स्वयमेवानुभूतित्वात् विद्यते नानुभाव्यता।'

जो अनुभवसे देखा जाता है सो नहीं, जो देख रहा है वह आत्मा है।

नैषा तर्केण मतिरापनेया।

प्रत्यक्-चैतन्य अपने आपको ब्रह्म जानना तर्कसिद्ध नहीं है। क्योंकि—

अचिन्त्याः खलु ये भावाः न तांस्तर्केषु योजयेत्।

जो भाव चिन्त्य नहीं है उसे तर्ककी कसौटी पर कसना नहीं चाहिए। आत्मामें तो तर्क कभी होता है, कभी नहीं होता।

वाक्यपदीयकार भर्तृहरि महावैयाकरण बोलते हैं—'बड़े-बड़े कुशल अनुमानकर्ता बड़े प्रयत्नसे किसी वस्तुके बारेमें अनुमान करते हैं; परन्तु जब उनसे भी बड़े अनुमान करनेवाले आते हैं तब पहलेके अनुमानका खंडन कर नये अनुमानकी स्थापना कर देते हैं। अमुक अनुमानसे अमुक चीज मालूम पड़ रही है, परन्तु जब और नये यन्त्रका आविष्कार हुआ तो वह चीज कुछ और ही देखनेमें आती है। समूचे वैज्ञानिकोंकी पचीस वर्ष पहले चन्द्रके बारेमें, सौ वर्ष पहले धरतीके बारेमें, दो हजार वर्ष पहले सूर्यके बारेमें क्या धारणा थी? नये-नये यन्त्र, आनुमानिक, युक्तियाँ और वैज्ञानिक आते हैं, दृश्य पदार्थोंके बारेमें विज्ञान निकालते हैं तब नये यन्त्र पुराने यन्त्रोंके विज्ञानको व्यर्थ कर देते हैं।

ये सारे भेद-विभेद कहाँ मालूम पड़ते हैं? ये दृश्य पदार्थमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होते हैं। चाहे विज्ञान-तर्क-अनुमानकी कितनी भी उन्नति हो, वह दृश्य और उसे ग्रहण करनेवाले बाह्य और आन्तर यन्त्रके सम्बन्धमें होंगे। जो स्वयंप्रकाश द्रष्टा है उसके सम्बन्धमें विज्ञान कोई उन्नति नहीं करता।

इसका एक और गुण बताते हैं—भौतिक दृश्य पदार्थके सम्बन्धमें वैज्ञानिक ज्यों-ज्यों उन्नति करता जायगा त्यों-त्यों उसके ज्ञानका विकास होता जायगा। लेकिन दृङ्मात्र स्वयंप्रकाश आत्मा ब्रह्म है, उसके बारेमें भविष्यमें वैज्ञानिक उन्नति द्वारा ज्ञानका विकास नहीं होगा। उसके लिए तो प्राचीनतम-अन्ततम जो वैदिक-औपनिषद ज्ञान है वही यथार्थ होगा। जब आत्माकी बात समझनी हो तो यों कहेंगे कि सृष्टिके आदितम ग्रन्थ ऋग्वेदमें जो कि सबके मूलमें विराजमान अपौरुषेय ज्ञान है, यह बात लिखी हुई है; इसलिए आत्माका स्वरूप ऐसा है और जब दवाके बारेमें, रॉकेट और अणुबमके बारेमें बताना होगा तो कहना होगा कि नवीनतम विज्ञानसे यह बात सिद्ध हुई है।

यह वृत्ति, संकल्प, भाव कहाँसे उठता है? इसकी जड़ खोजनेके लिए वस्तुके मूलमें जाना पड़ेगा, और भूत-भौतिकके बारेमें विकासकी अवधि पर जाना होगा।

अनुमानकी गति बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग पदार्थमें होती है परन्तु आत्माको अन्तरङ्ग नहीं बोलते हैं अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग, पहले-पीछे, यह-वह, देश-काल-पदार्थमें होता है। ब्रह्मसूत्रमें तर्काप्रतिष्ठानाधिकरणमें लिखा है—तर्ककी प्रतिष्ठा नहीं है। किसी तर्कके द्वारा किसी एक निश्चय पर पहुँचना शक्य नहीं है।

यदि सरकार मामलों-मुकदमोंके बारेमें वकील पर छोड़ दे कि वे जो तर्क-वितर्कसे सिद्ध कर दें, उसे न्यायाधीश मान लें तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by RajGuru Math Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कानूनकी पोथी नहीं बनायी जाती। फैसला देनेमें संविधानकी आवश्यकता नहीं मानी जाय तो प्रत्येक न्यायाधीशका फैसला अलग हो। प्रत्येक वैरिस्टरकी बहस अलग हो जायगी। इसके लिए एक आधारभूत सिद्धान्त स्वीकार करना पड़ता है। धर्म और ब्रह्मके बारेमें तर्क बिलकुल नहीं चलता। धर्मके विषयमें मनुस्मृतिमें लिखा है—

न हि सर्वं विधीयते

दुनियाकी एक-एक बातके बारेमें कानून और इतिहास बनाना सम्भव नहीं, कई बातें छूट जाती हैं। मनुष्यके जीवनमें जाति-सम्प्रदाय-राष्ट्रमें ऐसी-ऐसी बातें आती हैं कि यदि कोई सब बातें पोथीमें-से ही निकालना चाहे तो नहीं चल सकता। ऐसे स्थान पर क्या करना चाहिए? स्पष्ट लिखा है—

यं शिष्टाः ब्राह्मणाः ब्रूयुः धर्म इति निश्चयः।

'जिन धर्मोंका प्रत्यक्ष वर्णन शास्त्रोंमें नहीं मिलता है उसके बारेमें जो निर्लोभ, आप्तकाम, समदर्शी, विचारशील, शीलवान, शिष्ट हों ऐसे एक नहीं अनेक पुरुषोंकी परिषद बनाकर निर्णय करें—'ऐसा भी वर्णन है। तर्कका कोई स्थान धर्ममें नहीं है।

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मः वेद नेतरः॥

जो ऋषिप्रोक्त धर्मानुशासन है उसके लिए तर्क तो करना पर वेदशास्त्रके अविरुद्ध तर्क करना, प्रतिकूल तर्क नहीं करना। विरोध नहीं चाहिए, अविरोध ही हो यह आवश्यक नहीं है। जो वेदशास्त्रके अविरुद्ध तर्क करता है वह धर्मके रहस्यको समझता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वेदान्तमें तर्क-वितर्क, युक्ति-प्रयुक्ति कहाँ तक उचित है ?—

श्रुत्युनुगृहीतस्य तर्कः परिगृहीतमेव ।

श्रुति जिस तर्ककी पीठ पर हाथ रखती है, अनुग्रह करती है—'हाँ बेटा, तुम बहुत अच्छे,' उस तर्कको अर्थात् श्रुतिके अनुकूल तर्कको स्वीकार करना चाहिए ।

आगमोपपत्तिः करतलामलकवत् तत्त्वं समर्पयतः ।

माण्डूक्य-उपनिषद्के भाष्यमें श्रीशंकराचार्यने कहा : 'आगम और उत्पत्ति, शास्त्र और बुद्धि दोनोंके द्वारा आगे बढ़ना चाहिए। केवल शुष्क तर्क नहीं होना चाहिए, यह तो काटनेकी बात है। केवल आगम केवल श्रद्धाकी बात है, यह तो अन्धेरे घरमें ढेला फेंकनेकी बात है !

मेरी माँ काशीमें एक बार बीमार थीं। मैं उस समय पन्द्रह-सोलह वर्षका था। मैं काशीमें पढ़ता था। दवाके लिए डॉक्टरके पास जाता। बारम्बार दवाके लिए जाना पड़ता। महीनाभर हो-गया, माँ-का स्वास्थ्य अच्छा न हो। डॉक्टरका नाम था सेठ अटलविहारी ! डॉक्टर बड़ा अच्छा था। मैंने पूछा—'हर तीसरे-चौथे दिन तुम दवा बदलते हो, फायदा कुछ नहीं होता ?'

डॉक्टर—'पंडितजी, जैसे अन्धेरे घरमें चूहा हो और कोई बाहरसे भीतर उस पर ढेला फेंककर निशाना लगाना चाहे, ऐसे शरीरके भीतर जो रोग है, वह दीखता तो है नहीं ! हम बाहरी लक्षणसे अनुमान लगाते हैं और दवा देते हैं। तीन-चार दिनमें उसका असर नहीं हुआ तो दूसरा अनुमान लगाकर दूसरी दवा देते हैं। वह भी लाभप्रद न हुई तो तीसरी। हमारा सारा काम अनुमान पर चलता है।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

यह सन् २५-२६ की बात है तब इतने यन्त्रोंका और दवाओंका आविष्कार नहीं हुआ था। लेकिन वे कहते थे—'अंधेरे घरमें ढेला फेंकते हैं। हमारा निशाना नहीं बैठा।' जो लोग केवल तर्कके द्वारा आत्मा और ईश्वरके बारेमें सोचते-अनुमान लगाते हैं वे भी अंधेरे घरमें ढेला फेंकते हैं। ईश्वरके बारेमें कोई ज्ञान—अनुमान नहीं। जब उनकी वासनाके अनुसार कोई काम हो जाय तो कहते हैं—'ईश्वरने बड़ी कृपा की।' और उनके मनके खिलाफ होने पर कहते हैं—'ईश्वरसे भी कभी-कभी गलती हो जाती है।'

तक प्रश्न उठता है कि तर्कको कहाँ तक लेना? जहाँ तक वह आगमके अनुरूप हो। श्रुति वर्णन करती है—

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।'

जो अविनाशी है, उसका नाम आत्मा है क्योंकि वह विनाशका साक्षी है। जैसे घड़ेका बनना-फूटना मनुष्य देखता है वैसे अन्तःकरणमें वृत्तिका उदय होना-मिटना आत्मा देखता है। घड़ा आँखको दीखता है और घटाकार-वृत्ति साक्षीको दीखती है। काल वृत्तिसे मालूम पड़ता है। सुषुप्तिमें कालके अवयव नहीं मालूम पड़ते। जागकर घड़ी देखते हैं, तब अनुमानसे हम कहते हैं—'इतना समय कैसे निकल गया?'

वृत्ति द्वारा कल्पित वर्ष-मन्वन्तर-कल्पमें आत्मा मरता नहीं, इसलिए आत्मा 'सत्यम्' है। प्रत्येक पदार्थका ज्ञान किसको होता है? हमको। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, घट-पट-मठ आदि सबका ज्ञान भी हमको ही होता है। हमको हमारा अज्ञान होता है, वह भी आत्माको ही मालूम पड़ता है। आत्मा स्वयंप्रकाश है, ज्ञानस्वरूप है अर्थात् जड़ नहीं है। हमारा ओर-छोर कहीं है तो वृत्तिमें है। इस वृत्तिके तुम साक्षी हो। तुम वृत्ति नहीं हो, अनन्त हो!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आगमने बताया : 'आत्माका स्वरूप सत्य-ज्ञान-अनन्त है। ब्रह्म सर्वका प्रकाशक, स्वयं प्रकाश है।' इसके अनुसार तर्क होवे। आत्माके कारण सबकी सिद्धि होती है, आत्माके सिवा किसीकी सिद्धि नहीं होती। अन्वय-व्यतिरेक द्वारा यह कितना बढ़िया तर्क है?

हम पंचकोशोंसे परे हैं, पंचकोश नहीं हैं। घड़ेको जाननेवाला घड़ेसे जुदा है, देहको जाननेवाला देहसे जुदा है! यह तर्क है परन्तु आगमानुसारी, वेदानुसारी तर्क है। जाग्रतके पाप-पुण्यसे, स्वप्नके सुख-दुःखसे सुषुप्तिके अंधकारसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि हम तीनोंके दृष्टा हैं और तीनोंसे न्यारे हैं। इसलिए तर्क तो करना परन्तु गुरु-शास्त्रसे सुनी हुई बातको सिद्ध करनेके लिए तर्क करना।

तर्क्यताम् मा कुतर्क्यताम्

तर्क करो, कुतर्क मत करो। इन दोनोंका अन्तर समझो। तर्क=काटना, अन्दाज लगाना। अंधेरेमें किसीकी आहट पाकर हमने तर्क लगाया कि 'मोहन होगा, सोहन होगा' परन्तु निकला अन्तमें कुत्ता! अज्ञानान्धकारमें तर्क लगाना आत्मज्ञानमें निश्चित रूपरेखा लानेवाला नहीं है!

यह दृश्यमान प्रपञ्च आत्माके अतिरिक्त नहीं है। जिसके लिए यह अन्यता मिथ्या हो गयी है, राग-द्वेष और रागी-द्वेषी अपने अधिष्ठानमें बाधित हो गये हैं, ऐसा जीवन्मुक्त पुरुष उपनिषद्का उपदेश करे, उसके अनुसार ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। यह ब्रह्मविद्या तर्कसे प्राप्त नहीं होती है अतः—

अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

विना अभेददर्शी-आत्मनिष्ठ सद्गुरुके हम यह बात नहीं समझ सकते और दूसरी रीतिसे इस आत्माके बारेमें तर्क नहीं किया जा सकता। श्रीशङ्कराचार्य कहते हैं :

अतोऽनन्यप्रोक्त आत्मनि उत्पन्ना येयमागमप्रतिपाद्यात्ममतिः।

इसलिए अनन्यप्रोक्त आत्मामें आगमप्रतिपादित जो आत्ममति उत्पन्न होती है, उसे कोई चाहे हम अपनी बुद्धिके तर्क-वितर्कसे, अन्दाज लगाकर प्राप्त कर लें तो कोई उसे प्राप्त नहीं कर सकता। श्रीशङ्कराचार्य कहते हैं—

न आपनेया न प्रापणीयेत्यर्थः

और—

नापनेतव्या वा न हातव्या

तर्ककी कसौटी पर खरी न उतरे तो इसे नहीं छोड़ना। बिलकुल एक ही सिद्धान्त है : या तो तुम अपनेको नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त जानो या मानो अर्थात् ज्ञान प्राप्त करो या श्रद्धा करो। लेकिन अगर दोनोंमें-से एक बात भी न होगी तो क्या जानोगे, मलूम है? दिन भर दस बार तो अपनेको पापी मानकर रोओगे कि हाय-हाय, बुरा काम हमसे हुआ और दस बार पुण्यात्मा बनकर अभिमान करोगे। जो अपनेको पापी-पुण्यात्मा मानेगा वह दूसरेको माने बिना रहेगा? तब वह दूसरेको पापी मानकर, उससे द्वेषकर जलेगा और जिसे पुण्यात्मा मानेगा उससे राग करने जायगा, फंस जायगा। तुम खुद अपनेको रागी-द्वेषी मानोगे कि 'हम उसकी मुहब्बतमें फँसे हैं, हम उसके दुश्मन हैं।' तब तुम्हारे दिलकी क्या दशा होगी? तुम्हारा दिल मुसाफिरखाना बन जायगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि अपनेको पाप-पुण्यके सम्बन्धसे शून्य, कर्मके सम्बन्धसे शून्य, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त नहीं जानोगे तो अपनेको और दूसरेको कर्मी मानकर दिनमें दस बार फूलते-पटकते रहोगे। जैसे बाजारमें चार पैसा रोज आता-जाता है। वैसे तुम्हारे जीवनमें हँसने-रोनेका, सुखी-दुःखी होनेका क्रम बना रहेगा। यदि तुम अपने स्वरूपको जानोगे तो रोना-हँसना तुम पर कोई असर नहीं डालेगा। इसलिये तर्क-वितर्क करके अपनी बुद्धिको मत खोओ। क्योंकि :

'तार्किको ह्यनागमज्ञः स्वबुद्धिपरिकल्पितं यत्किञ्चिदेव कथयति।'

ये तार्किक लोग जो तर्क-कुतर्क करनेवाले हैं, उनकी क्या दशा है? यहाँ बुद्धिका निषेध नहीं है, तर्कका निषेध है। उनको यह पता नहीं है कि हम अपने लिए भलाईका या बुराईका काम करते हैं। यदि हम अपने हृदयमें संचित संसारके संस्कारको दृढ़ बना रहे हैं, तो मानो जैसे रेशमका कीड़ा रेशम उगलता जाता है और उसीके बनाये जालमें स्वयं अधिकाधिक फँस ताजाता है, वैसे संसारी मनुष्यका यह समझना कि 'हम बहुत बढ़िया कारखाना चला रहे हैं और इससे हमें सुख मिलेगा।' वही उसको संसारमें फँसाता है। अपनी मृत्युका फंदा वह स्वयं तैयार करता है।

कोई-कोई आदमी हमारे पास आकर दूसरोंकी जानकारी देते हैं, हमारे दिलमें उनके प्रति मुहब्बत या दुश्मनीका भाव भरनेकी कोशिश करते हैं। वे हमारे लिए अपने मनमें क्या भाव रखते होंगे, वह तो भगवान् जाने, परन्तु मनुष्य जो बोलता है, सोचता है, करता है वह उसके हृदयमे भरे संस्कारोंकी अभिव्यक्ति है। जो खाते हैं उसीकी डकार आती है। तुम यह मत समझना कि हम दूसरे पर कीचड़ उछाल रहे हैं और उसके कपड़े खराब होते हैं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

वह तो उछालनेवाले पर ही लौटकर पड़ती है। तुम्हारा गन्दा दिल जाहिर होता है।

हम यह नहीं मानते कि जो ज्यादा व्याख्यान सुन लेता है वह ज्यादा सत्संगी है और सत्संगमें न आवे तो नहीं है। हम ऐसा समझते हैं कि किसका दिल स्वच्छताकी ओर चल रहा है, कौन अपनेको जाननेकी कोशिश करता है? असलमें अपना आत्मा तर्क-वितर्क करने लायक नहीं है। कम-से-कम इतना समझो कि हम बन्धनमें फँसते हैं, हम मौतके पास जाते हैं। यदि किसीको हमसे दुःख होता है तो उसे अपनेमें मत जोड़ो। 'तार्किकात् अन्येनैव'-तर्क-वितर्क करनेवाले लोगोंके चक्करमें मत पड़ो। यह अक्ल-मन्द लोगोंका काम है। यह बच्चोंकी बुद्धि है।

एक जगह व्याख्यान हो रहा था। वहाँ व्याख्याता तार्किक था। उसने बताया—"यदि तुम पत्थरकी पूजा करोगे तो तुम्हारी बुद्धि पत्थर हो जायगी।" तुम अपने चाम पर साबुन लगाते हो तो क्या तुम चाम हो जाते हो? घरमें झाड़ू लगाते हो तो तुम क्या मिट्टी हो जाते हो? सब अपने सुखके लिए किया जाता है। जिसमें अपना कोई स्वार्थ नहीं है, ऐसा काम मिलने पर सोचो कि 'यह कार्य ईश्वरके लिए है।' ईश्वरके लिए पूजा करो। शालग्राम पर फूल-चन्दन चढ़ाते हुए हृदयमें ईश्वरभाव हुआ तो खयाल तो बढ़िया बना। यह दिल बनानेकी, अध्यात्मके निर्माणकी विद्या है। जो इस साधन-पद्धतिको, अध्यात्मविद्याको जानता है वह तर्कके चक्करमें कभी नहीं पड़ता।

हमने बचपनसे अध्यात्मविद्याका अभ्यास किया है, साधुओंसे सीखा है। जिन्होंने वेदान्त-विद्याका अभ्यास किया है, वे जानते हैं कि अपना आत्मा नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त है। तब आगमाभिज्ञ-उपनिषद्के आचार्य बतावेंगे कि तुम कौन हो?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।

यमराज नचिकेतासे कहते हैं : 'प्रेष्ठ' = अत्यंत प्रियतम। यहाँपर यम माने सर्वविशेष-निषेधावशेष सबको नेति-नेति कर देने-पर जो रहता है अर्थात् निषेध रूपमें मृत्यु प्रकट है। सारा विशेष मर गया। विशेषका अभाव मृत्युरूपमें प्रकट होकर बोल रहा है : 'मेरे प्यारे, तुम पहले सबका निषेध करके देखो। तुमको कोई कहे—'यह है' सो नहीं! मैं यह नहीं और 'यह' कभी 'मैं' नहीं। सब यह अनात्मा है, मैं आत्मा है। अनात्माओंसे अलग किया हुआ 'मैं' आत्मा है इसको कहा : **प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।**

तब कोई कहेगा : 'तत्त्वमसि! ओ निषेधावशेष, ओ दृष्टा पुरुष, ओ साक्षी, ओ ज्ञानस्वरूप, ओ आत्मन्! तू इस देहमें नन्हा-मुन्ना नहीं है! तू सम्पूर्ण देशका अधिष्ठान, साक्षात् ब्रह्म है!' पहले निषेध कर लो! बादमें गुरु बतावेगा कि 'तुम अनन्त अद्वितीय ब्रह्म हो' तो जल्दी समझमें आ जायगा।

यदि तुम कहो—'मैं साढ़े तीन हाथके शरीरवाला।' तुम साढ़े तीन हाथवाले कैसे? देशकी कल्पना का निषेध करो। तुम ब्रह्म हो। तुम पूछोगे—'हमारी आयु सौ-पचास वर्षकी है तो हम ब्रह्म कैसे? यह आयु शरीरकी है। पहले तुम अपनेको शरीरसे, सौ-पचास वर्षसे अलग समझो! तुम साक्षी हो। तुम साक्षीरूपसे ब्रह्म हो। तब तुम पूछोगे कि 'हम तो दो-ढाई मनके वजनवाले हैं, हम ब्रह्म कैसे?' दो-ढाई मनकी देह है, तुम दृष्टा-साक्षी हो। तुम दो-ढाई मनमें बँधे हुए नहीं हो! तुम अनन्त हो। तब फिर तुम्हें प्रश्न होगा कि 'हम इन्द्रिय-मन-बुद्धिवाले, हम जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्तिवाले हम ब्रह्म कैसे?' तुम वह नहीं हो जो तुम मान रहे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vasant Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

हो। तुम उनके द्रष्टा-साक्षी ब्रह्म हो! इस प्रकार जब गुरुदेव बतावेंगे तब ब्रह्मात्मैक्य-बोध होगा।

तुमने आजतक गुरु क्यों नहीं बनाया? लोग बताते हैं—'हमें अपने योग्य कोई मिला नहीं।' तब कहना होगा कि तुम्हें, अपनी योग्यताका ज्यादा एहसास है। तुम्हें दुःख होता है, हृदयमें जलन होती है, अपनेको अज्ञानी जानते हो। अपनेको इससे छुड़ानेवालेकी जरूरत नहीं है? तुम असहाय पड़े हो और इस अज्ञानान्धकारसे निकालनेवाला कोई नहीं? तुममें इतना बड़ा अभिमान कि हमारी इस अयोग्यताको मिटानेवाला कोई बड़ा योग्य पुरुष नहीं?

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तते।
यथैवं विपरीता ते बुद्धि आचार्य-वर्जिता॥

यह श्लोक वाल्मीकि-रामायण और महाभारतमें है।

क्या तुम्हारे गाँवमें कोई सन्त नहीं हैं?

'होंगे, हमें जाननेकी रुचि नहीं है।'

इसका तात्पर्य है कि तुम दिनभर जलन-द्वेष-ग्लानि-घृणा-अभिमानमें मरते हो। तुम्हारी जिंदगीमें दुःख ही दुःख दिखाई पड़ता है। इसका कारण क्या है? जो तुम्हारे शुद्ध स्वरूपको दिखा देते उनके पास तुम गये नहीं!

प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठः हे प्रियतम! जो तुम्हें पापी बतावे उसका सम्पर्क करोगे तो जीवनमें ग्लानि आ जायगी। रोज-रोज यही बोलते रह जाओगे कि—'मैं मूरख खल कामी।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vyarpan Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो तुम्हें रागी-द्वेषी बतावेगा वह पार्टीबन्दीमें डाल देगा। मालूम पड़ेगा कि वह तुम्हारा हितैषी है परन्तु वह तो तुम्हारे कलेजेमें आग लगाकर रवाना हो जायगा! यदि तुम अपना भला चाहते हो तो ऐसे लोगोंका संग मत करो। तुम ऐसे आदमीके पास बैठो जो तुम्हारे लगी मैल धो दे, दिलकी आग बुझा दे, दिल के पर्देको फाड़ दे, जो तुम्हारे दिलमें भरे अज्ञानान्धकारको हटा दे। संग करो तो ऐसा करो।

रास्तेमें चले तो पाँव फिसल भी जाता है। गाँवमें कच्चे-रास्ते पर चलनेवाले हम पचासों मर्तबा गिर पड़े हैं! उत्तर-काशीमें और बम्बईमें भी हम गिर पड़े हैं! जो बोलता है उसके मुखसे कभी अशुद्ध शब्द भी निकल जाता है। इसकी चिन्ता मत करो एक आदमी जहाँ बैठा है, वहीं वह पकड़ लेता है, और सब भूल जाता है। मनुष्यकी धृति कहाँ है? आप क्या पकड़ते हैं? हजार बार जो हमारी तारीफ करे वह यदि एक बार निन्दा करे तो गिर गया! जहाँतक मनुष्य असत्य-नामरूपात्मक प्रपंचकी पकड़में संलग्न है तबतक वह सच्चा जिज्ञासु नहीं है। वह सच्चा जिज्ञासु तब है जब संसारके नामरूपकी पकड़ छोड़कर अन्वय-व्यतिरेकातीत बुद्धि प्राप्त कर ले। जब सत्यको पकड़े और जाने कि हमारा आत्मा क्या है, ब्रह्म क्या है?

'अमुक सेठके पास पैसा है, अमुककी बहु-बेटी ऐसी है, अमुकने कितनी बार चोरी की। यह जाननेमें तुम्हें शान्ति नहीं मिलेगी। जब तुम जानोगे कि 'सम्पूर्ण नामरूपके अन्तरालमें क्या अमृत-धारा बह रही है, सबके अन्तरालमें अपना आत्मा ब्रह्मरूप है' तब तुम्हें शान्ति मिलेगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant / Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अपनेमें अन्यका जो अस्तित्व है वह केवल प्रतीत सत्य है अर्थात् मालूम पड़ रहा है। इसलिए अन्यके सम्बन्धमें यह निश्चय करना कि 'यह है, मनकी प्रतीतिको सत्य मानना है। परन्तु जिसे प्रतीत हो रहा है, जो आत्मा है, ब्रह्म है वह एक दृढ़ निश्चित वस्तु है, अकाट्य है। कोई न तो यह बोल सकता है कि 'मैं नहीं हूँ' और न ऐसा अनुभव कर सकता है। आत्मसत्ता अकाट्य है। इसीको शास्त्र—ब्रह्मविद्या बताती है कि 'तुम ब्रह्म हो।' तुम वह ब्रह्म हो जो अविनाशी परिपूर्ण-एकरस है।

जैसे मनुष्य आँख-कान-नाक-जीभ-त्वचा, हाथ-पैर, मशीनके पीछे तर्क-वितर्क करके चलता है ऐसे यदि कोई तर्क-वितर्कके द्वारा सत्यका, सत्संगका, आत्मविद्याका सम्पादन करना चाहे तो नहीं कर सकता। जिसे काट सकते हो, जिसका निषेध कर सकते हो, उसका निषेध करलो और जो सबका साक्षी-कूटस्थ सर्वश्रेष्ठ, एकरस है उसको वेदान्तमें बताया कि 'ब्रह्म' है। उसके आकार-विकारमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

यमराजने नचिकेताको आत्माकी अनन्यता समझाते हुए कहा कि : "तुम हमारे प्यारे हो इसलिए तुम्हें यह रहस्य बताते हैं कि आत्माके सम्बन्धमें तर्क-वितर्क मत करना। जो चीज तर्क-वितर्कसे नहीं मिलती वह तुम्हें मिल गयी है।'

यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि।

"सचमुच तुम्हारी योग्यता और स्थिति देखकर हमारा हृदय दयासे, प्रेमसे भर गया है।" ईश्वर और सद्गुरुकी प्रत्येक क्रियामें प्रीति ही प्रीति होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vamanesh Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कल मैं एक पुराना ग्रन्थ पढ़ रहा था। उसमें कथा भी थी "एक सज्जन गये 'तिरुपति बालाजी'। एकने कहा : 'ये भगवान लक्ष्मपति नारायण कैसे हैं जो लोगोंके बोलनेपर कि 'हम इतनी भेंट-पूजा चढ़ावेंगे जब हमारा काम हो जायगा' तब वे उसका काम कर देते हैं और काम हो जाय परन्तु भेंट न चढ़ावे तो ब्याज भी वसूल कर लेते हैं!"

दूसरेने कहा : 'तुम असलमें ईश्वरको पहचानते नहीं हो! रत्नाकर समुद्र तो भगवानका श्वसुर है, चन्द्रमा इनका साला है, लक्ष्मीजी इनकी पत्नी हैं, कौस्तुभमणि इनके कंठमें हैं, कल्पवृक्ष इनके संकल्पसे उदय हुआ है, फिर भी वे भीख-भेंट लेकर काम करते हैं, इसमें इनका अनुग्रह ही तो है। वे हमारे कामको भी अपना ही समझते हैं और उस व्यक्तिको अपना इतना समझते हैं कि उसके ऊपर करुणा करते हैं कि उसकी छोटी-से-छोटी भेंटको भी स्वीकार करते हैं। इसलिए तुम तिरुपति बालाजीमें दोष मत देखो! यह तो उनका अनुग्रह है कि उन्हें स्पृहा, आवश्यकता, तृष्णा या कामना न होने पर भी भक्तवात्सल्यके कारण, कारुण्यके कारण वे अपने भक्तकी पूजा स्वीकार करते हैं। लोग इस अनुग्रहको समझते नहीं।'

मैं एक महात्माके पास गया। वहाँसे थोड़ी दूर पर एक बड़े प्रसिद्ध महात्मा रहते थे। वहाँ जानेका मेरा मन हुआ तो कहा— 'मत जाओ।' मुझे उन्होंने मना करनेका कारण कुछ भी नहीं समझाया तब मेरे मनमें क्षोभ हुआ। फिर मैंने युक्ति निकाली कि घर जानेके लिए इनसे छुट्टी लें और रास्तेमें उनसे मिल लेंगे। उन्होंने घर जानेकी छुट्टी तो दे दी परन्तु उसके साथ एक ऐसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

काम सौंप दिया कि हम जल्दी घर पहुँच जायँ! रास्तेमें मिलते चलनेकी युक्ति बेकार हो गयी!

थोड़े दिनोंके बाद उन्होंने मुझे जिससे मिलनेसे निषेध किया था उसमें उनका क्या अभिप्राय था सो समझाया। 'श्रद्धाके मार्ग पर चलकर एक जप, एक पूजा करके, भगवानके सम्मुख साकार रूपके दर्शनके लिए हम एक साधना कर रहे थे। वे महात्मा तो बड़े फक्कड़ थे। यदि उनके पास जाते तो न-जाने क्या उनके मुँहसे निकल जाता। जिस ढंगसे वे हमारे जीवनको गढ़ रहे थे, हमारे हृदयका निर्माण कर रहे थे, उसमें बाधा पड़-जाती! उसमें उनका कोई स्वार्थ नहीं था! वह तो उनका अनुग्रह था।'

स्वामी विवेकानन्दने श्रीरामकृष्ण परमहंससे कहा: 'राजा भरतकी आसक्ति हो गयी थी हरिनसे तो तीन जन्म उनको लेना पड़ा। आप हम पर इतनी प्रीति क्यों करते हो? आपको भी तीन जन्म लेना पड़ेगा!'

परमहंस: 'नरेन्द्र! तुम मुझे ईश्वरका रूप मान रहे हो केवल श्रद्धासे, अज्ञानतासे, अनजानमें, अंधेरेमें। मैं अनुभव कर रहा हूँ कि तुम साक्षात् ईश्वर हो, और मैं अपने साक्षादपरोक्ष-निरावरण अनुभवसे परमात्माके सिवा कुछ अन्य नहीं देखता। न तुम, न मैं, न यह न वह!'

तुम कौन हो? परमात्माके स्वरूप हो। परमात्माके सिवा अन्य कोई नहीं है। तुम प्रीति जिससे करते हो वह तो ईश्वर है, उसका आत्मा उसका स्वरूप है।

प्रेष्ठ—परम प्रियतम आत्मस्वरूप नचिकेता! जो बुद्धि तुम्हें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिली है, वह तर्क-वितर्कसे चालाकीसे नहीं मिलती। जन्म-जन्ममें सत्कर्मका अनुष्ठान करनेसे, ईश्वरकी कृपा होनेसे, सद्गुरुओंका प्रीति-भाजन—वात्सल्य-भाजन होनेसे मिलती है। तुम्हारी बुद्धि सत्यधृति है।

गीतामें बताया : धृति सात्त्विकी, राजसी और तामसी होती है—

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी॥

सात्त्विक पुरुषका लक्षण है—'अपने मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको काबूमें रखना। क्रोधी आदमी बातको छिपा नहीं सकता। छः-बारह महीने पहलेकी भरी हुई बातको भी वह उगल देगा। सात्त्विक धृति व्यभिचारिणी नहीं होती। यहाँ पर राजसी-तामसी धृतिका कोई प्रयोजन है ही नहीं। सात्त्विक धृतिसे भी यह विलक्षण है। यह ऐसी धृति है जिसके पेटमें सत्य आगया। किसी-किसीको अभिमान होता है कि 'मैं सत्य-प्रेमी हूँ।' वे दूसरेका तिरस्कार करते हैं कि 'तुम झूठ बोलते हो!' लेकिन केवल सत्य ही गुण नहीं होता। दूसरेका अपमान न करना भी एक गुण है। इसका भी तो ध्यान रखना चाहिए, नहीं तो गुणमें फँस जाओगे।

सत्य-भाषणके साथ-साथ तुम्हें सत्यकी पहचान है? नहीं, तो दूसरेके बहकावेमें आगये हो। किसीकी कही मानकर सत्य जाना है। ऐसा कहने पर ऐसे लोग सफाई देते हैं : 'नहीं हम किसीकी नहीं सुनते। परन्तु मैं कहता हूँ : 'तुम आँख-कान-नाक-जीभ-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

त्वचाकी वासना-वासित मनीरामकी सुनते हो। इन्होंने तो एक-सत्यको पाँच तरहका करके रख दिया। सब इन्द्रिय अपनी-अपनी बात करती हैं। वे एक ही सत्यको तोड़-फोड़, फाड़-फूड़ करके पाँच ढंगसे रख देती हैं। तुम इनकी बातको सत्य मानते हो? इन्हींके बहकावेमें आगये हो। पहले सत्यको समझो तो सही! तुम सत्य-धृत्ति कहाँ हो? तुम्हारे मनमें कृष्णकी वासना है तो तुम रामको ईश्वर नहीं मानते! और तुम्हारे मनमें रामको वासना है तो तुम कृष्णको ईश्वर नहीं मानते! तुम्हारे मनने तुमको बहकाया है कि नहीं? शिवको माननेवाला विष्णुको नहीं मानता और विष्णुको माननेवाला शिवको नहीं मानता! सत्यका तुम्हें ज्ञान नहीं है।

इसमें भी गुण है। सती स्त्री वही है जो परपुरुषका स्पर्श नहीं करती। जिसके हृदयमें जिसकी भक्ति होती है वही आकार उसके हृदयमें आ जाता है। इसमें राम-कृष्ण, शिव-विष्णु, शक्ति-गणेश, सूर्यादि औपाधिक हैं, जिससे परमात्माकी प्राप्तिमें मदद मिलेगी। असलमें परमात्मा वह है जो इन सबके भीतर एक है। जो प्रकृतिके विकारसे विवृत नहीं होता। जो वैतथ्यको प्राप्त न होवे वह सत्य है।

श्रीशंकराचार्य कहते हैं: 'अवितथविषया धृतिर्यस्य तव स त्वं सत्यधृतिः।

अवितथ विषयमें तुम्हारी धृति है? हमने ऐसे कई फूल देखे हैं जो जन्म-समय पर सफेद होते हैं, जवान होनेपर लाल और बूढ़ा हो जाने पर नीले हो जाते हैं। ऐसे एक ही फूलका कौन-सा रंग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माना जाय ? यह बहुरूपिया है। इन्द्रियोंसे जितनी सृष्टि दिखाई देती है वह प्रतीतिमात्र है, अपना नाम बदलती रहती है। अंग्रेजी, हिन्दी, तमिल, तेलुगू, जर्मनी, रूसी, चीनी, भाषानुसार विभिन्न नाम होते हैं, देश और जातिके अनुसार नाम बदलते हैं। बारह बारह कोस पर बोली बदल जाती है। प्रकृति प्रतिक्षण अपना रूप बदलती है। इनका नाम क्या सत्य है ? यह सब-का-सब तो वितथ है। जैसा यह दीखता है वैसा ही उसका स्वरूप नहीं है। हम किसी एक रूपको पकड़ेंगे तो वितथको ही पकड़ेंगे। जो असलमें कुछ कुछ नहीं है। उनके अन्दर एकरस कूटस्थ सत्य है, उसे पकड़ोगे तो सत्यका अनुभव होगा।

यमराज नचिकेताकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि : 'मेरे प्यारे नचिकेता, सचमुच मेरा मन होता है कि सारा तत्त्वज्ञान तुम्हारे ऊपर उंडेल दूँ क्योंकि तुम सत्यको पकड़ते हो।" नचिकेता सत्य-धृति है।

त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा।

नचिकेता, तुम्हारे सरीखा या पूछनेवाला इस सृष्टिमें और कौन मिलेगा ? तुम तो सचमुच प्रष्टा हो। लोग सत्यके बारेमें प्रश्न नहीं करते हैं। भौतिक सुखकी प्राप्तिका उपाय जाननेके लिए लोग प्रश्न करते हैं।"

कोई बात सच्ची होवे परन्तु उसको खोल देनेसे क्या तुम्हें कष्ट होता है ! तुम्हें तप-कष्ट होता हो तो भी उसे खोलनेके लिए तुम राजी हो ? तुम्हें सत्यके लिए प्रेम है ? यदि सच कह देनेसे तुम्हारी आर्थिक हानि होती हो, लोकमें बदनामी होती हो,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Funding IKS-MoE-Grant-2 RajGuru Math, Shivala, Varanasi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

खानेको रोटी न मिले तो तुम यह सब सहनेको तैयार हो? सत्यका प्रेमी तो वह है, जो अपने प्रियतमके साथ कष्ट उठानेको तैयार है। सत्यके साथ रहने पर यदि इन्द्रियोंका भोग छूट जाय, मनकी वासना पूरी न हो, ऊँचा सिंहासन न मिले तो उसे सहर्ष सह ले वह सत्यप्रेमी है।

कभी-कभी कोई ऐसा प्रश्न करता है कि सुनकर तबियत खिल जाती है। किसीको एकबार बता दिया जाय और वह उसे समझ जाय या समझने की कोशिश करे और अड़चन आने पर दूसरा प्रश्न करे तो मालूम पड़ता है कि उसने समझनेकी कोशिश की है। परन्तु समझनेमें अपनी अड़चन पर जिसकी नजर ही नहीं जाती तो कहना होगा कि उसने समझनेकी कोशिश ही नहीं की है। या तो प्रथम बातको समझने पर जो दूसरा प्रश्न उठना चाहिए वह उठता ही नहीं। लोगोंको कभी-कभी यह गलत खयाल हो जाता है कि "हम समझ गये।" अर्थात्—"तुम स्वयं सत्य-स्वरूप, ज्ञानस्वरूप हो, अब तुम्हें समझनेकी कोई आवश्यकता नहीं है!"

नचिकेता सरीखा प्रश्नकर्ता दुर्लभ है। गुरुजी ऐसा बोलते हैं: "बेटा, तुम तो हमसे भी एक कदम आगे हो। जितना वैराग्य तुम्हें है उससे कम वैराग्यमें ही हमारा काम चल गया था! तुम तो बड़े त्यागी, तपस्वी, विरक्त हो!"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnath Chandra Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२०. कर्मफलकी अनित्यता

संगति :

यमराज नचिकेता-जैसे प्रश्नकर्ताको पाकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। अनित्य कर्मफलमें नचिकेताकी अरुचि—संसारसे वैराग्य देखकर उसको और भी अधिक प्रोत्साहित करते हुए मन्त्र १० में उससे कहते हैं : 'अनित्य पदार्थों द्वारा नित्य परमात्मज्ञानकी प्राप्ति असम्भव है।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं
न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।
ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्नि-
रनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥१०॥

मैं यह जानता हूँ कि कर्मफलरूप निधि अनित्य है; क्योंकि अनित्य साधनोंद्वारा वह नित्य [आत्मा] प्राप्त नहीं किया जा सकता। तब मेरे द्वारा नाचिकेत अग्निका चयन किया गया। उन अनित्य पदार्थोंसे ही मैं [आपेक्षिक] नित्य [याम्यपद] को प्राप्त हुआ हूँ ॥ १० ॥

शेवधि = खजाना, शे = कल्याणे + अवधि = जो अपने सुखके सम्बन्धमें अवधिरूप होवे, जिसके बारेमें सुननेके बाद हम कहें कि वाह-वाह, इससे हमारी क्या भलाई होगी? शेवधि = सो गये। संसारमें चाहे कितनी भी निधि प्राप्त हो जाय, वह एक कहानी ही रह जायगी!

यमराज कहते हैं: 'मैं जानता हूँ दुनियाके खजाने अनित्य हैं।' आप यदि दक्षिणमें गये हों तो देखा होगा कि रामेश्वर, मदुरा, विष्णुकांची, श्रीरंगम् आदिके मन्दिरोंके निर्माणमें करोड़ोंका खर्च हुआ। मुहरोंमें उन दिनों गिनती होती थी। बारह-पन्द्रह करोड़ खर्च हुआ। अब उनकी कहानी सुननेको मिलती है। न वे रहे, न उनका कोई ज्ञाता रहा। जिसको इकट्ठा करनेमें लोग जिन्दगी गँवा देते हैं, वह अनित्य है। संसारमें जहाँ-जहाँ दुःख मालूम पड़ता है:

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद् भयं
मौने दैन्यभयं, घने रिपुभयं, रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं; गुणे खलभयम्, काये कृतान्तात् भयं।
सर्वं वस्तु - भयं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

बहुत भोग करनेसे रोगका डर रहता है, वंशका अभिमान करोगे तो 'वंशका नाम कोई डुबो न दे' यह भय रहेगा; बहुत धन इकट्ठा करोगे तो राजा और चोरके ले जानेका भय रहेगा; मौनी बन जाओगे तो दीन-हीन हो जाओगे कि 'हमारा काम कैसे चलेगा ?' धनके कारण शत्रुके आक्रमणका डर भी रहेगा; रूप-सौन्दर्यकी सुरक्षामें बुढ़ापेका भय लगा रहेगा; शास्त्रज्ञान होनेपर वाद-विवादका भय रहेगा; बहुत गुणवान् होनेसे दुष्टोंका भय रहेगा जो नीचे गिरानेकी कोशिश करते हैं, शरीरके साथ यमराजका डर लगा हुआ है। संसारकी सभी वस्तुओंमें भय लगा हुआ है। केवल वैराग्य ही निर्भय है।

संसारके लोग जिसे खजाना बोलते हैं वह हमेशा रहनेवाला नहीं है। संसारी लोग उसे प्रेम करते हैं, वह उनसे प्रेम नहीं करता है। हम चैतन्य हैं, वह जड़ है। यह तो पागलसे प्रेम करने जैसा है।

गाँवमें एक आदमीने बड़े प्रेमसे कुत्ता पाला। उसका ख्याल था, यह पहरा देगा, चोरी नहीं होने देगा। चोर लोग दिनमें आकर कुत्तेको गुड़ खिला जायँ! अब कुत्ता उनको ऐसा पहचान गया कि चोर रातको चोरी करके चले गये परन्तु वह बिलकुल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

भूँका नहीं। वह उनको पहचानकर अपनी पूँछ हिलाता रहा कि 'ये तो वे ही लोग हैं जो दिनमें मुझे गुड़ खिलाते हैं।"

यह सोना-चाँदी, यह पैसा किसी दूकानदारसे पहचान नहीं रखता कि यह हमारा है। उसके लिए तो सब दूकान, चोर-साहूकार, राजा-प्रजा, सच्चे-झूठे बराबर हैं। ये हमेशा रहनेवाली चीजें नहीं हैं। तुम उनसे इतना प्रेम करते हो और वह तुम्हें पहचानते भी नहीं। उसे तुम्हारे हाथमें कोई मजा नहीं आता, वह तो अभिमान देकर तुम्हें धोखेमें डालता है। इस संसारके सारे खजाने अनित्य हैं।

न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।

नित्य परब्रह्म अनित्य वस्तुसे प्राप्त नहीं होता। एक सज्जन अमेरिका गये। उनको मशीनी-दिमाग दिखाया गया। अब मस्तिष्कके कई पुर्जे मशीनसे बना लिये गये हैं! हमारे मस्तिष्कमें दो अरब पुर्जे हैं। विज्ञान द्वारा दस लाख तकके पुर्जे बना लिये गये हैं और वे अपना काम ठीक-ठीक करते हैं। अमेरिकाके एक वैज्ञानिकने उन सज्जनसे कहा: 'हमारे समान कौन है? हम लोगोंने कैसी बढ़िया मशीन बनायी है?'

वे बोले: 'इस बनाये हुए मस्तिष्ककी तारीफ नहीं करते हैं। हम तो ईश्वरके बनाये उस मस्तिष्ककी तारीफ करते हैं जिसने इसका रहस्य पा लिया और इसको बना लिया।'

हमारे एक मित्र जो अभी कलकत्तेमें रहते हैं वे अमेरिका गये तब उनसे एक अमेरिकनने पूछा: 'तुम्हारे देशमें ऐसी कौन-सी चीज है जो हमारे यहाँ नहीं है?'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे बोले : "पैसेसे जितनी चीजें यहाँ मिलती हैं, हमारे देशमें, खरीदकर नहीं मिल सकतीं। चाहे कितना भी परिश्रम करें, हमारे देशमें एक ऐसी चीज है जो पैसे से खरीदी नहीं जा सकती। हमारे देशमें ब्रह्मविद्या है, ब्रह्मविद्याके जानकार सन्त पुरुष हैं। वे पैसेसे नहीं खरीदे जा सकते। वे हमारे देशमें हैं, तुम्हारे देशमें नहीं। भौतिक विज्ञानकी उन्नतिमें हमारे देशकी विशेषता नहीं है, आत्मज्ञानकी उन्नतिमें है।"

एक महात्मासे कहो : 'हमें ट्यूशन देकर ब्रह्मज्ञान सिखा दो' तो ये ट्यूशनी लोग ब्रह्मज्ञान नहीं सिखा सकते और महात्मा कभी ट्यूशन नहीं देता।

नचिकेतासे यमराजने कहा : 'अनित्य सुखात्मक खजाना ही अनित्य द्रव्यसे प्राप्त होता है। मैंने यह जानकर अनित्यसे नित्यकी प्राप्ति नहीं होती, अग्निका चयन किया है और अनित्य द्रव्यों द्वारा यमराजकी यह पदवी प्राप्त की है। अन्तःकरण शुद्ध हुआ, यमराज-पदकी प्राप्ति हुई, मृत्युरूप हो गये और इसके स्वभावसे बादमें तत्त्वज्ञान हो गया। पहलेसे स्वीकृत पदकी अवधि पूरी करनी पड़ेगी, यह बात ठीक है, परन्तु आज ही तुम्हारे हृदयमें इतना वैराग्य है कि अग्नि-विद्याका जो फल है वह हम बिना अग्निकी आराधनाके ही तुम्हें देना चाहते हैं और तुम लेना नहीं चाहते हो? हमने तो अग्निकी आराधना करके, परिश्रम करके यह सब विषय प्राप्त किये हैं! बचपनमें हममें उतना वैराग्य नहीं था जितना तुममें है। इसलिए हम तुमसे प्रसन्न हैं!'

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijanamati Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

२२. नचिकेताके त्यागकी प्रशंसा

संगति :

मन्त्र १०में यमराजने नचिकेताके वैराग्यको अपने वैराग्यसे भी श्रेष्ठ बताया और कर्मफलकी अनित्यताका संकेत किया। अब मन्त्र ११में त्यागी नचिकेताकी बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा की जा रही है।

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां
क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा
धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥ ११ ॥

हे नचिकेतः! तूने बुद्धिमान् होकर भोगोंकी समाप्ति (अवधि), जगत्की प्रतिष्ठा, यज्ञफलके अनन्तत्व, अभयकी मर्यादा, स्तुत्य और महती (अणिमादि ऐश्वर्ययुक्त) विस्तीर्ण गति तथा प्रतिष्ठाको देखकर भी उसे धैर्यपूर्वक त्याग दिया है ॥ ११ ॥

जहाँ कामकी आप्ति-समाप्ति हो जाती है, जहाँ सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, जो अध्यात्म-अधिदैव, अधिभूत आदिकी प्रतिष्ठा आश्रय-सर्वात्मक होनेसे है; क्रतु माने हिरण्यगर्भ पद उपासनाका फल है और जो औरोंकी अपेक्षा अनन्त है, जो अभयकी परानिष्ठा है, जो स्तोम माने स्तुत्य है, महद् माने अणिमादि अनेक ऐश्वर्योंसे युक्त है, निरतिशय होनेके कारण जो सबसे उत्तम विस्तीर्ण गति है, प्रतिष्ठा स्थिति है : उन सबका तुमने धीरतासे परित्याग कर दिया है। तुम उत्तम गुणवाले हो। सचमुच तुम जिस ज्ञानको प्राप्त करना चाहते हो, वही ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है महद्फलत्वात्—क्योंकि जिसको आत्मज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है उसके जीवनकी समस्याका ही हल हो जाती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaipanasi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१२. आत्मज्ञानका फल

संगति :

मन्त्र ११में आत्मज्ञानकी श्रेष्ठता बतायी गयी। अब मन्त्र १२में धीर आत्मज्ञानीके लक्षणोंके निरूपण द्वारा आत्मज्ञानके फलका वर्णन करते हैं।

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं
मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥ १२ ॥

उस कठिनतासे दीख पड़नेवाले, गूढ़ स्थानमें अनुप्रविष्ट, बुद्धिमें स्थित, गहन स्थानमें रहनेवाले, पुरातन देवको अध्यात्मयोगकी प्राप्तिद्वारा जानकर धीर (बुद्धिमान्) पुरुष हर्ष-शोकको त्याग देता है ॥ १२ ॥

मनुष्यके जीवनमें यह धूप-छाँह चलती रहती है। 'क्षणे रुष्टा, क्षणे तुष्टा, रुष्टा-तुष्टा क्षणे-क्षणे।' हमारे बाबा पितामह घरमें किसी स्त्री पर नाराज होते थे तो बोलते थे: 'पता नहीं, ये स्त्रियाँ कब खुश होती हैं और कब नाराज होती हैं। एक-साथ इनकी आँखमें आँसू और मुँह पर मुस्कान देखनेको मिलती है।'

हमने भी ऐसा देखा है, परन्तु यह बात किसी स्त्रीकी नहीं है, अपने भीतर जो चित्तवृत्ति है उसकी यह बात है। हम जरा-सी बातमें खुश होते हैं और जरा-सी बातमें नाराज। तुम किसीसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Jaigyan Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

प्रश्न करो कि तुम 'खुश हो या नाराज ?' तो उससे तुरन्त तुम्हें कोई उत्तर नहीं मिलेगा। सुबह-दोपहर-शाम एक ही प्रश्नके तीन उत्तर मिलेंगे। एकबार कहेंगे—'आनन्द आगया और दूसरी बार कहेंगे 'हाय-हाय, जीवन मिट्टीमें मिल गया।

मत्वा धीरो हर्ष-शोकौ जहाति

यदि वह ज्ञान प्राप्त हो जाय तो धीर पुरुष केंचुलकी तरह हर्ष-शोकको दुनियामें छोड़ सकता है। ये तो आते-जाते रहते हैं। यह तो जिन्दगीका मजा है। जैसे आप कोई नाटक देखने जायें और उसमें मात्र करुण रस ही हो तो आपको मजा नहीं आवेगा। बीच-बीचमें विदूषक लोग आकर हँसा जाते हैं, परन्तु केवल हँसना ही नहीं, करुणा भी होनी चाहिए। तात्पर्य है, जीवनमें सब रसोंको अभिव्यक्ति आवश्यक है।

एक बार मैसूरमें चित्रशाला देखने गये। वहाँ नौ रसोंके चित्र थे। श्रृंगार-रसका चित्र देखकर मनमें ललित भाव उठता, वीर-रसका चित्र देखकर मनमें उत्साह जागता, करुण-रसका चित्र देखकर आँखमें आँसू आजाते और हास्य-रसके चित्रको देखकर हँसी आती। जब हम चित्रशालासे बाहर निकले तो साररूपमें अनुभव यही रहा कि : 'बड़ा मजा आया।'

जीवन भी एक नाट्यशाला है। सब प्रसगोंमें आत्मा एकरस रहता है। उसकी ओर देखो। हजारों रोने-हँसनेके मौके आये-गये वह ज्यों-का-त्यों है। सैंकड़ों बार ब्याह-बच्चे, जन्म-मृत्यु हुए। सब झेलता हुआ भी वह कौन है पहाड़की चोटीकी तरह—त्रिकूटकी तरह जो बैठा है ? उसका पता लगाना चाहिए—जो सर्दी-गरमी वर्षाके आते-जाते रहने पर भी ज्यों-का-त्यों बना रहता है ? उसके ज्ञानसे—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बात यह है कि वह दुर्दर्श है। दुर्दर्श=दुःखेन दर्शनं यस्य। उसका दीखना बड़ा मुश्किल है। क्यों? दसवाँ पुरुष ही गायब है। दस आदमी नदी पार कर आये। किनारे पर पहुँचकर वे गिनने लगे, नवकी गिनती होवे। सबने गिनकर देखा तो नव के नव ही रहे। वे बोले: 'दसवाँ गायब है, नदीमें डूब गया होगा।' एक दूसरे व्यक्तिने उनकी गिनती की और बताया: 'तू दसवाँ है।' तू अपनेको ही नहीं गिनता था। ऐसे ही इस संसारमें मनुष्यकी अपने आप पर दृष्टि ही नहीं जाती इसलिए वह दुर्दर्श है। अनुभवी ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु शिष्यको बताता है कि: 'वह तो तुम्हीं हो।'

एक जैन-कथा है। एक राजकुमार था। वह बड़ा सुन्दर था। उसे जवानीमें ही वैराग्य हो गया। उसने एक साधुसे दीक्षा ग्रहण की। उसने व्रत लिया कि रोज हम दस आदमियोंको जैन-सम्प्रदायमें दीक्षित करके ही भोजन ग्रहण करेंगे। यह नहीं हुआ तो भोजन नहीं करेंगे। उस गाँवमें एक वेश्या रहती थी। उससे उसकी इतनी आसक्ति हो गयी कि व्रत-नियम टूटने लगे परन्तु यह नियम नहीं तोड़ा। दस आदमियोंको जैन धर्ममें प्रतिदिन दीक्षित करके ही भोजन करता।

एक दिन नौ व्यक्तियोंको तो दीक्षित किया, एक व्यक्ति नहीं मिला। वेश्या कहे: 'भोजन करो।' वह कहे: 'ना, हमारा दसवाँ नहीं मिला।' इस खींचातानीमें बात इतकी बढ़ गयी कि वेश्या बोली 'तुम जैन-धर्मसे दूसरेका उद्धार करते हो, दसवाँ व्यक्ति ढूंढते हो तो तुम अपना ही उद्धार क्यों नहीं करते? तुम ही दसवें हों।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

वह बोला : 'क्या मेरा उद्धार बाकी है ? मैं तो हूँ ही जैनधर्ममें दीक्षित। मेरा उद्धार तो हो गया।'

वेश्या : 'तुम्हारे अष्टादश दूषण दूर नहीं हुए, तुम्हें प्रशत्वकी प्राप्ति नहीं हुई। तुमको सच्चारित्र्यकी प्राप्ति नहीं हुई। वेश्यामें तुम फँसे हो। क्या उद्धार हुआ है तुम्हारा ? दसवें तुम हो।'

उसको अपना खयाल ही नहीं आया। यह मनुष्यका स्वभाव है कि वह चाहे जितना दूसरोंके बारेमें बता दे परन्तु अपने बारेमें ? आँख ठीक देखती है कि नहीं यह वह बता देगा, कानसे क्या सुना और मनमें क्या आता है, यह भी बता देगा। पड़ोसीके बेटे-बेटी, बहू, यहाँ तक कि कुत्तेके बारेमें भी उसे मालूम है, विदेश जाकर क्या किया यह भी मालूम है और अपने बारेमें मालूम नहीं ? यह बड़ा दुर्दर्श अर्थात् पर्दानशीन है। जब बाह्य पदार्थकी ओरसे दृष्टि हटाते हैं, अपनी ओर देखते हैं तब यह ज्ञान होता है : गूढमनुप्रविष्टम्।

गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्। इस आत्मदेवको—हृदयमें रहनेवाले परमात्माको जान ले तो संसारके हर्ष-शोक तुम्हें कष्ट नहीं पहुँचावेंगे। यमराजने कहा : 'हे नचिकेता, तुम जिसे जानना चाहते हो उसका दर्शन दुर्लभ है।'

'तं दुर्दर्शं दुःखेन दर्शनम् अस्येति दुर्दर्शः। हमारे पास दर्शनके जो करण हैं वे सब बहिर्मुख हैं। मन और हृदयके पीछे रहकर जो उन्हें प्रकाशित करता है, जो हृदयका अधिष्ठान है, जिसके होनेसे हृदयमें कल्पना होती है, जो हृदयकी कल्पनाका अधिष्ठान और प्रकाशक है, स्वयं हृदयरूपमें भास रहा है वह अपना आत्मा कौन है ? उसको क्या टॉर्चकी, सूर्यकी या इन्द्रियकी रोशनीमें देखोगे ? उसे देखना बड़ा मुश्किल है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बहीखातेका काम देख सकते हो, अणु-परमाणुका ज्ञान पा सकते हो, छोटी-छोटी चीजोंको यन्त्रोंसे जान सकते हो, पर जो यन्त्रमें-से झाँकनेवाला है, उसे कैसे जानोगे ?

कश्चित् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदनावृत्तचक्षुः अमृतत्वमिच्छन् ।

कोई-कोई धीर पुरुष ऐसे होते हैं जिनको अपने आत्माके दर्शन होते हैं। बाहर देखनेवाली इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिको शान्त करके और सम्पूर्ण मरनेवालोंमें अमर कौन है, यह जिज्ञासा होती है? सचमुच जब धर्म-अर्थ-कामकी इच्छा नहीं रहती है तब अमृतत्वकी इच्छा होती है और आत्माका पता लगता है। लोग तो बाजार देखनेमें, मायाका खेल देखनेमें, मदारीकी घन्टी सुननेमें लगे हैं :

रमैयाकी दुलहिनने लूटा बजार !

अपने आपकी तरफ तो उनका ध्यान ही नहीं है। इसलिए 'तं दुर्दर्शम्' : यह परमात्मदेव दुर्दर्श हैं। क्यों ? गूढमनुप्रविष्टम् गुप्तरूपसे छिपकर सबमें अनुप्रविष्ट हैं। समुद्रमें नमककी डली डालकर उसे ढूँढो तो वह नहीं मिल सकती। 'गूढं यथा स्यात् तथा अनुप्रविष्टं प्राकृतविषयविकारविज्ञानैः प्रच्छन्नम् ।'

सबके भीतर वह गूढ होकर अनुप्रविष्ट है। कहीं जाते हैं तो प्राकृत-विषयको देखने लगते हैं। सबको प्रारम्भिक आकृति देनेवाली प्रकृति है, जिससे मनुष्य प्राकृत हो जाता है। क्या देखेंगे ? आँखकी बनावट ? चमड़ेका रंग ? स्वाद, गन्ध, रिश्तेदार-नातेदार, अपना-पराया, दोस्त-दुश्मन ! नहीं; जो इन सबमें—पाप-पुण्य, सुख-दुःख, जागने-सोनेमें एक है उस वस्तुको देखो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vinayak Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हम प्राकृत वस्तुको देखते हैं! खिलौना देखते समय उसकी अच्छी-बुरी बनावट देखते हैं, परन्तु सब खिलौनोंमें एक चीज मिट्टी-लकड़ी, सोना-चाँदीको हम कहाँ देखते हैं? यहाँ स्त्री-पुरुष सबके अलग-अलग मुण्ड दीखते हैं। क्या हमारी नजर उसपर जाती है जो सबमें एक है? एक ऐसी चीज है जो सबमें है।

हम लम्बा-नाटा, मोटा-दुबला शरीर देखते हैं, गुणी-दोषी, बुद्धिमान-मूर्ख व्यक्ति देखते हैं। बुद्धि तो प्रकृतिका विकार है। किसीको शान्त-विक्षिप्त देखना आत्म-दर्शन नहीं है। शान्त तो प्रकृति भी रहती है। शान्त सत्त्वगुण, विक्षेप-चंचलता रजोगुण, मूढता तमोगुण—ये तीनों प्रकृतिके गुण हैं। मूढ गूढ़को नहीं देख पाता। मूढ़ता और गूढ़ता परस्पर विरोधी हैं। लोग दुनियामें आकृति-प्रकृति-विकृति-संस्कृति देखते हैं। यह सब तो अलग-अलग होता है। प्राकृत विषयोंकी परीक्षाके कारण हम अलगावकी परीक्षा करते हैं, इसलिए सबमें एक है उसका दर्शन हम नहीं कर पाते।

गुहाहितं : परमात्मा है कहाँ? सबके भीतर बाल-बालमें है। बालमें है वही खालमें है। वह सबमें छिपा हुआ है तो देखनेमें क्यों नहीं आता? क्योंकि बुद्धि आत्मदेवके दर्शनमें प्रवृत्त ही नहीं होती। वह तो ऐसी चीज चाहती है जो मनुष्यके खाने-पहनने-तिजोरीमें रखनेके काम आवे! वह सच्ची चीज ढूँढ़ती कहाँ है! वह तो बुद्धि-गुहामें बैठा है।

यो वेद निहितं गुहायाम्

तैत्तरीय उपनिषद्‌में बताया कि जैसे सिंह गुहामें रहता है, वैसे आत्मदेव भी गुहामें रहते हैं। पहाड़में गुहा होती है। पहाड़में शेरका पता नहीं चलता। वहाँ गीदड़-सियार भी रहते हैं। एक-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बार सिंह दहाड़ दे तो सब भाग जायँ! 'बुद्धि-गुहा' का अभिप्राय है: 'हमारी बुद्धि जब किसी चीजको देखती है तब उसे भीतरकी रोशनीकी आवश्यकता होती है। हम आँखसे घड़ी देखते हैं, तब यदि सूर्यकी रोशनी न हो तो नहीं देख सकेंगे। बादल छाये हों पर रोशनी होगी तो घड़ी दीखेगी। हमारी आँख अध्यात्म है, घड़ी अधिभूत है और रोशनी अधिदैव है। तीनोंकी आवश्यकता रहती है तब बाहरी वस्तु दीखती है।

जब बुद्धिसे कोई बात समझनी होती है, पाप-पुण्यका, सत्य-न्यायका, कर्तव्य-अकर्तव्यका निर्णय करना होता है, मित्र-शत्रु और सुख-दुःखका अनुभव करना हो तो बुद्धिसे देखनेके लिए भी भीतर एक प्रकाशकी जरूरत पड़ती है।

हमें आँखसे रूमाल दीखती है। बच्चोंसे पूछने पर कहेंगे: हमको मात्र रूमाल दीखती है। क्या बिना रोशनीके उनको रूमाल दीखेगी? बच्चोंसे हजार बार पूछो कि: तुम्हें रूमालके सिवा और कुछ दीखता है?' उनका ध्यान रोशनी पर नहीं जायगा, रूमाल पर ही जायगा। वैसे ही हमारी बुद्धि जिस रोशनीमें देखती है उसे तो भूल जाती है, जो चीज दीखती है उसका खयाल करती है।

बच्चेको आग जलती दीखे तो वह सोचेगा। 'यह बड़ी अच्छी, सुन्दर चीज है, परन्तु इससे हाथ जल जायगा यह नहीं देखेगा। बच्चेकी बुद्धि 'आपातदर्शिनी' माने जहाँ नज़र गिरती है वहीं देखती है, जिससे नजर देखती है उसे नहीं देखती। यह परमात्मा 'गुहा' माने बुद्धिमें निहित—स्थित है।

तत्रोपलभ्यमानत्वात्।

इसकी उपलब्धि कहाँ होती है? बुद्धिमें। विषय और प्रकाश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equitable Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

दो चीजें बुद्धिमें होती हैं परन्तु आप विषय देखते हो, प्रकाश नहीं। यदि एक बुद्धि है और एक प्रकाश है तो आप बुद्धिको देखते हो, प्रकाशको नहीं ! बुद्धि और विषय दोनोंको बट्टेखातेमें कर लेने पर केवल प्रकाश ही प्रकाश रह जायगा—परमात्माका दर्शन होगा। परमात्माके दर्शनके लिए कहीं जानेकी जरूरत नहीं है। लोग समझते हैं कि 'अमुक स्थानमें जानेसे, अमुक-अमुक स्थितिमें, अमुक समय पर, अमुक कर्मके फलस्वरूप परमात्मा मिलता है। यह गलत है।

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवम्।

'धीयाहम् शोधय जन्महेतुम्' : अपनी बुद्धिसे यह देखो कि धीजन्मका प्रकाशक कौन है? बुद्धिका उदय, क्षय और बुद्धियोंका अलगाव किसकी रोशनीमें दीख रहा है? बुद्धि सुषुप्ति-कालमें काम नहीं करती थी। जगनेपर उसका उदय हुआ और यह स्त्री-पुरुष है, घड़ी-पुस्तक है ऐसा बोध हुआ। यह बुद्धिका विभाजन है। फिर बुद्धि शान्त हुई अर्थात् उसका क्षय हुआ।

भावेऽहं सर्वमिदं विभाति लयेऽहं नैव विभाति किंचित्।

अहंभावका उदय होनेपर सब भासता है, लय होनेपर नहीं भासता। इस अहम्-भावके मूलमें बैठी जो चीज है, जहाँ से—'अहम् अहम् इति साक्षात् ब्रह्मरूपेण भाति'—इस बुद्धिरूप गुहामें जो 'अहम्-अहम्' फुर रहा है वह 'अहम्' बोलनेवाला हरि है।

एक महात्माने हमें बताया—'दाल पकती है आगपर तो फुदुर-फुदुर होता है। वह कौन है जो फुदुर-फुदुर बोलता है? गरमीके कारण पानी फुदुर-फुदुर कर रहा है। ऐसे ही बुद्धिके सम्बन्धसे चैतन्य 'अहम्-अहम्' करता है। बुद्धिके सम्बन्धको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काट दो तो चैतन्य—'अहम्' शान्त हो जाय। तुम्हारी बीमें स्थित जो स्वयंप्रकाश, सर्वावभासक चैतन्य है—वह कौन है?

गह्वरेष्ठं : जैसे कोई आदमी जंगलमें फँस जाय उसमें पशु-पंछी, पेड़-पौधे, कीड़े-मकौड़े बहुत हों, कहीं आग लग रही हो, कहीं बरफ गिरती हो, नदी बह रही हो, परन्तु वहाँ एक आदमी है न? वह अकेला है। इसी प्रकार यह जो गह्वर है, उसमें नानात्व-अनेकार्थका संकट है—रोग, मृत्यु, बुढ़ापा, शत्रु-मित्र, सम्बन्धीका संयोग-वियोग।

आँखने कहा : 'वहाँ चल'। उसी प्रकार कान-नाक-जीभ-त्वचा अपने-अपने विषयोंकी दिशामें उसे खींच ले जाते हैं। जीवनके साथ अनेक अर्थ लगे हुए हैं :

जैसे बहुत सारी सौतें हों और अपने पतिके हाथ-पांव-चोटी-कपड़ा पकड़-पकड़कर अपनी-अपनी ओर उसे खींचकर बोले कि : 'इधर चलो, इधर चलो; इसीप्रकार इस संसारमें बहुत सारी इन्द्रियाँ, विषय और वृत्तियाँ जिसके पीछे पड़ी हुई हैं, वह आत्मा इस अनेकार्थ-संकुल प्रपंचमें अकेला रहता है। अखण्ड-अद्वय-अपरिच्छिन्न है।

पुराणम् : यह गुहाहित आत्मा पुराणतत्त्व है। अस्सी-सौ वर्षके बूढे व्यक्तिकी तरह संसारमें आत्माको पुराना मत समझना। सोचो कि आँखके पहले कौन है? आँखसे देखनेवाला। तब वह देखनेवाला सार्थक है या आँख? उसके होनेसे हाथका कर्तापन और हृदयका ज्ञातापन सिद्ध है। ये इन्द्रियाँ अलग-अलग पुर हैं, खिड़कियाँ हैं। इनके अपने विषय हैं। मनमें संकल्प-विकल्प उठते हैं, बुद्धिमें विचार आते हैं परन्तु ये इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि नहीं थीं तब, न होंगी तब और हैं तब—सब समय यह पुराणम्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हैं। नव द्वारवाली नगरीमें रहकर यही इन्हें जीवनदान दे रहा है। उस पुराणको पकड़ो।

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।

पुराण माने प्राण; जो पुरको उज्जीवित करे जिसके होनेसे शरीर प्राणवाला मालूम पड़ता है। वल्ब फ्यूज हो जाय तो बिजलीका पता ही न लगे, भले बिजली बनी रहे। सम्बन्ध टूट जानेसे वल्वमें बिजली प्रकाशित नहीं हो पाती। यह हृदय, यह मस्तिष्क शरीरमें वल्व हैं जिससे एक-दूसरेसे सम्बन्ध होकर आत्मदेवरूप बिजली प्रकाशित होती है। आदमीके मरने पर आत्मा कहीं नहीं जाता। वह तो ज्यों-का-त्यों शरीरमें ही रहता है। शरीरके बाहर भी वही है, भीतर भी वही है। हमारे परिच्छिन्न होनेके कारण ऐसी कल्पना हो गयी है कि वह आता-जाता है। वह एक जगह है, अन्यत्र नहीं है।

जो लोग अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्यको प्रमाता मानते हैं, उनके मतमें भी अविच्छिन्न चैतन्यका गमनागमन नहीं होता; क्योंकि वह चैतन्य तो ब्रह्माभिन्न ही है। वह न स्वर्ग-नरक-वैकुण्ठमें आता-जाता है, न दूसरे शरीरमें। जिसके कारण चैतन्य अन्तःकरणावच्छिन्न प्रमाताके रूपमें भास रहा है उसका अवच्छेदक अन्तःकरण बना रहा तो भ्रान्ति मिटी नहीं। अन्तःकरणमें समझते हैं—'हम परिच्छिन्न हैं।' पाप-पुण्यके अनुसार अन्तःकरण जिस आकारको ग्रहण करता है, उसीसे उसका तादात्म्य हो जाता है। कहीं गये बिना ही स्वप्नवत् अपने अन्तःकरणमें स्वर्ग-नरक-वैकुण्ठका अनुभव होता है। दृष्टि-सृष्टिवादमें तो यह सारी सृष्टि ही अपनी दृष्टिमें बनी हुई है। उसमें भी आना-जाना नहीं है। आभासवाद और प्रतिबिम्बवादमें भी आना-जाना आभास और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रतिबिम्बका ही है, वस्तुतत्त्वका आना-जाना नहीं है। यदि आप अपनेको पापीपन-पुण्यात्मापनसे, सुखीपन और दुःखीपनसे मुक्त करना चाहते हैं, अपनेको किसीका दोस्त-दुश्मन बनाकर जलाना न चाहते हैं तो अपनेको जानें कि मैं कौन हूँ :

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।

श्रीशङ्कराचार्य कहते हैं :

विषयेभ्यः प्रतिसंहृत्य चेतस आत्मनि समाधानमध्यात्मयोगः। अर्थात् आप अपनी जगह पर आ जाइये। 'अध्यात्मयोग' यानी अपने स्थान पर आ जाना। आँख अपने स्थानको छोड़कर अन्यत्र चली गयी है। उसके रहनेकी जो जगह है वहीं उसे रहने दें। मन कहाँ रहता है? इतना हो कर लें कि वह शरीरसे बाहर न जाय। देखें कि मन अपने गोलक हृदयसे बाहर न जाय। अध्यात्मे आत्मनि = शरीरके भीतर। हमारी इन्द्रियाँ जो बाहरके विषयोंको लूटने-काटने जाती हैं, उन्हें रोककर एक बात ध्यानमें ले आयें अर्थात् विचारको मर्यादित कर दें। जो भक्त होगा, वह ईश्वरके बारेमें सोचेगा। जो संसारी, विषयी होगा वह संसार या जीवके बारेमें, अपने सुखीपन-दुःखीपनको लेकर सोचेगा। इन तीन बातोंको छोड़कर चौथी बातका विचार आपके मनमें आता है? सारे विचारोंका वर्गीकरण कर तीनमें डाल दें—जीव-जगत् और ईश्वर। जगत् = हड्डी-मांस-चाम या दोस्त-दुश्मन।

संसारमें जितने दर्शन-शास्त्र हैं—उत्तर-मीमांसा, पूर्वमीमांसा, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, जैन, बौद्ध, चार्वाक, ये आस्तिक-नास्तिक दर्शन हैं। ईसाई, मुसलमान, पारसी श्रद्धादर्शन हैं। मार्क्स, हैकले आदि विकासवादी भौतिक-दर्शन हैं। विकारवादी, विकासवादी, सोपादानवादी, निरुपादानवादी, जड़वादी, मुद्गल-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

वादी, जडाद्वैतवादी, जडानैक्यवादी–इन सबका केवल जीव-जगत्-ईश्वरमें उपसंहार करें। अहम्-बुद्धि होनेतक इन तीनोंका अलग-अलग विचार होता है, क्योंकि देहस्थबुद्धिसे तादात्म्य बना रहता है।

वह कौन-सी सर्वोत्तम निष्ठा होगी? सर्वोत्तमाहं मति-शून्य-निष्ठा। सर्वोत्तम निष्ठा वह है जहाँ अहंबुद्धि छूट जाय। स्वयंप्रकाशात्मक विज्ञान द्वारा जीव-जगत्-ईश्वरका विचार करनेवाली बुद्धिके साथ तादात्म्य कर हम सोचते हैं कि 'यह मैं हूँ, यह चीज मेरी है, मुझमें पत्थरकी डलीसरीखी कुछ है।' अपने स्वरूपका ज्ञान होनेपर उसका बाध हो जाना ही सर्वोत्तम निष्ठा है। इससे बढ़कर सृष्टिमें दूसरी कोई निष्ठा नहीं।

आज तो मुक्ति चाहनेवाले दुर्लभ हैं। लोगोंको कल-कारखाना, भोग चाहिए। यदि मुक्ति चाहते भी हैं तो केवल एक 'तलाक' चाहते हैं। पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुष परस्परमें अपनी मुक्ति चाहते हैं कि 'हम बन्धनमें न रहें।' एक मुक्ति होती है रूपिणी, जिसे उपासक लोग चाहते हैं कि 'हम दास-सखा बनकर भगवान्के धाममें जायँ।' इस रूपिणी मुक्तिमें साकार-निराकार परमात्मासे एक होने, सायुज्य प्राप्त करनेकी इच्छा होती है। कभी मुक्ति अरूपिणी होती है तो उभयात्मिका भी कभी। किन्तु ये तीनों मुक्ति नहीं हैं। तीनों मुक्तियोंका विवेचन करनेवाली हृदेशमें बैठी बुद्धिका अपने स्वयंप्रकाश स्वरूप-ज्ञानसे बाधित हो जाना ही परमार्थ-मुक्ति है। अर्थात् साधन-साध्यका नाम मोक्ष नहीं, अपने स्वरूपका नाम 'मोक्ष' है। प्राप्तव्य, आप्य, संस्कार्य, विकार्य या उत्पाद्यका नाम मोक्ष नहीं है। तुम स्वयं नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त हो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'अध्यात्मयोगाधिगमेन'—आ जाओ अपने पास। अध्यात्मयोगाधिगमन द्वारा समझो कि भीतर यन्त्र कैसे काम कर रहे हैं। यह बुद्धि क्या है ? देवम्=जहाँ इस परमात्माका ज्ञान होता है। परमात्मा 'दिव्यति'=चम-चम चमक रहा है। अपना आत्मा हीरेसे भी अधिक उज्ज्वल, आकाशसे भी अधिक विशाल, कालसे भी अधिक बड़ा है। कालका जन्म-मृत्यु होता है, देशकी लम्बाई-चौड़ाई होती है, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी जो मूलभूता प्रकृति है उसमें वजन हो सकता है। किन्तु आत्मामें इनमें-से कुछ भी नहीं। इस आत्माका विचार करो तो मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति। धीर पुरुष हर्ष और शोक त्याग देता है।

क्षण-क्षणमें हृष्ट-तुष्ट होना, दिनभरमें अनेकबार हँसना-रोना ही संसारमें सबसे बड़ा कष्ट है। यह जिन्दगी क्या है ?

सस्यमिव मर्त्यं पच्यते, सस्यमिव जायते पुनः।

जैसे धान एकबार बोया जाता है, फिर पकता है, वैसे ही आदमी पौधेकी तरह पैदा होता और मर जाता है। बचपनसे जवानी, जवानीसे प्रौढ़ता और प्रौढ़तासे बुढ़ापा आता है और अन्तमें नष्ट हो जाता है। आदमीकी गति जड़-सरीखी हो गयी है। जैसे पूरी बेली जाती है, कड़ाहीमें तली जाती है और पकायीं जाती है, वैसे ही काल हम पके लोगोंको खा जाता है।

संसारमें एक ही तो व्यापार चल रहा है :

अस्मिन् महामोहमये कटाहे मासर्तु-दर्वी-परिवर्तनेन।
सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन भूतानि कालः पचती वार्ता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Jnanam Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अर्थात् संसारमें सबसे बड़ा व्यापार क्या है? महीनों और ऋतुओंकी कलछीसे सब लोग पलटे जा रहे हैं। सूर्यकी आग जल रही है। रात-दिनका इंधन डाला जा रहा है। मोहकी कड़ाहीमें सारे प्राणी पकाये जा रहे हैं। काल इनको पकाता जा रहा है। इस कड़ाही-से जरा उछल पड़ो, बाहर निकलो! 'अनागतमति' नहीं तो 'प्रत्युत्पन्नमति' तो बनो!

एक कथा है: एक तालाबके पास गड्ढा था। वर्षाके कारण बहुत-सी मछलियाँ उसमें आगयीं। एक मछुआ आया। देखने लगा कि इस गड्ढेमें कितना पानी है, कितनी मछली हैं और कैसे इनको फँसायें! कुछ मछलियोंने देखा—'मछुआ आया है और देख रहा है। कल हम सबको यह मार देगा।' कुछ मछलियां ऐसी थीं जो गड्ढेसे उछलकर बड़े तालाबमें चली गयीं! इनको 'अनागतमति' कहते हैं। कुछ यहाँ-वहाँ हो गयीं, उछलकर बाहर निकलीं। इनको 'प्रत्युत्पन्नमति' कहते हैं। कुछ सोचने लगीं: 'वह क्या करेगा? आज ही पकड़ेगा, यह थोड़े ही जरूरी है? फिर आयेगा तब देख लेंगे।' लेकिन मछुएने जाल बिछाया और सबको पकड़ लिया। यह काल सबके पीछे लगा है। इसमें आप जीव-जगत्-ईश्वरके विचारमें मत लगे रहिये। बुद्धिको पकड़ें नहीं, इसे छोड़िये।

बन्दर कैसे फँसता है? मदारी छोटे मुँहके बर्तनमें चना डालकर उसे धरतीमें गाड़ देता है। बन्दर उसमें हाथ डालकर मुट्ठीभर चना लेकर अपना हाथ बाहर निकालना चाहता है, पर हाथ नहीं निकलता और वह चना छोड़ता नहीं। तब मदारी आकर उसको पकड़ लेता है। बन्दर यदि चना छोड़ता तो हाथ निकल जाता और कभी पकड़ा न जाता!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मोहकी इस सृष्टिमें हर्ष-शोकके चक्करमें पुरुष फँस गया है। अपने आपको जान लेना इस चक्करसे छूट जाना है, मुक्ति पाना है। श्रीशंकराचार्य कहते हैं :

हर्षशोकावात्मान उत्कर्षापकर्षयोः अभावाज्जहाति।

एक पौधा हो जाना बहुत छोटी, अपकर्षकी स्थिति है। हिरण्यगर्भ हो जाना सबसे बड़ी स्थिति है। किन्तु निरुपाधिक परब्रह्म परमात्मा अपने स्वरूपका ज्ञान है। वह न एक पौधे-जैसी नीची स्थिति है और न हिरण्यगर्भ-जैसी ऊँची स्थिति। वहाँ छोटा होनेका दुःख नहीं और न बड़ा होनेका अभिमान है। असलमें हर्ष-शोक दोनों दुःख हैं, क्योंकि जो चीज आज हर्ष देती है वह कभी न कभी शोक देगी और जो चीज आज शोक देती है, वह कभी न कभी हर्ष देगी। सृष्टि तो बदलती रहती है। जो अपने स्वयंप्रकाश आत्मतत्त्वको जानता है, वह हर्ष और शोकसे पार हो जाता है। जवानी सुख देती है, पर बुढ़ापेमें वही शरीर भारी हो जाता है। बचपनमें दुःख और जवानीमें सुख मिलता है। इस बदलती सृष्टिमें अपने स्वरूपके अज्ञानके कारण होनेवाला आग्रह-विशेष ही दुःख देता है। इसलिए जिसे आत्म-दर्शन हो गया है, वह पुनर्जन्म-मृत्यु, स्वर्ग-नरक, हिरण्यगर्भ और लोकलोकान्तरसे मुक्त हो जाता है। छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा होना, दोनों स्थितियोंसे उसे मुक्ति मिल जाती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

२३. नचिकेता उत्तम अधिकारी

संगति :

अठारहवें मन्त्रसे आत्माके स्वरूपका ज्ञान शुरू होगा; वह कितना महत्त्वपूर्ण है, यह बतानेके लिए बारहवें मन्त्रमें ज्ञानकी स्तुति की गयी। यमराजने नचिकेतासे कहा : 'यद्यपि आत्मा स्वयंप्रकाश है, विषयाभिमुख बुद्धि उसकी उपलब्धि, साक्षात्कारमें बाधा है :

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipramesh Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषयापहत बुद्धिरेव आच्छादनम्,
आत्मनः स्वयंप्रकाशस्यापि ।

आत्माका ढक्कन है विषयापहृत बुद्धि। विषयोंने बुद्धिको लूट लिया है। किसीने कहा: 'विषय भी तो आत्मा ही है?' लेकिन 'मैं ब्रह्म हूँ' यह तो तुम्हें मालूम ही नहीं पड़ता, तब विषय ब्रह्म है, यह तुम्हें कैसे मालूम पड़ेगा? 'सर्वविषयोंका द्रष्टा आत्मा ही ब्रह्म है' ऐसा साक्षात् अपरोक्ष हुए विना विषयोंको ब्रह्म मान लेनेसे साधनामें वाधा पड़ जायगी। इस देहका परिच्छिन्न होना बना है और इसी परिच्छिन्न विषयाकार बुद्धिको ब्रह्म कह रहे हो, तो दुःखाकार बुद्धिको भी ब्रह्म क्यों नहीं कहते? अपने रोनेको, दुःखीपन और व्याकुलताकी ब्रह्म क्यों नहीं कहते जब कि तुम्हें सब ब्रह्म होनेका खयाल है? यदि तुम्हें यह खयाल हो कि रोना ब्रह्म नहीं, दुःखी होना या व्याकुल होना ब्रह्म नहीं है, तो यह भी खयाल होना चाहिए कि देश-काल-वस्तुमें जो परिच्छिन्न है, वह ब्रह्म नहीं है और उसको अलग-अलग दिखानेवाली इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि भी ब्रह्म नहीं हैं। तब तुम अपने आपको समझ सकोगे कि मैं अलग-अलग इन्द्रियों, बुद्धियों, विषयोंका दृष्टा हूँ और उस द्रष्टाको सर्वाधिष्ठान, स्वयंप्रकाश जान सकोगे। तब तुम्हारी अद्वितीयतामें सब बुद्धियाँ, इन्द्रियाँ, विषय अपने-आप बाधित हो जायँगे। परिच्छिन्नताको ज्यों-का-त्यों बुद्धिमें स्वीकार कर रखा है, यही अपरिच्छिन्नताके ज्ञानमें वाधा है।

जैसे किसीके पास पानीका सरोवर हो, पर पानी निःशुल्क न मिले, दो पैसे खर्च करने पर मिले। उसे दो पैसेका एक गिलास या एक घड़ा ही पानी मिलेगा। जो लोग अपने धर्म, उपासना, योगके बलपर सुख खरीदते हैं, उन्हें मिलनेवाला' सुख एक मात्रा-मर्यादामें, फलके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

रूपमें मिलता है। स्वतःसिद्ध ज्ञानसे जो सुख मिलता है, वह तो सारा सरोवर ही तुम्हारा है, तुम उसके मालिक परमानन्दस्वरूप हो।

अध्यात्मयोगाधिगमेन : अपने चित्तको इन्द्रियों, विषयों, परिच्छिन्नताओंकी ओरसे—लौकिक देशत्त्व और पारलौकिक देशत्त्वकी ओरसे हटाओ। समाधि और सुषुप्ति भी परिच्छिन्न स्थितियाँ हैं, उनसे और समस्त परिच्छिन्न पदार्थोंसे भी चित्त हटाओ। लौकिक-अलौकिक समस्त देश-काल-वस्तुओंका परित्यागकर अपने स्वरूपमें स्थित होनेवालेको श्रुति कहती है : 'तुम्हारा स्वरूप ही परब्रह्म परमात्मा है और उसमें संपूर्ण देश-काल-वस्तुओंकी परिच्छिन्न स्थितियाँ बाधित हैं :

मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति—यह किसी कर्म-योग-उपासनाका फल नहीं है, वस्तुस्थिति है। इसी लिए हर्ष-शोकके चक्रसे मुक्ति मिल जाती है। अब १३वें मन्त्रमें यमराज नचिकेतासे कहते हैं कि 'मनुष्य आत्मोपलब्धि कर आनन्दित हो जाता है। तेरे लिए इस मोक्षका द्वार खुला है :

एतच्छ्रुत्वा संपरिगृह्य मर्त्यः
प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य।
स मोदते मोदनीयँ हि लब्ध्वा
विवृतँ सद्म नचिकेतसं मन्ये ॥ १३ ॥

मनुष्य इस आत्मतत्त्वको सुनकर और उसका भलीप्रकार ग्रहणकर धर्मी आत्माको देहादि-संघातसे पृथक् कर इस सूक्ष्म आत्माको पाकर तथा इस मोदनीयकी उपलब्धि कर अतिआनन्दित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajpayee Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

हो जाता है। मैं [तुझ] नचिकेताको खुले हुए ब्रह्मभवनवाला समझता हूँ। अर्थात् हे नचिकेतः ! मेरे विचारसे तेरेलिए मोक्षका द्वार खुला हुआ है।। १३ ।।

यह मनुष्य मर्त्य है। 'व्याप्तं मृत्युना'—मौतने इसे व्याप्त कर रखा है, सबको अपनी चपेटमें ले रखा है। ऐसे कीटाणु होते हैं जो दिनमें कई बार पैदा होते और मरते हैं। उनका रूपान्तर-देशान्तर हो जाता है। कुछ वर्ष दो वर्ष, कुछ सौ वर्ष, दस हजार या लाख वर्ष रहते हैं तो कुछ एक चतुर्युगी यानी ४,३२,००००० वर्ष रहते हैं। कोई ७१ चतुर्युगी या मन्वन्तरभर, तो कोई सहस्र चतुर्युगी यानी ब्रह्माके एक दिन रहते हैं। इसी हिसाबसे ब्रह्माकी एक रात होती है। ऐसी दिन-रातका हिसाब कर एक वर्ष गिना जाय, तो ब्रह्माकी आयु ऐसे सौ वर्षकी है। यह तो एक-एक ब्रह्माण्डके छोटे ब्रह्माकी उमर है जो विष्णु भगवान्का एक क्षण होता है। ऐसे क्षणके हिसाबसे दिन-रात, महीने-वर्ष गिने जायँ तो ऐसे सौ-वर्ष विष्णुकी आयु होती है। यह शिव भगवान्की एक पलक होती है। उस पलकके हिसाबसे शिवजीकी दिन-रात, महीने-वर्ष होते हैं। ऐसे सौ वर्ष शिवजीकी आयु होती है। यह तो अलग-अलग एक-एक ब्रह्माण्डका हिसाब हुआ। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डमें ऐसे अलग-अलग ब्रह्मा-विष्णु-महेश रहते हैं। सबके सब निराकार ईश्वरके एक संकल्पसे होते हैं।

कोटि कलप ब्रह्मा भये, दस कोटि कन्हाई हो।
छप्पन कोटि यादव भये, मेरी एक पलाई हो।।

वह निराकार ईश्वर मायाकी उपाधिसे जिस परब्रह्म परमात्मामें भास रहा है, वह परब्रह्म परमात्मा अपना आत्मा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

एतच्छ्रुत्वा । एक-एक देवताके ब्रह्माण्डमें समाधि लग गयी तो क्या हुआ ? यह तो एक मनकी स्थिति हुई ! अरे जोगीबाबा ! तुम कहाँ रहते हो ? साढ़े तीन हाथके शरीरमें जो मनीराम हैं उन्हें फुसलानेमें लगे हो कि 'बेटा शान्त हो जा !' अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड जिस हिरण्यगर्भमें क्षण-क्षण पैदा-नष्ट होते रहते हैं वह हिरण्यगर्भ महत्तत्त्वकी उपाधिसे है। वह महत्तत्त्व जिस मायाके कारण है, वह माया जिस परब्रह्म परमात्मामें कल्पित है, वह तुम्हारा आत्मा है। दूसरी कोई वस्तु तुम्हारी अद्वितीयतामें है ही नहीं ।

एतत् = वक्ष्यमाणम् । अब आगे हम इस आत्माका वर्णन करेंगे । इसे मनुष्य सुने, सुनकर उसे भलीभाँति पकड़े और पकड़कर उद्योग करे कि 'हम सारे विघ्न-बाधाओं, प्रतिबन्धोंको पार कर दें ।'

मर्त्यः । मृत्युशील शरीरमें 'मैं' भावना कर और इसीसे साधन-धर्म, योग, उपासना—कर इसी शरीरमें भोग्य वस्तुकी प्राप्तिके लिए मनुष्य उद्योग करता है । शरीर तो मरता है। जिस पंचभूतसे वह बनता है, वे पंचभूत भी मर जाते हैं। जिस तामस अहंकारसे भूत पैदा होते हैं, वह तामस अहंकार भी मर जाता है। जिस राजस अहंकारसे क्रिया और कार्य पैदा होते हैं, वह राजस अहंकार भी मर जाता है। जिससे समूची सृष्टिके मन-इन्द्रियाँ-देवता पैदा होते हैं, वह सात्त्विक अहंकार भी मर जाता है। जिसमें वह महत्तत्त्व भी मर जाता है, जिसकी उपाधिसे हिरण्यगर्भ अर्थात् अनन्त-कोटि ब्रह्माओंकी सृष्टि मच्छरकी तरह लोटती-पोटती, पैदा-नष्ट होती रहती है, पनालेमें कीड़ेकी तरह बिलबिलाती रहती है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaibhav Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अधिक क्या, माया या प्रकृति भी जिसमें मर जाती है, तुम स्वयं वह अखण्ड आत्मतत्त्व, परमात्मतत्त्व हो। परिच्छिन्न अहंकारको ग्रहण कर, अज्ञानवश कहाँ फँसे हो मर्त्य ? तुम्हारी यह परिच्छिन्नता भी कैसी ? एक चींटी-जुएँके बराबर भी नहीं। ऐसी इस देहकी परिच्छिन्नतामें तुम मैं-मेरा करके बैठे हो ? थोड़ा वेदान्तका श्रवण-विचार करो। यह देहाभिमानमूलक या देहाभिमानस्थापक भी नहीं है और उससे द्वेष भी नहीं। वह तो यह देहाभिमान नहीं, उस भ्रान्तिको मिटाता है जिसके कारण तुम मानते हो कि 'हम स्वयं ब्रह्म नहीं' और देहाभिमानसे एक होकर बैठे हो ! दिनभर हँसना-रोना, छटपटाना और व्याकुल होना, समाधिस्थ या विक्षिप्त रहना, प्रवृत्त या निवृत्त रहना—इसके साथ तनिक भी जिसका सम्बन्ध नहीं, वह इसके साथके तादात्म्यको केवल मिटानेवाला है।

क्यों मर्त्य बने हो ? मौतके पंजेमें क्यों आते हो ? सुनो, इस अनन्त-अद्वितीय वस्तुका निरूपण ग्रहण करो। एकबार सुनकर समझमें नहीं आता या ग्रहण नहीं होता तो हजार बार कोशिश करो; क्योंकि यह बड़ा सूक्ष्म धर्म है। इसे प्राप्त करो। श्रुत्वा, परिगृह्य, प्रवृह्य, आप्य—इसको सुनो, धारण करो, प्राप्त करो। जो ऐसा करता है, वह **मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये।**

संसारमें किसीने चाट खिला दी, मिठाई खिला दी, प्रेमसे पीठपर हाथ रख दिया तो मनुष्य उसपर खुश हो जाता है, आनन्दका कोई झूठा-मूठा निमित्त चाहिए। मछली कांटेमें लगे मांसके टुकड़ेको खाकर ही खुश हो जाती है, लेकिन फँस जाती है। यह कामका सुख है। संसारमें क्या सुख है ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijayanti Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

एक फक्कड़ी बात है। यह सुनकर किसीने हमसे कहा था : 'ऐसी गन्दी बात मत सुनाया करो।' बीस-बाईस वर्ष पहले हम गंगा-किनारे साधु-सन्तोंमें घूमते रहे। वे तो बड़ी खुली-खुली बातें सुनाते हैं, गाली देते हैं। स्त्री-पुरुषके काम-भोगका सुख कैसा है ? वे कहते हैं : 'किसीको हो गया फोड़ा। उसमें पीब भर गयी ! दर्द होने लगा। अब उस फोड़ेको फोड़नेपर पीब निकल गयी तो कहा : 'बड़ा सुख मिला।' संसारमें स्त्री-पुरुषके मिलनसे शरीरके वीर्य-धातुके क्षरणसे मिलनेवाला सुख सुख थोड़े ही है ? जैसे शरीरमें पीब पड़नेसे पीड़ा हो रही थी और उसके निकल जानेसे पीड़ा मिट गयी, उसमें सुख कहाँ मिला ? दुःख मिटनेका नाम सुख नहीं है !'

एक महात्मा बड़े गन्दे ढंगसे बताते थे : 'किसी गड्ढेमें पेशाब-विष्ठा, पीब-खून, गन्दगी भरी हो, उसको कोई अपने हाथसे निकाले तो वह उसका मोह है, उसकी बिगड़ी आदतसे वह सोचता है कि उसे वहाँसे सुख मिलेगा। वह उसमें फँस गया है। परम्पराके कारण फँस जानेसे उस बिगड़ी हुई आदतमें उसकी रुचि हो गयी है। उसमें कोई सुख नहीं है।' संसारके लोग जीभ-पर चटनी लगाकर कहते हैं : 'हमें बड़ा सुख मिल गया।' कानसे संगीत और नाकसे सुगन्ध लेकर मिलनेवाला सुख सुख नहीं है, सुखके निमित्त हैं। विलायती सेण्ट लगाकर समझते हैं : हमारे शरीरसे सुगन्ध निकल रही है ! जो जौनपुरके गुलाबके इत्रको, चमेलीके इत्रको जानते हैं, जिनको सच्चे इत्रका अभ्यास है, उनको विलायती सेण्टकी गन्ध काटती है, वह दुर्गन्ध मालूम पड़ती है। हमारे जिस मिर्च-मसाला-गुड़को बड़ा सुख मान लिया जाता है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

उसको विलायती लोग बिलकुल अखाद्य समझते हैं। वे लोग जिसे खाद्य समझते हैं, उसे हम यहाँसे हाथ जोड़ते हैं।

एक ठाकुर साहब अपनी मूँछकी नोकको जितनी ऊँची रख पाते, उतना ही अपनेको गौरवान्वित समझते हैं। शहरका आदमी दाढ़ीको चिकनी रखनेमें सुख मानता है। मूँछका नुकीला होना या दाढ़ीका चिकना होना क्या सुख है? इसीको वेदान्तमें कल्पित सुख बोलते हैं। जिसकी जैसे लोगोंमें रहने, खाने-पीने और पहनने-की आदत हो गयी है, वैसे निमित्तोंमें सुख-बुद्धि हो गयी है; पर वह सुख नहीं।

विलायतमें हमारे सिक्खभाई दाढ़ी-मूँछ रखते हैं। एक दाढ़ी-मूँछ रखनेमें तो एक उन्हें न रखनेमें सुख समझते हैं। एक अपने चित्तको रामाकार रखे, एक वेश्याकार रखे तो सुख दोनोंको मिलता है। लोग 'योग-योग' बोलते हैं न! एक भोगी पुरुष थे। एक स्त्री उनसे कह गयी थी कि 'हम तुम्हें आज आकर मिलेंगे।' वे बड़ी उत्सुकतासे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। एक साधु आगया। उसने उनकी एक नस दबा दी तो उन्हें दो-तीन घंटेके लिए समाधि लग गयी। आजकल इसीको समाधि बोलते हैं, किन्तु बेहोशीका नाम समाधि नहीं होता। जहाँतक खुली आँख रहे, बोलते-चलते, संसारका सारा व्यवहार करते हुए समाधि न रहे तबतक समाधि झूठी है, कृत्रिम है।

उस व्यक्तिको समाधि टूटी, होशमें आया तो पूछा : 'जो स्त्री आनेवाली थी, वह आयी थी या नहीं?'

साधु : 'वह तो आयी थी, तुम्हें समाधिस्थ देखकर लौट गयी!'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

वह बोला : 'हाय-हाय, इस साधुने तो हमारे साथ बड़ा अन्याय किया, हमें समाधि लगवा दी।'

ये सब मान्यताके सुख होते हैं। शरीरमें ऐसी नसें होती हैं जिनको हाथसे, सांससे, अमुक ढंगसे बैठकर दबा सकते हैं और समाधि लगती है। केवल वैसा चिन्तन करनेसे नशा हो जाता है। हमने तो कितनी बार ऐसा प्रयोग करके देखा है कि खूब खुश हों और वैसा ध्यान करके रोने लग जायँ। दुःखके हजार निमित्त सामने हों, सुखका ध्यान करके हँस दें। तुम्हें भी ऐसा होता होगा। सुख-दुःख भूल जाते हैं।

मान्यताकी प्रधानतासे ही रामवालेको कृष्णका उत्कर्ष सुनकर सुख नहीं होता और कृष्णवालेको रामका सुनकर। दोनों आकृतियोंमें जो एक है, उसे पकड़नेकी कोशिश करें। उसे दोनों आकृतियोंमें सुख नहीं होता, क्योंकि उसे निराकारका संस्कार है। एक मुसलमानके सामने कृष्णका सौन्दर्य-वर्णन करो। यदि वह कट्टर धर्मात्मा न होगा, छोटा-मोटा होगा तो फिसल जायगा। अपने ही घरमें किसी साकारोपासकके सामने निराकारका वर्णन करें तो वे नाराज हो जायँगे। यह सब अपनी-अपनी बनायी आदत या मान्यताका परिणाम है। सत्यको पकड़ने, समझनेकी बिलकुल कोशिश नहीं की गयी। सुख और सुखके निमित्त अलग-अलग होनेपर निमित्तसे क्षणभरके लिए जो सुख चमक जाता है, वह सुख नहीं, सुखाकार-वृत्ति है। वह सुख क्या जो क्षणमें आया और क्षणमें गया? उसमें तो सतीत्व ही नहीं हैं। वह तो सुखाकार-वृत्ति है। भले ही समाधिमें वृत्तिका कोई आकार नहीं, वह सुख-स्थिति है। संसारके विषय, घण्टा-घड़ियाल बजाना निमित्तोंसे सुख पानेके लिए है। मनमें सुखका जो खयाल है वह सुखाकार-वृत्ति है और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

शान्ति है सुखस्थिति। ये सब किसके लिए? असली सुख तो वह है जिसकी सेवामें ये सुखके सारे निमित्त लगते हैं और सुखाकार-वृत्ति, सुखस्थिति होती है। ये सब जिसके लिए हैं, वह तो बेचारा अपने घरमें ज्यों-का-त्यों बैठा है।

मोदनीयम् : ये सारे मोदन-ओदन जिस आत्मदेवके लिए हैं, उसको तुमने अपने आपमें जाना? अमुक रासायनिक क्रियासे क्या होता है, अमुक लोकमें जानेसे क्या मिलता है, यह तुम्हें मालूम है! किन्तु किसको मिलता है? पाने-पानेकी वासनाने पानेवालेको ढँक दिया है। असलमें दुनियामें विषय पा-पाकर कोई सुखी नहीं होता। मिलने और खोनेका झंझट हमेशा लगा रहेगा। हजारों चीजोंको चाहोगे तो सब चीजें तुम्हें कैसे मिलेंगी? हर समय सब इन्द्रियोंका भोग चाहोगे, हर समय अपनी बदलती मनोवृत्तियोंको सुखी रखना चाहोगे तो कैसे सुखी रह सकोगे? इसके लिए एक निमित्त, एक आधार चाहिए। कभी सोचा है :

कस्मै देवाय हविषा विधेम ?

मित्र, धन, धर्म, भोग, नरकसे बचना, स्वर्गमें जाना, समाधि लगाना ये सब किसके लिए हैं? ये सब अपने आत्माके लिए हैं। उसका साक्षात्कार होना आवश्यक है।

एक आदमीने रेल्वे स्टेशनपर टिकटमास्टरको पैसा देकर टिकट माँगा। टिकटमास्टरने पूछा : 'किस स्टेशनका तुम्हें टिकट चाहिए ?'

वह बोला : 'वह हमें नहीं मालूम, किसी भी स्टेशनका दे दो !'

RajGuru Math, Shivalaya/Guru Math Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

टिकट-मास्टर : 'किस गाड़ीपर सवार होना है ?'

वह : 'यह हमें नहीं मालूम ! किसीपर भी !'

'तुम्हें अपने गन्तव्यका साधनाका पता नहीं ! अच्छा, हम तुम्हें अपने गाँवका, घरका टिकट दे देते हैं ! 'किस गाँवसे आये हो ?' 'वह भी नहीं मालूम !' लो जिसको यह भी नहीं मालूम कि कहाँ, किस गाड़ीसे जाना है उसके लिए यही उपयुक्त है कि उसे उसके घर भेज दिया जाय ! अर्थात् सबसे उचित, सत्य तो यही है कि तुम्हें भटकने न दिया जाय, क्योंकि सृष्टिमें तुम्हारा कोई लक्ष्य ही नहीं है। यदि कोई लक्ष्य होगा भी तो नाशवान् होगा। इसलिए घरमें बैठना ही श्रेयस्कर है।

स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा।

जिसे सब आनन्द दिया जाता है, वह दुनियाके सब आनन्दोंसे भी प्यारा है। उस अपने आपका साक्षात्कार करके आनन्दित होता है। जैसे ज्ञानका मूल अपना आत्मा है, प्रियताका मूल भी अपना आत्मा है। सब चीजें बनानी पड़ती हैं पर अपने आपको बनाना नहीं पड़ता। जानना तो अपने आपको है ! दुनियामें दूसरोंसे प्रेम करना पड़ता है; प्रेम हो जाता है फिर मिट जाता है, किन्तु अपने आपसे प्रेम करना नहीं पड़ता। आपको मालूम है, किस दिन आपने अपनेसे प्रेम किया ? किसी प्रेयसी-प्रियतमसे प्रेम किया हो तो तारीख भी आपको मालूम होगी कि अमुक दिन सड़कपर, स्कूल या पार्कमें देखा और प्रेम हो गया। दूसरेसे प्रेम किसी विशेषताको देखकर पैदा होता है। अपने आपसे प्रेम होता नहीं, वह तो स्वतःसिद्ध है। आत्मसत्ता हो तब ईश्वर सिद्ध होगा। हम न हों तो ईश्वर किस काम आयेगा ? ज्ञान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipramasi Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

किसको होगा ? इसीसे आत्मज्ञान होनेके बाद आत्माकी स्थापनाके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। ज्ञानप्राप्तिके लिए कोई प्रयोग नहीं करना पड़ता। इसीलिए जीवन्मुक्तिमें सहज प्रेम, सहज ज्ञान और सहज जीवनकी स्थिति होती है।

विवृतं सद्म। संसारमें कोई मकान बनाकर उसमें सुखकी स्थापना करना चाहता है तो कोई बाहरी विषयोंका ज्ञान पाना चाहता है। किन्तु यह बाहरके पदार्थोंसे प्रेम करना है, जो अनित्य है।

विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये। हे नचिकेतस त्वां प्रति सद्म विवृतं मन्ये।' —नचिकेता! हम समझते हैं कि तुम्हारे प्रति ब्रह्मका द्वार खुल गया।

श्रीशङ्कराचार्य लिखते हैं:

> तदेतदेवंविधं ब्रह्मसद्म भवनं नचिकेतसं त्वां
> प्रत्यपावृतद्वारं विवृतमभिमुखीभूतं मन्ये।

क्योंकि अब तुम्हें लोक-परलोकके विषयमें रुचि नहीं रह गयी। जो मृत्युके सम्मुख जाकर खड़ा रह सकता है, वही लोक-परलोकके भोगको छोड़ सकता है। अर्थात् जो देहासक्तिको छोड़ सकता है, वही विषयासक्ति भी छोड़ सकता है। नचिकेता देहासक्ति छोड़कर यमराजके सम्मुख खड़ा है। अशेष विशेषका निषेध करके उसके सामने मानो सारे विषय-इन्द्रियाँ-मनोवृत्तियाँ मर गयी हैं। मृत्यु! मृत्यु! महामृत्यु!! वह मृत्यु उसको बता रहा है कि 'बेटा, केवल तू ही है! इन्द्रियाँ, वृत्तियाँ, विषय, गति, आगति कुछ भी नहीं, बस तू है।'

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

२४. मूल प्रश्न–सर्वातीत वस्तुविषक

संगति :

अबतक नचिकेताने जो वरदान माँगे, यमराजसे जो बातें और प्रश्नोत्तर हुए, वह तो कठोपनिषद्के माहात्म्यके सूचक हैं। इस उपनिषद्का मूल प्रश्न तो इस चौदहवें मन्त्रमें पूछा गया है :

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaimanik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् ।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥१४॥

जो धर्मसे पृथक्, अधर्मसे पृथक् तथा इस कार्यकारणरूप प्रपञ्चसे भी पृथक् है और जो भूत एवं भविष्यत्से भी अन्य है—ऐसा आप जिसे देखते हैं, वही मुझसे कहिये ॥ १४ ॥

नचिकेताका मूल प्रश्न यही है और यही इस उपनिषद्का प्रतिपाद्य भी है। नचिकेता कहता है: 'हे यमराज, मैं यदि अधिकारी हूँ और आप यदि मुझपर प्रसन्न हैं, तो यह बताइये कि शास्त्रीय धर्मका अनुष्ठान करनेपर भी जो नहीं मिलता, धर्मसे परे जो परमतत्त्व है, उसकी उपलब्धि कैसे हो सकती है ?'

धर्मानुष्ठानका फल कैसे मिलता है ? अपने हाथमें ढेला हो और उसे फेंकें तो हाथमें जितनी ताकत होगी, ढेला फेंकनेका जैसा अभ्यास होगा, उसके हिसाबसे वह दूर जाकर अन्तमें गिर जायगा। बन्दूकमें जितनी शक्ति होगी, गोली उतनी ही दूर जायगी। धर्मका फल तो होता है, परन्तु धर्ममें जितनी श्रद्धा होगी, मन्त्रमें जितनी शक्ति, देवताका जितना ऐश्वर्य होगा, ब्राह्मणमें जैसी पवित्रता होगी, इन सबसे समूहीकृत धर्म ही फलको उत्पत्ति करता है। अनन्तता किसी धर्मका फल नहीं है। यह परब्रह्म परमात्मा किसी घेरेमें नहीं है। इसलिए हम अनन्त, अद्वितीय, अविनाशी, परिपूर्ण, प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्वको चाहते हैं। हम किसी धर्मके कर्मका फल नहीं चाहते !

अन्यत्राधर्मात् । धर्मका फल उत्थानकी परम अवधि है। अधर्मका फल, पतनकी परम अवधि है—क्षुद्र योनियोंमें जाना । धर्म

RajGuru Math, Shivalaya, Gurukul Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

जिसको ऊपर उठा नहीं सकता, धर्म जिससे नीचे है और अधर्म जिसे गिरा नहीं सकता, दुःख नहीं दे सकता, वह एकमात्र तत्त्व-ज्ञान है। यह ऐसा आनन्द है जो न धर्मका फल है और न धर्मसे जिसकी प्रतिष्ठा होती है :

एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्।

यह ब्रह्मज्ञानकी महिमा है। धर्म करनेवालेसे थोड़ा अधर्म तो हो ही जाता है। हवनमें जव-गेहूँके साथ कीड़े भी मरते हैं, लकड़ी-में भी कीड़े जलते हैं, तो धर्मके साथ पाप भी होता ही है। संसारमें ऐसा कोई धर्म-कर्म नहीं है, जिसमें थोड़ा पाप-पुण्य न लगा हो। ये सब अपेक्षीकृत होते हैं। गृहस्थके करनेपर जो पुण्य है, वही संन्यासीके करनेपर पाप हो जाता है। जगन्नाथपुरीमें जूठा खाना पुण्य है, अन्यत्र वह पाप है। एक दिन गाली देनेकी, झूठ बोलनेकी भी छुट्टी होती है। धर्माधर्मका निर्णय विलक्षण होता है। परन्तु परमार्थ ऐसा है, जिससे धर्माधर्मसे होनेवाले उत्कर्षापकर्षका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।

अन्यत्रास्मात्कृताकृतात्। एक ऐसी स्थिति है जहाँ कार्य-कारण-भाव नहीं है, एक ऐसी वस्तु है जो कार्य-कारण नहीं है। संसारमें लोग कहते हैं, ईश्वर या प्रकृति कारण है और जगत् कार्य है। परन्तु अविनाशी परिपूर्ण वस्तु जो पहले पैदा नहीं हुई, आगे नहीं होगी, जिसमें देश-काल-कार्य, कारणरूप वस्तुका सम्बन्ध नहीं, ऐसी वस्तुको हे गुरुदेव ! आप देखते-जानते हो।

एक साधु अच्छा पण्डित है, बहुत उच्च कोटिका साधक है और काशीमें रहता है। उसने हमसे ही संन्यास लिया है उसने पूछा : हम व्यासकी कविता पुराण-महाभारत पढ़ते हैं तो हमारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnamit Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

समझमें आ जाता है, आजकलके पण्डितोंकी कविता समझमें नहीं आती। तुलसी, कबीर, सूरको तो समझ पाते हैं, पर पंत, निराला, महादेवी, बच्चन, रामकुमार जैसे छायावादी और प्रयोगवादी कवियोंको समझना कठिन है।' हमारे लिए भी यही बात है। तुलसी-सूर तो पहलेकी संस्कृतवाली शैलीमें बोलते हैं और ये लोग अंग्रेजीवाली शैलीमें। अंग्रेजीकी शैली जिनको ज्ञात है, उनके लिए यह सरल है, जिन्हें वह न ज्ञात हो तो कठिन है।

मैंने उसको उत्तर दिया : 'व्यास इसलिए बोलते थे कि वे बोलें और हम उन्हें समझें। आजकलके पण्डित चाहते हैं कि हम बोलें और कोई न समझें। तिसपर अपनेको बतायें भारी पण्डित।' उनको दूसरा कुछ समझता ही नहीं। सुरीली आवाजका, संगीत-कविताका मजा दूसरा है और तत्त्वज्ञान समझने तथा ग्रहण करनेका मजा दूसरा। यह कान-आँखका नहीं, समझका मजा है।

नचिकेताका प्रश्न बिलकुल सीधा है। वह कहता है : 'जो धर्म और अधर्म दोनोंसे परे है, उसे हमें बताइये।' दुनियांके लोग तो धर्म-अधर्ममें ही फँसे हैं। धर्म वह है जो गिरनेके समय बचा ले, पकड़ ले। जैसे बच्चेका पाँव फिसले तो माँ झपटकर उसे पकड़ ले, गोदमें उठा ले! धारणात् धर्म इत्याहुः। मनमें आया, उसका पैसा ले लें और धर्मने भीतरसे पुकारा कि 'ठहरो, दूसरेका पैसा लूटना चाहते हो?' तो समझो कि भीतर धर्म बैठा हुआ है। परपुरुष, परस्त्री, परधनपर नजर जाते ही वह रोकता है, पकड़ता है। हमारी बुद्धिमें, हमारे हृदयमें ब्रेक लगानेका जो संस्कार है, उसको धर्म बोलते हैं।' यह संस्कार अपने आप नहीं आता, उसे डालना पड़ता है। धर्म हमें पातनीय कर्मसे रोककर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

उदयनीय कर्मके अनुष्ठानमें प्रतिष्ठित करता है। अधर्म हमें छुट्टी दे देता है कि जो मौज हो सो खाओ, पीओ, चुराओ, भोगो! इन्द्रियोंको, वासनाओंको और भोगोंको आजादी देना अधर्म है। अशास्त्रीय आचरण अधर्म है, तो शास्त्रीय आचरण धर्म।

धर्म तीन प्रकारका है: (१) कर्म और द्रव्यसे सम्बन्ध रखनेवाला, (२) मन और कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला उपासना और (३) मन, कर्म और द्रव्य इन तीनोंको रोक देनेवाला योग।

अयं तु परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम्।

यज्ञ-यागादिका अनुष्ठान बहिरंग धर्म है। जप, मानसपूजा, ध्यान अन्तरंग धर्म है। शान्ति-समाधि परम अन्तरंग धर्म है। इन धर्मोंका आचरण करनेपर आदमी ऊपर उठता है और न करनेपर नीचे गिरता है।

नचिकेता कहता है: 'हमें वह परमतत्त्व बताओ जिसपर कर्म, उपासना और योगके अनुकूल-प्रतिकूल कोई असर न पड़ता हो। धर्म प्रयत्नसाध्य होनेके कारण उसमें गिरनेकी आशंका है। दूसरी बात:

अन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।

प्रयत्नकी बात छोड़ दो। प्रकृति और ईश्वर दोनोंके संकल्पसे बहुत सारे काम होते हैं। 'कृतात्' कभी सृष्टि करते हैं तो 'अकृतात्' कभी प्रलय करते हैं। माटी कभी माटी रह जाती है, कभी घड़ा बन जाती है। प्रकृति कभी शान्त होती है तो कभी विक्षिप्त। इसमें हमारा हाथ कहाँ होता है? उसमें तो ब्रह्मका, प्रकृतिका हाथ होता है या खुदाका होता है। प्रकृतिको अंग्रेजीमें 'नेचर' कहते हैं। उसकी व्युत्पत्तिके मूलमें भी संस्कृत धातु है: नेचर-नेकर-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipassana Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

नेक्कर-न्यक्चर । 'धिक्'की तरह 'न्यक्'का प्रयोग हुआ है। न्यक्+चर यानी जो नीचेकी ओर जाय।

एक ऐसी चीज है, जो न नेचरके हाथसे बनती-बिगड़ती है, न खुदाके हाथसे। वह स्वतःसिद्ध वस्तु खुदाकी आत्मा है, खुदीका बेटा नहीं है। वह अपने प्रयत्नसे साध्य नहीं है। वह सत्य है, सत्यका कार्य नहीं है। वह न घड़ा है, न माटी है। कार्य-कारण-भाव दोनोंसे वह विलक्षण है। वह न पंचभूत है, न पंचभूतका पुतला है।

मनुष्यकी प्रकृति ऐसी है कि वह कभी बीते भूतकी याद करके रोता है, कभी कोई भविष्यकी योजना बनाकर खुश होता है। वर्तमानमें तुम्हारा मन कितनी देरतक रहता है? जितनी देर तुम्हारा मन आगे-पीछे नहीं जाता, उतनी देर वह सुखी रहता है। भूतकी सुखद बातके स्मरणसे भी भले ही बड़ा आनन्द कर लो, पर भूतमें जाते ही तुम वर्तमानको खो रहे हो।

हम एक आदमीके घर गये तो उसने हमें चन्दन लगाया, माला पहनायी और हमारा पांव पकड़कर रोने लगा। हम तख्तेपर बैठे थे। वह बोला: 'हम धन्य हुए कि आप हमारे घर पधारे।'

मैंने पूछा: 'रोते क्यों हो?'

वह बोला: 'आजसे दस वर्ष पहले हमारे घर एक महात्मा आये थे, उनकी याद करके रो रहे हैं। आप आये, वे नहीं आये!'

वह याद तो महात्माकी कर रहा था, वह बहुत अच्छा था; परन्तु उसने गलती यह की कि वर्तमानको बिगाड़ दिया। वर्तमानका सत्यानाश करना ही हानि है।

RajGuru Math, Shivalaya, Varanasi Collection, Vijayanand Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

यदि कोई कहे कि 'परसों हमारे घरमें एक और महात्मा आनेवाले हैं, उसकी हमें बड़ी खुशी हो रही है' तो पता नहीं कि उस व्यक्तिके जीवनमें परसों आयेगा या नहीं और परसों आयेगा तो वह महात्मा आयेगा कि नहीं! मनुष्य खुशी और आशामें अपने जीवनको बिगाड़ देता है। हर क्षण यदि तुम खुश रहो तो तुम्हारा हर भूत-भविष्य खुशीसे भर जाय। तुम्हारे पास ऐसा यन्त्र आ जायगा कि सामने आने-जानेवाले भूत-भविष्य दोनोंको वह मीठा बना देगा। इस यन्त्रकी एकमात्र कुञ्जी है, वर्तमानको मीठा बनाना। यह साधुताकी युक्ति है।

एक आदमीने खाते-पीते सिर पीट लिया। मैंने पूछा: 'क्या याद आयी कि सिर पीट लिया?'

वह बोला: 'आज तो रोटी मिल रही है, कल मिलेगी या नहीं?'

मैंने कहा: 'आज तो ईश्वरको धन्यवाद दो कि रोटी मिल रही है! कल आयेगा तब देखना।'

बहुत लोगोंकी बुद्धि-वृत्ति ऐसी है कि रास्ते चलते आगे या पीछे पाँव फिसल जाता है। चाहे रामराज्यकी यादमें खुश होओ या भविष्यमें आनेवाले पूँजीवादी या साम्यवादी-राज्यकी कल्पनामें खुश होओ, वर्तमान नष्ट होता है और भावी योजना भी कभीं-न-कभी ढह जायगी, मिट जायगी। दार्शनिक दृष्टिसे इस भूत-भविष्यको ही 'कृत-अकृत' कहा गया है। कृत-अकृत माने कार्य-कारणका नियन्ता। कालमें ही कारणसे कार्य बनता है और कारणमें कार्य लीन होता है। कृत-अकृत बिना हमारे किये ही होता है, धर्म-अधर्म प्रयत्न-पूर्वक होता है। दोनोंका नियन्ता काल होता है। जो कालसे विच्छिन्न नहीं होता, कालसे कटता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vajramani Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

नहीं, वह क्या है ? वह तुम्हारी जवानी थी कि तुम्हारा शरीर इतना चिकना था कि उसपर उँगली नहीं टिकती थी। हमने एक आदमीकी जवानी और बुढ़ापा दोनों देखा। जवानीमें उसका शरीर इतना चिकना था कि उसपर मक्खी बैठे तो सरक जाय। बुढ़ापा देखा कि जब मुँह-से थूक निकले तो थूक न सके, अपने आप ही गिरे। कालने उसके सौन्दर्यको जाहिर किया—फूल खिलाया और फूल मुरझा गया।

'जिस सत्ताको काल कभी जवान-बूढ़ा, बाप-बेटा, किया-अनकिया नहीं करता, सुख-दुःखका हेतु नहीं बनाता, बदलता नहीं, कालकी दाल जिसमें नहीं गलती, जो कभी कालके गालमें नहीं जाता उस तत्त्वको तुम जानते हो ?' नचिकेताने यमराजसे प्रश्न किया। 'यत् तत्पश्यसि'—तुम जरूर जानते हो!' 'यत् तत् अनिर्वचनीयम्'—जिसको देवता भी नहीं जान सके। तुमने कहा और हम ध्यान करते-करते मर जायँ, तब भी कभी उसका साक्षात्कार हमें नहीं हो सकता, यह भी हम जानते हैं! क्योंकि प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ। उसके लिए गुरु चाहिए, उपदेश चाहिए।

तुम तो अपनेको शरीर जानते हो, जीव जानते हो या ईश्वर! तीनों गलत हैं। न देह है, न जीव है, न ईश्वर। इन तीनोंसे विलक्षण, जिसमें ये तीनों नाम इशारेसे बताये जाते हैं, वह एकरस, अनिर्वचनीय वस्तु बोलकर नहीं बतायी जा सकती। उसके लिए दुनियामें कोई इशारा नहीं है। नचिकेता कहता है: 'हे यमराज, तुम उस अनिर्वचनीय वस्तुको देखते हो! हमें वही समझा दो। हम वही समझना चाहते हैं, जो सम्पूर्ण व्यवहारकी अतिशयताका अतिक्रमण कर रहता है।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

२५. ॐकारोपदेशसे साधन-निरूपण

संगति :

यमराजने तत्त्वज्ञानकी ऐसी प्रशंसा की कि उसके ज्ञानसे ही सभी सुख-दुःखों और हर्ष-शोकसे त्राण प्राप्त हो जाता है। इससे नचिकेताकी उत्सुकता और बढ़ी कि अन्ततोगत्वा यह तत्त्व कैसा होगा, जिसके जानने मात्रसे ही ऐसा हो जाता है ? अपनी पूछी हुई बातको लेकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ही 'देहातिरिक्त आत्मा'के सम्बन्धमें पहले नचिकेताने वरदान माँगा था। अब उसको जरा और स्पष्टतासे पूछ लिया है। यही वह तीसरा वर है। उसने पूछा: 'यदि मैं अधिकारी हूँ और आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो इस तत्त्वका हमें उपदेश कीजिये। आपने ही स्वयं बताया कि मैं अधिकारी हूँ।'

जब मनुष्य स्वयं अपनेको अधिकारी मानता है, तो उसमें अभि-मानकी सम्भावना रहती है कि 'मैं बड़ा शान्त, दान्त, उपरत, तितीक्षु, श्रद्धालु, समाहित, विवेकी, विरक्त हूँ।' तब अन्तःकरणके गुण-धर्मोंमें ही अभिमान हो जाता है। जिस अभिमानको छुड़ानेके लिए तत्त्व-ज्ञानका उपदेश करना है, मनुष्य स्वयं उसे पकड़कर बैठ जाय कि 'मैं ऐसा' तो कहना होगा कि 'अच्छा, तुम ऐसे ही हो, पर ब्रह्म तो नहीं हो न?' शान्त-दान्त, उपरत-तितीक्षु, श्रद्धालु-समाहित, मुमुक्षु इतने सारे गुण जो अपनेमें मानकर बैठे, उसे निर्गुण ब्रह्म कैसे कहा जाय?

नचिकेताने कहा: 'तुमने मुझे अधिकारी कहा तो उसकी जिम्मे-वारी भी तुमपर! तुम मुझपर प्रसन्न हो! जो जिसपर प्रसन्न होता है, वह उससे कोई बात छिपाता नहीं तो कपट कैसे करेगा? अब हमें वह चीज बताइये।'

तब यमराजने तत्त्वोपदेश प्रारम्भ किया। प्रथम वे १५, १६ और १७ इन तीन मन्त्रोंद्वारा साधनका निरूपण कर रहे हैं, बादमें १८वें मन्त्रसे साध्यका निरूपण करेंगे।

RajGuru Math, Shivalal Agrawal Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाँसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ १५ ॥

सारे वेद जिस पदका वर्णन करते हैं, समस्त तपोंको जिसकी प्राप्तिका साधक कहा जाता है, जिसकी इच्छासे [मुमुक्षुजन] ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदको मैं तुमसे संक्षेपमें कहता हूँ। यही वह 'ॐ' पद है ॥ १५ ॥

गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं :

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।

(१) सभी वेदोंद्वारा मैं ही जाना जाता हूँ, मैं ही जाननेयोग्य हूँ, वेदोंद्वारा मुझे जरूर जानो। न चेदिहावेदिः महती विनष्टिः—यदि जीवनमें परमेश्वरको न जानोगे तो बड़ी हानि है। इसमें भी कभी-कभी बड़ा आश्चर्य होता है। एक दिन एक पुरुष आया। उससे कह दिया : तुम्हें ईश्वर सद्बुद्धि दे।' वह बड़ा खुश हुआ कि स्वामीजीने हमें आशीर्वाद दिया। लेकिन ऐसा ही मैंने एक स्त्रीसे कहा तो वह नाराज हुई : 'हममें क्या दुर्बुद्धि है? क्या सद्बुद्धि नहीं है? कौन-सा दुर्बुद्धिका काम मैंने किया, जो हमपर यह आक्षेप करते हैं?'

(२) अहं वेद्य एव। तुम्हें जो बुद्धि प्राप्त हुई, वह केवल साड़ी, घड़ी, पर्स, स्नो पाउडर, लिपस्टिक पहचाननेके लिए नहीं है। इस बुद्धिसे जो सबसे बड़ी चीज है उसे पहचानो, जिसे पहचाननेसे दिलमें राग-द्वेष नहीं रहता तो जलन नहीं रहती।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Varanasi. Vedic Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पाप-पुण्य नहीं रहता तो स्वर्ग-नरकका भय नहीं रहता। दिनभरमें दसबार सुखी-दुःखी होनेको आदत छूट जाती है। जीवन बड़ा मजेदार हो जाता है।

(३) अहं वेदैरेव वेद्यः। मैं केवल वेदों द्वारा ही जाना जाता हूँ। जो चीज इन्द्रियसे जानी जाती है उसमें तो यन्त्र भी मदद कर सकते हैं, विज्ञान मदद कर सकता है। यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र ऐन्द्रियक ज्ञानमें सहायक होते हैं। किन्तु शुद्ध आत्मा जो इन्द्रियोंसे नहीं जाना जाता वेदकी शैलीसे ही जाना जा सकता है।

(४) अहम् सर्वैरेव वेदैः वेद्यः। सारे वेद चाहे कर्म-काण्डका वर्णन करते हों या उपासनाका, योगाभ्यासका वर्णन करते हों या तत्त्वज्ञानका, वे मेरे स्वरूपका ही वर्णन करते हैं: सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति।

यह वेदोंके वर्णनका सनातनधर्मी ढंग है। एक अंग्रेज वैज्ञानिक-ने सुना कि हिन्दू लोग 'इन्द्राय स्वाहा, अग्नये स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, पूष्णे स्वाहा' इन चारोंको आहुति देते हैं तो कह दिया: 'ये वेद बहुदेववादी हैं' और समीक्षाके स्वरमें बताया कि 'ये न तो एक ईश्वरका नाम जानते हैं, न एक ईश्वरका स्वरूप। ये इन्द्र, वरुण, अग्नि, पूषा सबको हवन करते हैं, एकको नहीं।'

इस परिस्थितिपर आप विचार कीजिये। यदि भारतीय संस्कृतिमें ईश्वरका नाम केवल अग्नि, इन्द्र, वरुण, पूषा ही होता तो ईश्वर एकांगी होता या नहीं? जो अनेक नाम-रूपोंमें व्याप्त है, वही एक है। शालग्रामकी गोली और शंकरजोकी लिंग-मूर्तिमें भी वही है। विष्णुके चतुर्भुजरूपमें, देवोके स्त्री-आकारमें, सूर्यके ज्योतिर्मय-रूपमें, गणेशके हाथी-मुँहमें और नृसिंहके सिंह-मुँहमें, हयग्रीवके घोड़ा-मुखमें, मछली-कछुआ-वराहमें भी वही है। अर्थात् रूपके पीछे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitization: Vaidic Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

मत जाओ। सब रूपोंमें जो एक अरूप धातु है, उसे पकड़ो, हम यदि कह देते कि राम ईश्वर है, देवी नहीं, तो एक आकारका नाम ईश्वर मानना पड़ता। निराकारको समझनेके लिए कोई साधन नहीं रह जाता। यदि एक ही नाम, चाहे संस्कृतमें ही क्यों न रख लेते, बड़ी भारी लड़ाई हो जाती।

हमारे देशमें एक बहुत धनी परिवारने एक बड़े फक्कड़की सेवा की। वह ऐसा फक्कड़ था कि कब कहाँ बैठे, सोये या खाये, इसका ठिकाना नहीं। उन लोगोंने उसे खिलाया-पिलाया। उनके मनमें धनकी इच्छा थी। उस फकीरने कहा : 'जाओ, तुम डें-डें-डें बोलो।' इतना बड़ा धन उस परिवारको प्राप्त हुआ कि आँकना मुश्किल है। यह फकीरी-शास्त्रका प्रताप है। संसारमें जितने शब्द और रूप हैं, वे सब ईश्वरके नाम-रूप हैं। सब नामोंमें वह अनाम है, सब रूपोंमें वह अरूप है; क्योंकि उसके नाम-रूप कल्पित हैं। यह नामका खण्डन नहीं, समर्थन हुआ। जिस नामको तुम श्रद्धासे ईश्वर समझकर लोगे, वह ईश्वरका ही नाम होगा। जिस रूपको तुम श्रद्धासे ईश्वर समझकर पूजोगे, वह ईश्वरकी ही पूजा होगी। इसीका नाम है सनातन-धर्म।

एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।

एक सत्यका विद्वानोंने तरह-तरहसे वर्णन किया है। आपको यह कल्पना क्यों नहीं होती कि सब अपने-अपने गुरुको ईश्वर मानते हैं, तो कितने ईश्वर हैं? श्रद्धा क्यों नहीं होती? सब गुरुओं में एक ही ईश्वर है। लड़ाईकी कोई आवश्यकता ही नहीं। सनातन धर्ममें मानते हैं कि पति परमेश्वर हैं। सब स्त्रियोंके अपने पति परमेश्वर हैं। अर्थात् सबमें ईश्वर है, तुम ईश्वरभावसे उनका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ध्यान-भजन करो तो तुम्हें ईश्वरके ध्यान-भजनका फल प्राप्त होगा। सबकी माँ जगज्जननी जगदंबा है। पिता परमपिता है। पति परमपति है। पुत्र बाल-गोपाल और पत्नी महालक्ष्मी है। तात्पर्य यह कि सिवा परमात्माके दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जहाँ जिसका श्रद्धाभाव जुड़ता है। वहाँ ईश्वर निकल आता है। यह परमात्माका स्वरूप है।

वेदमें चाहे जिस यज्ञ-उपासना, देवता-कर्मका वर्णन हो, ईश्वरका वर्णन है। सब वेद शालग्रामकी गोलीमें गोल ईश्वरका वर्णन नहीं करते, व्यापक ईश्वरका वर्णन करते हैं। शिवलिंगमें लम्बे ईश्वरका नहीं, परिपूर्णतमका वर्णन करते हैं। बनायी गयी मूर्तिमें जबसे बनी तबसे वही, अविनाशी ईश्वर प्रकट हो रहा है। वेद चाहे जिस सम्प्रदाय नाम, रूप, व्यक्ति, क्रियाका नाम लेकर वर्णन करें, वह है परमेश्वरका ही वर्णन। सोनेके हजार जेवर हों—कंगन, कर्णफूल, हार, सारा सोना ही है। महिमा शकलकी नहीं, सोनेकी है।

भूत-भविष्य-वर्तमान, कंकड़-पत्थर सब परमात्मा है। लोक-व्यवहारमें वेद यह भी बताते हैं कि अग्निर्हिमस्य भेषजम्—ठंड लगे तो आग तापो, अग्निका प्रयोग करो, कमरेमें हीटर लगाओ। दूसरी ओर वेद यह भी बताते हैं कि 'यह धर्म-कर्म करो तो तुम्हारी अन्तरात्मा ऊर्ध्वगति या अधोगति प्राप्त करेगा। ऐसी उपासना करो तो तुम इष्टदेवके लोकमें जाओगे और ऐसी वस्तु जान लो तो तुम ही तुम रहोगे।' ये दोनों बातें वेद कहते है।

एक सज्जन कानपुरमें हमें अपने कपड़ेकी दूकानपर ले गये। तब वे गरीब थे। वे पाकिस्तानसे सब छोड़कर आये थे। अब बड़े

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

धनी हो गये। मैंने उनकी दूकानके नौकरोंके सामने ही पूछा : 'तुम क्या कहकर कपड़े बेचते हो ?'

वे बोले : 'हम बताते हैं कि यह कपड़ा बहुत बढ़िया है, इसका सूत अच्छा है : फिर बताते हैं : वैजयन्तीमाला यह पहनती है, इन्दिरा गांधीको यह बहुत पसन्द है। बादमें कहते हैं : यदि तुम यह वस्तु ले लो, तो तुम तुम ही रहोगे।'

पहले वस्तुकी प्रशंसा की, अन्तमें यह बात कहनी पड़ती है। वेदान्तका ज्ञान स्वरूपसे उत्कृष्ट है। शिष्टपुरुषोंद्वारा गृहीत-समादृत है। इसमें केवल आत्माकी अद्वैत-सत्ता रह जाती है।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति।

केवल उपनिषद् नहीं, भक्ति, ज्ञान, धर्म, योग, सभी शास्त्र परमात्माको ही प्रतिपादित करते हैं कि अन्ततोगत्वा सभी आत्माके स्वरूपमें ही पर्यवसित होते हैं। कोई कहे : 'तुम बहुत बढ़िया-बढ़िया काम करो,' तो इसमें उसका क्या अभिप्राय हो सकता है? जो बढ़िया काम करेगा, वह लोककी तो सेवा करेगा ही, खुद भी बढ़िया होगा। आज लोग स्मरण करते हुए कहते हैं कि 'रघु, राम, जनक या अश्वपतिने बहुत बढ़िया काम किये।' यहाँ अभिप्राय आत्माके कर्मजन्य उत्कर्षमें ही है। जो कहते हैं कि 'खूब बढ़िया-बढ़िया ध्यान करो, तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा, तुम उत्तम मनुष्य हो जाओगे,' तो यह भी उत्कर्षका ही प्रतिपादन है। जो कहते हैं कि 'निर्वासन हो जाओ, शान्त हो जाओ, छोटी-छोटी चीजोंके लिए भटको मत,' तो यह भीआ त्मोत्कर्षका प्रतिपादन है। इसीका नाम योग है। जो यह कहते हैं कि 'तुम्हें अपने स्वरूप-की चमकके लिए कुछ करनेकी जरूरत नहीं, बिना योग-उपासना-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaipayan Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कर्मके तुम्हारा स्वतःसिद्ध स्वरूप ऐसा ही है, तो वे भी आत्माकी उत्कृष्टता ही प्रतिपादित करते हैं।

श्री रामानुजसम्प्रदायकी मान्यता लोकविलक्षण है : 'कर्मयोग यानी बहिरंग धर्म और उपासना यानी अन्तरंग धर्म। ये ज्ञानयोगके साधन हैं। इनसे सुगम साधन है 'आचार्याभिमान'। अर्थात् 'अमुक गुरु हमारे हैं, अमुक सम्प्रदाय हमारा है, अमुक मन्त्रसे हम दीक्षित हुए हैं, हम अमुक देवताके प्रपन्न हुए हैं तो हमारे कल्याणमें कोई शंका नहीं।' इसका तात्पर्य यह कि सृष्टिमें चाहे कर्म, उपासना, अष्टाङ्गयोग या तत्त्वज्ञानका प्रतिपादन किया जाय, उसके द्वारा वेदोंका अभिप्राय ही व्यक्त होता है।

'तुम उस अवस्थामें पहुँच जाओ, जहाँसे धर्मकी शक्ति तुम्हें उठा नहीं सकती। अधर्मकी शक्ति तुम्हें गिरा नहीं सकती। जहाँ स्वाभाविक प्रकृति तुम्हें उठा-गिरा नहीं सकती। कालका प्रभाव तुमपर नहीं पड़ सकता। उस अचल पदको प्राप्त करो, अनुभव करो।'

यत्परो नास्ति—जिसके परे कोई उत्कर्ष नहीं, उस आत्माके चरम-परम उत्कर्षको सम्पूर्ण वेद समन्वित रूपसे दिखाना, अनुभव कराना चाहते हैं। जो पर्दा पड़ गया है, उसे फाड़ डालना चाहते हैं। आमनन्ति—जिसके निरूपण-मात्रसे यह पर्दा दूर हो जायगा।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति इसके लिए श्रीमद्भागवतमें बहुत सुन्दर एक श्लोक है :

बृहदुपलब्ध मे तदवयन्त्यवशेषतया।

चाहे नाम कुछ भी लो। हमारी ओर गाँवोंमें लोगोंके नाम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidyaraj Collection Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

बड़े विचित्र होते हैं : घसीटा, नेऊर, मूसा, गिलहरी। नाम कुछ भी रख लें, पर वह रहता तो है आदमी ही। वैसे ही नाम कुछ भी रख लें, रहता ब्रह्म ही है। दिवालीमें चीनीके विविध आकृतिवाले खिलौने लाते और खीरके साथ खाते हैं! घोड़ा-गधा या औरत-मर्दकी शकलोंमें होती है चीनी ही। इस उपलब्ध संसारमें नाम-रूपके आकारका बाध कर दो, तो उसका उपादान तत्त्व सर्वथा ब्रह्म ही हाथ लगेगा।

अवशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाविकृतात्। सम्पूर्ण कार्य-कारणभाव उसीमें उदित होते हैं, सर्वविकार उसीमें उदित होते हैं, पर स्वयं उसमें कोई विकार नहीं होता।

अत ऋषयो दधुः, त्वयि मनोवचनाचरितम्। ऋषयः= मन्त्राः, वेदाः, महात्मनः। अर्थात् ऋषि लोग जो बोलते हैं सो परमात्माका, ब्रह्मका नाम है। महात्मा किसीको बेवकूफ ज्ञानी या दोनों कहे तो वह ब्रह्मका ही नाम है। श्रीविष्णुसहस्रनाममें भगवान्‌का एक नाम 'अविज्ञाता' बताया है। जो न जाने वह 'अविज्ञाता' है। भक्तजी इसकी व्याख्या करने लगे : 'जो अपने सेवकके दोषको न जाने!' जितने नाम-रूप हैं, सब उसीके हैं! लोगोंकी दृष्टिमें महात्मा अण्टसण्ट बोलता है, पर स्वयं वह जानता है कि हम अपने सोनेको ही सुअर, हाथी, घोड़ा, हयग्रीव, गणेश, वराह कहते हैं। लेकिन मनुष्य समझता है कि 'महात्मा घोड़े, सूअर, हाथीकी शक्लको बुला रहे हैं।'

लोग पाप न करें, इस प्रयोजनसे उसी परब्रह्म-परमात्मामें नरकका नाम-रूप अध्यारोपित है और लोग पुण्यकर्म या सामाजिक सेवाके लिए प्रवृत्त हों, इस प्रयोजनसे उसीमें स्वर्गका नाम-रूप अध्यारोपित है। लोग कर्मयोग करें, इसलिए जनकका और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

शास्त्रका स्वाध्याय करें, इसलिए व्यासका; मनुष्य रोगी लोगोंकी चिकित्सा करें, इसलिए अश्विनीकुमार और धन्वन्तरिका; ज्ञानोपदेशके लिए कपिलका; वैराग्यसे रहें, इसलिए दत्तात्रेय-ऋषभदेव' वामदेव आदिका नाम उसी एक परब्रह्म परमात्मामें कल्पित है। प्रयोजन विशेषसे नाम-रूप-गुणोंकी कल्पना कर परमात्माका वर्णन किया गया है। सब दत्तात्रेय ही हो जायँ तो? ऐसा न हो इसीलिए सीताराम और लक्ष्मीनारायणके वर्णन द्वारा लोगोंको घर-गृहस्थीमें रहनेके लिए भी कहा गया।

तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति

और

कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम्। मनुष्य पाँव रखकर चलेगा तो धरतीपर ही। वह जो बोलेगा, सोचेगा वह परमात्मा ही होगा, क्योंकि उसके सिवा अन्य कुछ है ही नहीं।

हमारे बाबूलोग कहते हैं: 'ईश्वर-ईश्वर करनेवाले लोग पराधीन मनोवृत्तिके हैं।' संसारमें आगे किसी भी विज्ञान महाविज्ञानका उदय हो, मनविषयक सोचने और वाणी द्वारा बोलनेका स्वातन्त्र्य प्राप्त नहीं हो सकता। जीवन्मुक्ति अर्थात् जो बोला-सोचा जाय, वह परमात्माके सिवा कुछ है ही नहीं, इतनी बड़ी स्वतन्त्रता संसारमें तुम्हें किस संविधान द्वारा प्राप्त हो सकती है? उपासना, धर्म, योग, राजनीति, संविधान कोई तुम्हें इतना बड़ा स्वातन्त्र्य नहीं देते:

जहँ-जहँ चलौं सोई परिकरमा, जो जो करे सो सेवा।

अथवा—

यद् यत् कर्म करोमि तत्-तदखिलं शम्भो तवाराधनम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vyapak Parampara Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जब पहचान गये कि यह अमृतका समुद्र है, उसे उछालें, पियें, आबदस्त लें, तैरें, डूबें। मरनेका कोई भय नहीं; क्योंकि हम पहचानते हैं कि यह अमृत है, ऊपर-नीचे आदि दसों दिशाओं और बाहर-भीतर इन—बारहोंकी कल्पना जिसमें है, सो भी और इनके द्वारा कल्पित सब परब्रह्मके सिवा कुछ नहीं है।

तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। तपस्याके नामसे डरिये नहीं। धन कमानेके लिए ऑफिसमें छः घण्टा पैर लटकाये बैठना भी तप है। श्रीमानोंका धरतीपर बैठकर सत्सङ्ग करना भी तप है। संसारीके यहाँ होनेवाले समारोहकी रौनक, तड़क-भड़क और खटाखटको सहना हमारे संन्यासी लोगों लिए तप है। वहाँ ऐसी कोई चीज नहीं होती, जिसे हम आँख खोलकर देख सकें।

'तपस्या'का अर्थ आग तापना, पानीमें खड़े रहना या जाड़ा सहना ही नहीं। हमारी इन्द्रियोंकी भोगार्थप्रवृत्तिको संयमित करना तप है। संसारके विषयोंको पाकर ये इन्द्रियाँ रसीली होती हैं। इसका तात्पर्य है कि अपने अन्दर ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसे देखकर तुम रसका अनुभव करो। मैंने एक मजदूरसे पूछा : 'तुम सिनेमा देखने क्यों जाते हो ? दिनभर हथौड़ा चलानेपर जो थोड़ी-सी तनख्वाह मिलती है, उसको क्यों व्यर्थ नष्ट करते हो ?'

वह बोला : 'महाराज, हमारे घरमें बैठनेकी जगह नहीं है। हमारा घर ही नहीं है। झोपड़ीमें रहते हैं। थोड़ी देरके लिए हमें सिनेमामें जानेपर अच्छे मकानमें बैठना, अच्छे दृश्य देखना, अच्छे लोगोंमें बैठना मिलता है।'

जिसके घरमें सुख नहीं, भीतर ठनठनपाल है, वही बाहर मजा लूटने जाता है। हमारे गांवके किसी एक गरीबने तीस-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaipanasi Collection Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

दिनका तप कर रखा था। उसने ठीक भोजन पानेके लिए पहलेसे ही तय कर रखा था कि अमुक दिन अमुक गाँवमें अमुकके घर मेहमान होंगे।

हम अपनी नेत्रादि इन्द्रियोंकी मोटरपर चढ़कर देखने-सुनने आदिके लिए दिन-रात दूकानकी शरण लेते हैं। पाँचों इन्द्रियोंके पाँच रास्ते हैं। लेकिन क्या घर अर्थात् अपने हृदयमें तृप्तिका कोई साधन नहीं है?

तुम्हारा यह हृदय मामूली नहीं है। तुम सम्राट् हो! 'क' से गिनो तो १६ और २१वें अक्षरसे 'तप' बनता है। श्रीमद्भागवतमें बताया है: स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशम्।

ब्रह्मा पैदा हुए तो उन्हें सब सूना दीखा। तब आकाशवाणी हुई 'तप-तप'। तप करनेपर ब्रह्माजीको परमात्माके दर्शन हुए।

तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।

जहाँ मृत्यु बोल रहा है कि 'तुम ब्रह्म हो' वहाँ यदि तप बोले कि 'तुम ब्रह्म हो' तो क्या आश्चर्य? अशेष-विशेषका निषेध होनेपर जो सर्वाभावरूप मृत्यु है, वह सामने खड़ा होकर बोल रहा है: 'तेरे सिवा कुछ नहीं है।'

देखिये: मनमें काम आया तो कामाकार परिणामको प्राप्त चित्तवृत्तिका विषय स्त्री या पुरुष तुरन्त उपस्थित हो जाता है। आँख बन्द होनेपर भी स्वर्गकी अप्सरा चाहे घरकी देवी, कोई न कोई विषय उपस्थित होगा। काम न हो तो मन निर्विषय, संविन्मात्र होगा। 'निष्काम' शब्दका वाच्यार्थ है निर्विषय संवित्। निष्कामता तप है। आत्मा निर्विषय संवित्-रूप है। इसे ब्रह्म बताना केवल वेदान्तका काम है। यदि तुम निष्काम हो जाओ,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection, Vimarsh Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

तो निर्विषयताके सिवा तुम्हारे हृदयमें क्या है ? यही वाच्यार्थ हुआ। इसे देहकी उपाधिसे शोधित करके वेदान्त कहता है : 'ब्रह्म है।'

उपादेय-बुद्धिसे ज्ञानका घनाकार होना मनमें लोभ है। मोटर, मकान, सोना-चाँदी, नोट, जमीन कोई न कोई विषय मनमें आयेगा तब लोभ होगा। निर्विषय मन यानी निर्धन अर्थात् निर्विषय संवित् आत्माका रूप है। निर्लोभ चैतन्यरूप संवित् ब्रह्म है।

मनमें क्रोध दो तरहसे आता है। क्रोधावेशमें चाहे अपना सिर फोड़ो या दूसरेका, हैं तो दोनों बुद्धिसागर ही। आत्मा दोनोंमें एक है। क्रोधमें शत्रुरूप विषयाकारताको प्राप्त वृत्ति होती है। शत्रु भीतर नहीं होता। वह तो विलायतमें होगा, मात्र वृत्ति उसका आकार ग्रहण कर लेती है—'वह दुश्मन तुम्हें दीख रहा है।' जबतक दुश्मन न दीखे तबतक क्रोध ही कैसे ?

जाके समुहै दुश्मन दीखे,
ताके जीवनको धिक्कार।

गाँवमें इस प्रकार आल्हा गाते हैं। तुम चाहते हो, हमारा दुश्मन गाँवमें, धरतीपर न रहे। लेकिन गुस्सा करके तुमही उसे अपने कलेजेमें बिठा रहे हो। जहाँ अपना प्रीतम रहना चाहिए, वहाँ शत्रुको बिठाया ! एक गोपीने एक दिन कृष्णकी जगहपर हृदयमें सौतको बिठा लिया तो फूल मुरझा गये, पर वह उसकी माला बनाकर कृष्णको पहना न सकी। बादमें इसकी सुध हुई तो बहुत रोयी-पछतायी पर समय तो बीत ही गया; हृदयको एकबार तो कलुषित कर ही दिया। यह है चित्तमें ईर्ष्या-द्वेषका परिणाम !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaipamani Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अक्रोध होनेपर चित्त क्रोध-विषयके राहित्यसे उपलक्षित-संवित्-मात्र रहेगा। यही तुम्हारा ज्ञानस्वरूप है, यह तप है।

निष्काम, निर्लोभ, निष्क्रोध होनेपर भी हृदयमें मोह होगा तो परिवार आयेगा। निदान भी होना चाहिए; क्योंकि दानके समय बाँटना पड़ेगा। दानकी वस्तु और विषय देह सामने रहेंगे, तो स्वरूपज्ञान नहीं होगा। उसके लिए निष्क्रिय होकर बैठना पड़ेगा। निर्दय होना होगा, नहीं तो दयाका विषय सामने आयेगा। आत्मज्ञानका प्रशस्त मार्ग और बाहरकी खटपट-आन्दोलन, दोनों एक बात नहीं हैं।

निरुपास्य या उपास्याकारविरहित वृत्ति तप है, संवित्-मात्र है। स्थैर्य यानी कर्तृत्वपूर्वककी पकड़ और चांचल्यसे विरहित संवित्-मात्र वस्तु, जो आकार-परिणामको शान्त कर दे वह, तप है। चित्तकी शान्तिका नाम तप है।

यदि सद्‌गुण अनेक होते तो उन्हें धारण करनेमें बड़ी कठिनाई होती। किन्तु दुर्गुण अनेक हैं, सद्‌गुण एक है, इसलिए उसे धारण करनेमें सरलता है। यह सभ्यतावाली सद्‌गुणकी बात नहीं। उससे पृथक् बाप-दादोंसे जो सद्‌गुण चले आये हैं, वह संस्कृति है। सभामें जिस भलमनसाहतके साथ रहते हैं, वह सभ्यता है। कपड़ा उधार या किरायेपर लेकर भी सभामें जाकर सभ्यता बनायी जा सकती है, संस्कृति नहीं। वह तो भीतरसे निकलती है। तप न बाहरसे आता है, न भीतरसे निकलता है। वह तो आत्मवस्तुके स्वातन्त्र्यका उद्दाम उद्घोष है।

काममें स्त्री-पुरुष, क्रोधमें शत्रु, मोहमें परिवार, दयामें दुःखी तो उपासनामें उपास्य मनमें आते हैं और ये सब अलग-अलग हैं। किन्तु शान्ति एकरूप है। इन सबका मनमें न होना चित्तकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

शान्ति है, जो सद्गुण है। सद्गुण एक है। वह परब्रह्म परमात्माका ज्ञान नहीं, तप है। कुटुम्ब, धन, शत्रु, स्त्री-पुरुष एक-एक दुर्गुण हैं। प्रत्येक अपनी-अपनी शक्ल लेकर आता है। गुस्सेका दाँत निकला हुआ है, विकराल मुँह है। लोभकी आवाज मीठी है। कामके चेहरेपर मुस्कान है। इनके न होनेपर शान्ति निराकार हैं। यह अमृत-सरोवर है जिसमें संसारके नाम-रूपकी तरंगें उदित नहीं होती। ऐसे संवित्-समुद्रको ही 'तप' कहते हैं।

देहके दुराग्रह : मोह, लोभ, काम, क्रोध, अज्ञान, अहंकार आदि—के कारण तुम अपनेको परमात्मासे अलग एक इकाईके रूपमें मान रहे हो, यह तुम्हारी भूल है—यही तप बताता है। सारी तपस्या उसी परमात्माका उपदेश करती है। दुर्गुण ग्रहण करनेमें बड़ा कष्ट है। किसी आदमीकी सच-सच मालूम हो तो दो टूक कह देगा, उसे याद रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं! यदि उसे झूठ कहना पड़ा, तो एक-एकसे अलग-अलग बात करनी होगी। झूठ अपनी शक्ल बदलता है, सत्य नहीं—यही सत्यकी पहचान है।

निर्लोभ निश्चिन्त है, लोभके सिरपर बड़ा बोझ होता है। एक आदमी चोरी करने जायगा तो वह सोचेगा—कहीं सुराग न लग जाय, घरवाला या पड़ोसी पुलिसको खबर न दे दे। लेकिन सद्गुणमें निरुद्वेगता, निर्भयता है। तब उसकी बुद्धि सत्य यानी परमात्माकी खोजमें ही लगती है।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।

आपकी चर्या कैसी है? किसके जैसी है! जड़-चर्या है, भूत-चर्या है, पशुचर्या है, मनुष्य-चर्या है, देवचर्या है या ब्रह्मचर्या?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ब्रह्मचर्यं चरन्ति—ब्रह्मचर्य अद्भुत है। ब्रह्मचारीका ब्रह्मचर्य यह है कि उसने ब्याह तो नहीं किया, पर आगे ब्याहकी सम्भावना है। वर्तमानमें वह ब्रह्मचर्यसे रहता है। गृहस्थने ब्याह तो किया है, पर अपनी पत्नीके सिवा अन्य किसी स्त्रीपर वह दृष्टि नहीं डालता तो वह ब्रह्मचारी है। वानप्रस्थका ब्रह्मचर्य यह है कि पत्नी उसके साथ रहती है, फिर भी वह ब्रह्मचारी है। संन्यासीके साथ पत्नी नहीं रहती, आगे पत्नी होनेकी संभावना भी नहीं, अतः वह भी ब्रह्मचारी है। ये चारों ब्रह्मचारी हैं।

ब्रह्मचारीको अपने नामके साथ बाल-ब्रह्मचारी या बाल-योगी जोड़ना, चमत्कारी बनना आवश्यक नहीं। उसकी चर्या (रहनी) ब्रह्मवत् हो। वह अपनेको ब्रह्म नहीं जानता, जैसे ब्रह्म अपनेको किसी नाम-रूपमें आबद्ध नहीं करता। यदि तुम अपनेको ब्रह्मरूपमें जानना चाहते हो तो अपने साधन-भजन-अभ्यासमें ब्रह्मकी चर्या करो। भले सारे नाम-रूप, वस्तुएं आयें-जायँ। असंगता-अलेप ही ब्रह्मचर्य है।

तुम व्यक्तिरूपसे ब्रह्मचर्य क्यों कर रहे हो? व्यक्तिरूपसे ब्रह्मचर्य है ब्रह्मकी उपलब्धिके लिए।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।

संसारमें राग-द्वेष बहुत बड़ा बखेड़ा है। सम्प्रदाय, पोथी, उपासना, इष्टका भी आग्रह होता है। जबतक आदमी नहीं समझता कि सत्य क्या है और उसके पहले कहीं स्थिर हो जाता है तो वह एकको दुराग्रहपूर्वक पकड़कर दूसरेका खण्डन करता है, निन्दा करने लगता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Raj Guru Math Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

स्वयं नष्टः परान् नाशयति। ऐसे लोग स्वयं तो अंधेरेमें ही भटक रहे हैं, दूसरोंको भी अंधेरेमें भटकाते हैं। इसी श्रुतिमें कहा है :

अंधेनैव नीयमाना यथान्धाः।

यदि एक अन्धा आगे-आगे चले और उसकी पीठपर हाथ रखकर चाहे सौ अन्धे क्यों न चलें, एक अन्धेको जो चीज नहीं मिल सकती, वह सौ अन्धोंको भी नहीं मिल सकती। फिरका-परस्त, पन्थाई लोगोंको परब्रह्म परमात्माका ज्ञान नहीं हो सकता। इसमें रास्तेकी जिद नहीं चल सकती। यात्रा करते हुए बीचमें बस, ट्रेन, प्लेन बदलनेकी आवश्यकता होते हुए भी कोई उसे न बदले गन्तव्यपर नहीं पहुँच सकता। वह गन्तव्य पथपर जाना चाहता है या सवारीका आग्रह करके बैठा है? मोटरमें आग लगनेपर भी न उतरे, तो क्या परिणाम होगा? ऐसे ही पन्थाई अपनी मोटरमें ही जान देते हैं। दुराग्रह पन्थका नहीं, गन्तव्यका होना चाहिए। सत्यको जानकर आग्रह करना उचित है। जैसे सर्वनामरूप-परिस्थितिमें रहकर भी ब्रह्म असंग-अलेप है, वैसे ही तुम्हें भी संसारकी प्रत्येक परिस्थितिसे अलेप रहकर आगे बढ़ना पड़ेगा।

हम घटका उच्चारण करते हैं और हमारे सामने घट रहता है। ऐसे ही ॐ बोले' तो वह किसका नाम है? इसमें तीनमें-से कोई एक बात होनी चाहिए : (१) वह हमारे सामने आना चाहिए। यदि ॐकारका वाच्यार्थ हमारे सामने उपस्थित नहीं होता तो या तो (२) उसका नाम ॐकार नहीं है या (३) ॐकार बोलते समय वह हमारे सामने आता तो है, हम केवल उसको पहचानते नहीं। सर्वविषयका परित्याग कर ॐकारका उच्चारण करते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

समय केवल संविन्मात्र रह जाता है। उस ॐकारका वाच्यार्थ ईश्वर तुम्हारे हृदयमें अपरोक्ष होता है या नहीं होता ?

तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्। ॐकार संग्रह है। ज्ञान-दीपकको प्रज्वलित करनेके लिए, ज्ञानमणिको उद्भासित करनेके लिए, ज्ञानसूर्यको उदित करनेके लिए, परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिके लिए सृष्टिमें जितने साधन और उपाय हैं, उन सबका मूर्धन्य यह ॐकार अर्थात् संग्रह है, संक्षेप है। अब इस एक अक्षरका भी क्या संक्षेप किया जाय ? सारे शास्त्र वेदमें, वेद-गायत्रीमें और समूची गायत्री ॐकारमें संगृहीत हैं। ॐकारसे बढ़-कर क्या होगा ?

किसी चीजका विवेक करना हो, तो उसका वर्गीकरण किया जाता है। जाग्रतावस्थामें जो कुछ मालूम पड़ता है, उसका वर्गी-करण करनेपर पति, पुत्र, धन-दौलत, मकान, स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, यज्ञ-याग, धर्म-उपासना, मन्दिर, आना-जाना, लम्बाई-चौड़ाई, उमर, वस्तु आदि गिनने लगेंगे। ये सब जिसे जाग्रतमें मालूम पड़ता है उसको 'अ' बोलते हैं। स्वप्नावस्थामें मालूम पड़नेवाला सब 'उ' है। शान्त, सुषुप्ति, समाधि दशामें कुछ न मालूम पड़ना 'म'कार है अर्थात् न मालूम पड़नेको जो देखता है, उसे 'म' कहते हैं। विश्व-तैजस-प्राज्ञ, विराट्-हिरण्यगर्भ-ईश्वर क्रमसे अ-उ-म है। इस ॐकार में अमात्र छिपा है, वह है आत्मा, तुरीय, शुद्ध साक्षी, ब्रह्म। उसमें न जाग्रदादि संज्ञा है, न विश्वादि। वह एक अद्वितीय ब्रह्म है।

(१) विश्वादि रूपोंका अवस्थात्रय, अवस्थाभिमानी और अवस्थाओंका दृश्य इन सबका संग्रह करके जो इनका अधिष्ठान बना हुआ है, जो साक्षी, स्वयंप्रकाश, अद्वितीय, परिपूर्ण, अविनाशी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection. Vivekananda Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अद्वय है, उस प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न ब्रह्मको ही ॐ बोलते हैं। यह प्रमाण-प्रतिपन्न है। यहाँ श्रुति कहती है : 'यह तुम हो।'

(२) हमारे जिलेमें एक सूरदास थे। हमने उनका दर्शन किया है। उनका कहना था कि : 'सृष्टिमें अबतक जितने शास्त्र हुए हैं, और प्रकट होंगे, वे सब हमारे अन्तःकरणके एक-एक कणमें भरे हुए हैं।' वे थे तो अन्धे! आजकल बाजारमें जो ग्रन्थ मिलते हैं, उनमें बहुत सारे उनके बताये निकल चुके हैं। उनसे पूछा गया कि : 'प्राचीन संस्कृत-शास्त्रमें शस्त्रास्त्रकी कोई विद्या है या नहीं?'

वे बोले : 'हैं।' फिर उन्होंने 'समराङ्गणोद्धार' ग्रन्थ लिखवा दिया। ऐसे अनेक ग्रन्थ उन्होंने लिखवाये, जो आज सृष्टिमें कहीं नहीं मिलते। ये लाख-लाख श्लोकोंके एक-एक ग्रन्थ हैं।

डॉ॰ भगवानदास उनके पास गये और बोले : 'हम तत्त्वज्ञानकी ऐसी प्रणाली समझते हैं कि जिसमें 'मैं यह नहीं हूँ' : 'अहम् एतत् न।' क्या कोई प्राचीन शास्त्र ऐसा है, जिसमें इस ढंगसे विचार किया गया हो? जब अपनेको सबमें मिला देते हैं तो अपनी विशेषता खो देते हैं और जब नेति-नेति द्वारा निषेध करते हैं तो अपनी वास्तविक विशेषता जानकर फिर सब विशेषताओंके समान उस विशेषताका भी बाध कर देते हैं।'

उन्होंने बताया : प्राचीनकालमें 'प्रणववाद' नामक एक ग्रन्थ था और गार्ग्यारण ऋषिने उसकी रचना की थी। उसमें कुल २२००० श्लोक हैं।'

काशीसे महामहोपाध्याय अम्बादास शास्त्री और डॉ॰ भगवानदास उनके पास गये और उन्होंने वह समूचा ग्रन्थ लिखवा दिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajpayee Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जब वह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, उन दिनों वे मद्रासमें थे। उसमें डॉ० भगवानदासकी बहुत बड़ी भूमिका छपी है जिसका सारांश है :

(१) 'अ'=अहम्, 'उ'=एतत् और 'म'=नहीं। 'अहम् एतत् न।' देहादिरूपं यत् अहम् आत्मानम् अनुभवामि, तत् अहं नास्मि : अर्थात् यह जो मैं अनुभव करता हूँ कि मैं देहादि-रूप हूँ, वह मैं नहीं हूँ।' यह देह तो बहुत बड़ा कोश है। देहके भीतर इन्द्रियोंका, इन्द्रियोंके भीतर प्राणोंका, प्राणोंके भीतर मनका, मनके भीतर बुद्धिका कोश है। जैसे पाँच कपड़ोंके भीतर रोशनी जलायी जाय तो उनमेंसे छन-छनकर रोशनी निकलती है, वैसे ही इन पाँच कोशोंमेंसे मैं, आत्माका प्रकाशन होता है। बिलकुल प्रथम वस्त्रसे प्रथम तादात्म्य हुआ और उसी क्रमसे द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चमसे तादात्म्य हुआ। पाँच तहवाले कपड़ेपर पानी डाला जाय, तो वस्त्रसे पानीका संयोग भी उसी क्रमसे होगा। इसी प्रकार यह शरीर जो द्रव्यरूप है, उसमें इन्द्रियों द्वारा क्रिया हो रही है। उनमें प्राणोंका संचार होता है। मनमें संकल्प-विकल्पका उदय होता है। बुद्धिमें निर्णय-निश्चय होता है। उसीकी जो शान्ति-दशा है, उससे आत्माका प्रथम तादात्म्य होता है। शान्तिके बाद निर्णय, फिर संकल्प-क्रिया और द्रव्य! शरीर बल्ब है, आत्मा रोशनी है। एक ही रोशनी भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रकट हो रही है।

(२) पहले देहसे कहो : 'अहम् एतत् न'—मैं चैतन्य विद्युत् हूँ, शरीर-इन्द्रियाँ नहीं।' इसी क्रमसे निषेध करते जाओ कि 'मैं प्राणसे, संकल्पसे, निर्णयसे, शान्तिसे जुड़ा हुआ नहीं हूँ।' यह दो नम्बरकी बात है। प्रथम नम्बरकी बात है : 'जाग्रतादिमें एक अखण्ड चैतन्य है।' पञ्चकोशसे अपनेको न्यारा करके 'ॐ' बताता है कि 'अहम् एतत् न।'

RajGuru Math, Shivalaya, Guru Math Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

(३) हम अपने मन ही मन ॐकारका उच्चारण करें। स्त्री-पुत्र, धन, धर्म, पशु, मनुष्य, शब्दादि पञ्च विषयोंका ध्यान छोड़ दो। 'ओ···म्'में एक नाद है, एक बिन्दु है, शान्ति है, निवृत्ति है, विद्या, ऐश्वर्य और वैराग्य है। बड़ी विलक्षण वस्तुएँ, सारी सृष्टि इसी एक ॐमें भरी हैं। ॐका उच्चारण करें तब ध्यान तो होगा पर विषय न होंगे—'संविन्मात्र स्थिति' होगी।

आजकल लोग शब्दोंका अर्थ तो ठीक समझते हैं। यह तुलसीका पत्ता है। इसका चाक्षुष प्रत्यक्ष हो रहा है। नाम 'तुलसी' है, यह आँखसे नहीं मालूम पड़ता, हरा रङ्ग मालूम पड़ता है। नाम अन्तःकरणसे मालूम पड़ता है। कैमरेसे जब फोटो लेते हैं तो बाहरवाली चीज कैमरेके शीशेसे होकर वहाँ पहुँच जाती है जहाँ फोटो निकलती है। आँख तो कैमरेपर लगा शीशा है। उसके भीतर फोटो लेनेकी जगह है, वहाँ तुलसीके पत्तेकी छाया पड़ती है, तब हमारा अन्तःकरण और तुलसीके पत्तेकी छाया दो स्थानोंमें नहीं रहते। एक ही प्रकाशकसे वे प्रकाशित होते हैं और कल्प्यमान तुलसीदल और कल्पनामात्र अन्तःकरण अर्थात् कल्प्यावच्छिन्न चैतन्य और कल्पनावच्छिन्न चैतन्य दोनों एक होनेपर तुलसीका पत्ता ग्रहण होता है। तुलसीका पत्ता ही नहीं, कोई भी विषय अन्तःकरणमें न हो, तब ॐ, संविन्मात्र ज्ञान रहता है। जितनी देरतक ॐका उच्चारण होता रहेगा, उतनी देरतक यह ज्ञान मालूम पड़ता रहेगा। यह कालपरिच्छिन्न है और मालूम पड़ता है कि यह भीतर है, इसलिए देशपरिच्छिन्न भी है। यह भी मालूम पड़ता है कि यह विषयभावको ग्रहण कर रहा है। परन्तु असलमें वह न भीतर है और न बाहर; न ऊपर, न नीचे और न विषयाभाव-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ग्राही ही है। असलमें इसी संविन्मात्रका विचार करें तो देश-काल-वस्तु सबकी कल्पनाका प्रकाशक और कलके देश-काल-वस्तु तीनोंसे अवच्छिन्न चैतन्य चैतन्य दोनों एक हैं—ॐ इसी बातका बोधक है। इसलिए संविन्मात्र ॐका उच्चारण करके चित्तको निर्विषय कर, उसकी संविन्मात्रका अपरोक्ष कर, उस अपरोक्ष संवेदनको ब्रह्मरूपसे मालूम करना प्रणवका काम है। आँखें बन्दकर स्वर्गका ध्यान करना परोक्ष है, तुलसीका पत्ता प्रत्यक्ष है। संविन्मात्र, ज्ञानमात्र स्थिति-संवेदनमात्र जो न तुलसी-दलके समान प्रत्यक्ष है, न स्वर्गके समान परोक्ष। वह दिलमें है और अपना आप ही है।

(४) सभी उपनिषदोंमें एकवाक्यता होती है। मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्नाः स्त्री, बेटा, बाप सबकी मति भिन्न-भिन्न होती है। एककी नजरमें दूसरा पागल है, बेवकूफ है। यह पागलोंकी, बेवकूफोंकी भ्रान्त पुरुषोंकी दुनिया है। अपनी बुद्धिके अनुसार दूसरा न चले, तो वह बेवकूफ है। शास्त्र एकवाक्यता करके बोलते हैं। जो बृहदारण्यकमें है; वही कठोपनिषद्में है और जो कठोपनिषद्में है, वही छान्दोग्योपनिषद् और ईशावास्योपनिषद्में। जैसे : 'सौ सयाने एकमत।'

लम्बे प्रणवका उच्चारण करें : 'ओ······म्' लम्बा उच्चारण करनेपर आपकी सांस पूरी होती है। उच्चारणकी नोकपर यानी एक उच्चारण पूरा हो गया हो और दूसरा शूरू न हुआ हो—आपने फिर सांस न खींची हो—उस जगहपर एक-दो सेकण्ड टिक जायँ तो देखें, वहाँ कौन-सा विषय रहता है? अकार चला गया, उकार चला गया, मकार चला गया और अर्धमात्रा भी चली गयी। साँस-संकल्प खतम हो गया, वहाँ क्या रहता है? इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

प्रश्नके दो जवाब हैं : (१) कुछ नहीं रहता या (२) मैं रहता हूँ। कुछ-का न रहना और मैंका होना दोनों एकसरीखो बात है। वहाँ तो आप हैं और वह त्वं = अहम्-पदका अर्थ है। उसीको आप विवेक करके देखेंगे तो वही जो शेष रहता है वह ब्रह्म है।

नादान्ते सिद्ध भावितम्।

ॐकारमें एक नाद रहता है। नादका अन्त होनेपर जो चीज रह जाती है उसे ब्रह्मरूपमें देखो। अज्ञान-निवृत्ति करनेके लिए, दीपक प्रज्वलित करनेकी यह प्रणाली है।

(५) ॐमें नाद है। जहाँ ध्वनि है, वहाँ धक्का भी होता है। हम उच्चारण करते हैं, उससे आकाशमें एक आकृति बनती है। कंठ-तालुके आघातसे आवाज निकलती है। मन्दिरमें आप लोगोंने कभी घण्टा बजाया या सुना है। घण्टेमें अलग-अलग टन्-टन्-का आघात होता है। उनसे पृथक् उन टन्-टन्के मिलनेसे एक अखण्ड ध्वनि निकलती है। इसप्रकार ध्वनि अलग होती है और टन-टन अलग। आरती होते समय सुनिये। आंख बन्दकर तन्मय हो जाइये। बाजोंपर नहीं, सब मिलकर होने-वाली अखण्ड ध्वनिपर ध्यान दीजिये। टन्-टन् अलग-अलग उदित होनेपर भी शब्दतरङ्ग यानी आकृति है 'संसार' और अखण्ड ध्वनि है 'ॐकार'। नाम या ध्वनि और आकृतिकी पृथक्ता होनेपर भी सबमें जो एक अखण्ड ध्वनि है, उसमें ब्रह्म-चिन्तन कीजिए।

(६) आँख बन्द करके थोड़ा आँखपर हाथ लगायें, तो मालूम पड़ेगा। भीतर प्रकाशके बिन्दु छिटक गये हैं। यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vamanashram Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

नाद, बिन्दु और रेखा सृष्टिके निर्माणकी प्रणाली है। इसका क्रम है : पहले नाद, फिर कागजपर कलमसे रेखा खींचकर मेग्नीफाइंग ग्लाससे देखनेपर सब बूँद-बूँद अलग-अलग दीखेगा। प्रकाशकी बूँद और फिर रेखा। ॐमें जितनी रेखाएँ हैं, उनसे सब अक्षर बनते हैं। ध्यानके लिए संस्कृतमें पचास अक्षर हैं, छब्बीस नहीं। इन पचासों अक्षरोंको टुकड़े-टुकड़े कर दें, तो सब केवल ॐ पर रखे जा सकते हैं। आपके शरीरमें ॐकार भरा हुआ है। यह नाक ॐ के बीचो-बीच है। एक भौंह इधर, एक भौंह उधर, दोनोंके बीचो-बीचसे जो 'उ' जाता है, वह सिरमें जाकर बिन्दु बनता है। यह आपका मुँह नहीं, ॐकार है। दूसरा ॐकार हृदय, मध्यभाग है—दोनों हाथ और उसकी पूँछ। तीसरा ॐकार दोनों पाँवोंसे बनता है। यह शरीर ॐकारमय है। स्थूल ॐकार पाँवसे, सूक्ष्म ॐकार हाथ यानी कर्मसे और कारण ॐकार ज्ञान-की प्रधानता से बनता है। तीनोंमें जो एकत्व है, उसमें तीन बने ही नहीं हैं, वह है ब्रह्म।

समुद्र, दूध बूँद-बूँद है। प्रकृति अणु-अणु है। फिर भी उनमें अद्वितीयता होनेके कारण एक हैं। अक्षर, शब्द, वाक्य, नाम, आकृति, ऊँटकी गरदन, जिराफ, घोड़ा, आदमी सब अलग-अलग शक्लें होनेपर भी रेखा ही हैं। बूँद-बूँदसे बने अक्षर और शब्दोंमें कल्पित भाव और कल्पित अर्थ भरे जाते हैं। लाल झण्डी दिखानेपर रास्ता बन्द होता है और हरी झण्डी दिखानेपर रास्ता खुल जाता है। बूँदपर ऊपर-नीचे रेखा खींची जाती है। सारा खेल बिन्दुओंका है। हमारी शक्ल बापके बिन्दुका फल है। वही फैल-कर गोरा-काला, ऊँचा-नीचा, दुबला-पतला, छोटा-बड़ा, सिकिया-हथिया बन गया है।

यह बिन्दु कहाँसे फैला ? यह कण अणुसे, अणु परमाणुसे, पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vajramani Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

माणु शक्तिसे, शक्ति प्रकाशक या अधिष्ठानसे। शक्तिका जो अधिष्ठान है उसे चैतन्य, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता कहते हैं। हम भोगकी दृष्टिसे प्रत्येक वस्तु—धन, व्यक्तिको देखते हैं; इसीलिए भीतर सचाई नहीं दीखती। भोगदृष्टि न हो तो भीतर बैठा ईश्वर दीख जाय। एक जगह भगवान्‌के चौबीस अवतारोंकी मूर्तियाँ हैं: मछली, कछुआ, वराह आदि। एक जगह भगवान्‌के हजार नाम बताये। भगवान्‌की चौबीस ही आकृतियाँ नहीं, सारी दीखनेवाली आकृतियाँ भगवान् की हैं। इसी तरह भगवान्‌के नाम हजार ही नहीं, सब अक्षर भगवान्‌के नाम हैं। शब्दका भेद होनेपर भी जो भिन्न नहीं होता उस ॐका वाच्यार्थ परमेश्वर होनेके कारण किसी भी नाम-रूपसे राग-द्वेष या मोह-क्रोध नहीं करना चाहिए।

हृदयमें जैसा ॐकारका आकार है, वैसा एक सुनहला ॐकार अक्षर है। आँखके सामने एक ॐ प्रकट हुआ, ऐसा ध्यान करो। ॐ तो जन्म-मरणका साथी है।

ॐ इति एकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।

ॐके उच्चारणके साथ मेरा ध्यान करो।

त्रिभङ्ग-ललित कृष्णमूर्तिमें मुँह, कमर, पाँव सब टेढ़े हैं। टेढ़ापन अलग है। ॐकी ध्वनि कृष्णकी वंशीमें है, ॐकी निराकारता कृष्णकी श्यामतामें है और ॐकी वक्रता कृष्णकी वक्रता है। बिना टेढ़ी हुए आकृति नहीं बनती। ॐके बीचमे (चित्रमें) श्रीकृष्ण हैं।

धनुर्गृहीत्वौपनिषदौ महान्तौ। यह धनुष-बाण क्या है? गौरसे देखो तो दोनोंमें ॐ ही दीखेगा। यह शक्ति क्या है? ॐमें नारायण हैं, देवी हैं। इसका अभिप्राय यह है कि ॐ परब्रह्मका संकेतक है। वह लक्षणा द्वारा परब्रह्मका बोध कराता है। आगे यह भी कहा गया कि ॐ परमात्माका वाच्यार्थ है, प्रतीक है। ऐसा कोई मन्त्र नहीं है जिसमें यह सेतु या मर्यादा न हों।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

२६. ॐकारकी सर्वात्मकता

संगति :

पन्द्रहवें मन्त्र में बताया : 'संग्रहेण ब्रवीमि ।' आप कहाँ हैं ? भले ही आप ॐकारमें मूर्तिध्यानसे प्रारम्भ कीजिये, ॐकारमें देहध्यानसे प्रारम्भ होता है । हृदयमें ॐकारकी कल्पना कीजिये । सम्पूर्ण विश्व-सृष्टिको ॐकारसे बनी देखिये । ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ॐके तीन सिरोंपर लटके रहते हैं । जाग्रतादि तीन अवस्थाएँ ॐमें कल्पित हैं । ॐके नादसे, अवयवसे, विन्दुसे, नोकपर आनेवाली शान्तिसे, संविन्मात्रतासे, देहके निषेधसे—जिस किसी भी प्रकार ॐकारके द्वारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

हम वेद, उपनिषद् और गायत्रीका परम तात्पर्य परमात्माका अनुभव करें।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥१६॥

यह अक्षर ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही पर है, इस अक्षरको ही जानकर जो जिसकी इच्छा करता है, वही उसका हो जाता है ॥ १६ ॥

'अक्षरं ब्रह्म'=अविनाशी, अश्नुति=व्यापक है वह ब्रह्म। महाभाष्यकार पतञ्जलिने कहा: 'अश्नुते इति अक्षरम्।' जैसे संसारकी भिन्न-भिन्न लिपि और उच्चारणमें 'अ' एक है, वैसे ही संसारके सारे आकार-नामभेदोंमें एक ब्रह्म है। हमारा मन हजार तरहका होता है, हम एक हैं। मनमें उदारता-कंजूसी, राग-द्वेष आते रहते हैं। इसी प्रकार दुनिया बदलती रहती है, पर परमात्मा एक है। बदलनेवाली चीज एक नहीं होती, वह जिसमें दीखती है और जिससे दीखती है, उससे न्यारी होती है। अक्षर ॐ अचल-अक्षर ब्रह्म है। इस अक्षर ब्रह्मको ठीक-ठीक जान लेनेपर तुम परब्रह्म परमात्मा होगे, तो तुम्हें परब्रह्म मिल जायगा और यदि अपर-ब्रह्म होगे, तो अपर-ब्रह्म मिल जायगा।

ॐ अक्षर सर्वात्मक है। ॐ इति सर्वं—यह अपर-ब्रह्म हुआ। सर्वात्मा होना ही अपर-ब्रह्म है। संन्यासी लोग ॐका जप करते हैं। यह उनके लिए मन्त्र है। उसका अभिप्राय है: 'ॐ इति स्वीकारे।' वर्षा हो गयी तो बहुत बढ़िया; गरमी-सर्दी हो गयी तो बहुत बढ़िया; जन्म-मृत्यु, बचपन-जवानी-बुढ़ापा हुआ तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vidyanand Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

भी बहुत बढ़िया ! ॐ माने हाँ। जिस रूपमें तुम प्रकट हो रहे हो, वही ठीक है। वे पहचानते हैं :

देख मृत्युका रूप धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे नाथ।

छान्दोग्योपनिषद्में बताया है : 'शरीरमें ताप हो तो ॐका चिन्तन करो। पञ्चाग्नि तापनेवाले जेठकी दोपहरीमें, बालूमें नंगे बैठकर चारों ओर आग जलाते हैं, तो गरमी लगती है। किन्तु वे सोचते हैं : 'हम तप कर रहे हैं।' बुखार आये तो रोगकी गरमी नहीं लगेगी, यदि समझ लो कि हम तपस्या कर रहे हैं। ॐमें क्या आनन्द है ? कर्मसिद्धान्तके अनुसार प्रारब्धके फलस्वरूप रोग तो आया, पर जब तपका भाव किया तो नवीन फलकी उत्पत्ति हो गयी। किसीने एक आदमीको जेलमें डाला था, पर वहाँ रहकर वह ऐसा धन्धा करने लगा कि कमाई होने लगी।

आप सोचें कि काल आयेगा तो हम मर जायँगे, लोग हमें कन्धेपर उठाकर ले जायँगे, हम हिल-डुल न सकेंगे। वह तुम्हारा काष्ठ-मौन हो जायगा। काष्ठमौनी ज़बानसे बोलता नहीं, सिर हिलाता नहीं। मृत्यु तुम्हारी बहुत बढ़िया तपस्या हो जायगी। चितापर आगमें शरीर जलेगा। अभीतक तो तुमने घी-बूरा-शाकल्यका होम किया है, असली होम तो किया ही नहीं। तुम्हारे शरीरका असली होम तो अब हो रहा है, जब कि चितापर शरीर जलने लगा है। यह आठवीं तरहका ॐकार हुआ। मन्त्र पन्द्रहवेंमें सात तरहके ॐकारका वर्णन किया गया है। नवें प्रकारका ॐकार है :

शिवः काशी शिवः काशी, काशी काशी शिवः शिवः।

हम अपने बचपनमें इस प्रकार तीन बार शिव और तीन बार काशी लिखते, जब भी कलम हाथमें आ जाती थी। न जाने कितने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajirnamati Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कागज खराब किये होंगे। अगर आपको किसी अनजाने-अनमिले-अनदेखे पदार्थकी प्राप्ति करनी है, तो उसका नामजप करें। जिससे प्यार होता है, उसका नाम जबानपर जल्दी-जल्दी आता है।

महादेव महादेव महादेवेति यो वदेत्।
एकेन लभते मुक्तिं द्वाभ्यां संभरणी भवेत्॥

संन्यासी लोग द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करते हैं। यहाँ गेरुआ वेषधारी संन्यासीसे हमारा अभिप्राय नहीं है। वह तो ढेलेका संन्यासी हुआ। जो आश्रमधर्मके पालन द्वारा अन्तःकरणको शुद्ध करके परमात्माका साक्षात्कार करनेके लिए संन्यासी होता है, उससे जप होता है। ज = जन्म और प = पाति, रक्षति। जन्मात् पाति = जो जन्म-मरणके चक्करसे बचा दे, वही जप है। जिसे जन्म-मरणके चक्करसे छूटना है, उसे जप करना चाहिए।

परब्रह्म और अपरब्रह्म, सर्वात्मक ब्रह्म और सर्वनिषेधावधि ब्रह्म चारोंका वाचक है ॐकार। पौराणिक दृष्टिसे यह नाममात्रका उपलक्षण है। क्लीं, ह्रीं—करीम, रहीम, कृष्ण-राम यह खुदाका, ईश्वरका नाम हो गया। जब नाम लोगे तो नाम लेते-लेते उसकी तुम्हें याद आयेगी। तुम्हें मालूम होगा कि वह तुम्हारे दिलमें बैठा है। उसपर जो पर्दा है, वह फट जायगा। यदि तुम पर्दा हटाकर उसे नहीं देखना चाहते, उसे पर्देमें ही रखना चाहते हो, तो क्या तुम्हारा प्रेम हुआ? ब्याह हुआ, पत्नी आयी पर उसने घूँघट उठाकर आँखके कोनेसे तुम्हारी ओर देखा ही नहीं तो वह क्या पत्नी और क्या ब्याह? वह पति-पत्नी क्या, जिनके बीच पर्दा बाकी रह जाय? वह गुरु-शिष्य क्या, जिनके बीच कपटका पर्दा हो?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaipamesh Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ॐकारको आवृत्ति करो :

'तज्जपस्तदर्थभावनम् ।' —योगदर्शन

जप करो और उसके अर्थकी भावना करो। कई लोग डर गये कि जप करेंगे, तो बेटेका नाम नहीं आयेगा, पैसा नहीं आयेगा। किसीके खो जानेसे तुम डरते हो, इसका अर्थ है कि तुममें वैराग्य नहीं है। वेदान्तमें अक्षर है अभिधा, नाम और ॐ एक है अभिधेय यानी अक्षरका अर्थ। उपनिषद्में आता है :

अक्षरात् परतः परः।

सबसे परे अक्षर और उससे भी परे परात्पर है। क्षर अनेक हैं, उनमें एक अक्षर है। लिपिभेद होता है, अक्षरभेद नहीं। एक अक्षर सबकी शक्लोंमें है : पशु-पक्षी, स्त्री-पुरुष। 'एक' वह है जिसमें अलग-अलग शक्लें नहीं हैं। 'एक' सर्वरूप, सर्वरूप, निषेधावधि है। अभिधेयकी दृष्टिसे सर्वरूपमें जो है, वह अपरब्रह्म है और सर्वनिषेधावधिरूप परब्रह्म है। असली चीजमें पर-अपरका भेद नहीं है। जिज्ञासुकी बुद्धिमें आरूढ करानेके लिए ही पर-अपर-की कल्पना की जाती है। इसमें कहीं फँसिये नहीं, आगे बढ़ें !

एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्। एक मन है। मन क्या ? अक्षर ! कान, आँख, नाक, जीभ, त्वचा-इन्द्रियके गोलक अलग-अलग विषयको ग्रहण करते हैं। ये क्षर हैं। इनका अनुभव करनेवाला मन एक है, अक्षर है। मन कभी मजा ले रहा है तो कभी दुःखी हो रहा है। दोनोंमें आत्मा एक है, वह तुम्हीं हो। क्षर-अक्षरसे अतीत तत्त्वको जानलो तो सारे संकल्प पूरे हो जायँ। कैसे ? जब दूसरा है ही नहीं तो संकल्प क्या हो ?

●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaipamesit Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

२७. ॐ : अपर और पर ब्रह्मकी प्राप्तिका आलम्बन

संगति :

सम्पूर्ण वेदोंका परम तात्पर्य जिसमें है, अर्थात् देश-काल-वस्तुसे परे अपौरुषेय ज्ञानके द्वारा, सिद्धवस्तुके ज्ञापक द्वारा प्रत्यक्-चैतन्या-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vasant Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

भिन्न ब्रह्मका जो बोध कराया जाता है, वह संक्षेपमें ॐ है, यह १५वें मन्त्रमें समझानेके बाद बताया कि तपस्यासे जो साधन-सम्पत्ति द्वारा अर्थात् शम-दमादि और अमानित्वादि दैवीसम्पत्तिसे जो प्राप्त कराया जाता है, वह सभी ॐकारमें है। जिसके लिए ब्रह्मचर्यादि आश्रम-धर्मका पालन हम करते हैं, वह वस्तु भी ॐकारमें है।

सोलहवें मन्त्रमें बताया कि ॐ अक्षर भी अचल ब्रह्म है, अक्षर ब्रह्म है। अब सत्रहवें मन्त्रमें बताते हैं कि परब्रह्म और अपरब्रह्म दोनोंकी प्राप्तिका श्रेष्ठ आलम्बन एकमात्र ॐकार है।

एतदालम्बनँ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१७॥

यही श्रेष्ठ आलम्बन है, यही पर आलम्बन है। इस आलम्बनको जानकर पुरुष ब्रह्मलोकमें महिमान्वित होता है॥ १७॥

श्रीशङ्कराचार्यने ब्रह्मसूत्रके तीसरे अध्यायके तीसरे पादमें विचार किया है कि 'जब ॐकार द्वारा ही पर-अपर दोनों ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, तो सब लोग उसीके द्वारा परब्रह्मकी उपासना क्यों नहीं करते?' इसका उत्तर है:

ऐश्वर्यप्राप्तिवैतृष्ण्यं विना परे ब्रह्मणि आस्थाया दुर्लभत्वात्।
अर्थात् 'जबतक ऐश्वर्यसे वैराग्य नहीं हो जाता तबतक परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती।'

ॐकार से चाहो तो ब्रह्मलोक, धन, ऐश्वर्य और सारी सृष्टि मिले; क्योंकि यह तो सबका प्रेरक है, सबमें मौजूद है। यह तो ईश्वरका नाम है। ॐका जप करनेमें समान श्रम करना पड़ता है। चाहे ॐ सर्वं खलु इदं ब्रह्म बोलो, चाहे अ-उ-म अमात्रका प्रति-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Donated by Vidyaniwas Mishra Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पादनकर नान्तःप्रज्ञं, नात बहिःप्रज्ञं, नोभयंप्रज्ञम् बोलो। बोलने और विचार करनेमें आयास तो समान ही करना पड़ता है। इसलिए ऐश्वर्यरूप ब्रह्मकी प्राप्तिके लिए भी ॐकार प्रशस्त आलम्बन है। जिसने इस आलम्बनको जान लिया, वह इहलोकमें-परलोकमें परस्मिन् ब्रह्मणि, अपरस्मिश्च ब्रह्मणि ब्रह्मलोके—परब्रह्म और अपरब्रह्म दोनोंमें वह 'महीयते।'

ब्रह्मभूतो ब्रह्मवदुपास्यो भवति।

वह ऐसा ब्रह्म हो जाता है कि दुनियामें जो लोग ब्रह्मका चिन्तन करते हैं, वे सब उसीका ध्यान करते हैं।

एक आदमी शालग्रामकी पूजा करता था। किसीने तत्त्वज्ञानीसे पूछा : 'यह क्या कर रहा है?' तत्त्वज्ञानी बोला : वह मेरी पूजा कर रहा है।'

एक आदमी 'नेति-नेति'के द्वारा ध्यान कर रहा था। उसने उससे पूछा : 'यह क्या कर रहा है?' वह बोला : 'यह मुझे ढूँढ रहा है।'

एक बोला : 'अहं ब्रह्मास्मि।' उसके बारेमें पूछा गया तो बताया : 'वह मुझसे एक हो रहा है।'

ब्रह्मलोके महीयते : पर ब्रह्म-अपर ब्रह्म दोनोंकी पूजा उसीके रूपमें लोकमें हो रही है; दूसरा कोई है ही नहीं। यह हें-हें, में-में करनेवालोंकी चीज नहीं। यह तो पूर्ण, अखण्ड स्वातंत्र्यकी चीज है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

१८. स्वरूप-निरूपण

संगति :

सत्रहवें मन्त्रमें बताया गया कि ॐकार अपर ब्रह्म और परब्रह्म दोनोंकी प्राप्तिका श्रेष्ठ आलम्बन है। परब्रह्मकी प्राप्ति करनेवाला स्वयं ब्रह्म हो जाता है, ब्रह्मानन्दस्वरूप हो जाता है। अब १८वें मन्त्रमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Jyotirmayananda Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अजन्मा, नित्य, शाश्वत, पुरातन ब्रह्म और आत्माकी अभेदता द्वारा स्वरूपनिरूपण किया जाता है :

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १८ ॥

यह विपश्चित्, मेधावी आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है। यह न तो किसी अन्य कारणसे उत्पन्न हुआ है और न स्वतः ही कुछ [अर्थान्तररूपसे] बना है। यह अजन्मा, नित्य (सदासे वर्तमान) शाश्वत (सर्वदा रहनेवाला) और पुरातन है तथा शरीरके मारे जानेपर भी स्वयं नहीं मरता ॥ १८ ॥

यह श्लोक गीतामें भी है। यह उपनिषद् गीताके बहुत पहले-की है। यहाँसे उठाकर यह श्लोक गीतामें रखा गया है।

ईश्वरने सृष्टि बनायी है—धरती, फूल, चन्द्रमा, समुद्र आदि। इसी प्रकार ईश्वरने ज्ञान बनाया या नहीं? यदि ईश्वरने ज्ञान बनाया, तो पहले वह अज्ञानी रहा होगा? १० बजकर पाँच मिनट-पर ज्ञान बनाया हो, तो १० बजकर चार मिनटतक वह अज्ञानी रहा होगा? ज्ञान बनानेसे पूर्व ईश्वरको जरूरत थी या नहीं कि ऐसा-ऐसा ज्ञान बनाये? तात्पर्य यह कि ज्ञानका निर्माता ईश्वर नहीं है, बल्कि ज्ञानसे ईश्वरकी, निर्माणकी सिद्धि होती है। ज्ञान उत्पन्न हुआ यह कैसे मालूम पड़ा—ज्ञानसे या अज्ञानसे? किसीको मोटर जाती मालूम पड़ रही है, तो वह आँखसे या बिना आँखके?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vajpayee Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आँखसे किसी चीजका निर्माण नहीं होता, वह तो पहलेसे ही होगी। इसलिए ईश्वर अपर और ज्ञान पर हो जाता है। दिव्य-लीला है इसकी।

बुद्धिसे ज्ञान होनेपर भ्रम होता है। बुद्धिको थोड़ा भटकना पड़ता है। यहाँसे आँख गयी, किताबको देखा, वहाँसे अक्षर पढ़कर आयी तो मालूम पड़ा कि 'न जायते···' लिखा है। यह है बुद्धिका भ्रमण। ईश्वरको अपनी बुद्धि भेजकर नहीं मालूम करना पड़ता कि 'यह है या नहीं? ईश्वरके ज्ञानमें भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव नहीं होते। यह है अपौरुषेय ज्ञान! पुरुषके प्रयत्न-जन्य नहीं, स्वतःसिद्ध है।

सूर्यास्तकी (पश्चिम) दिशासे जिसे प्रकाश मिले, वह बाबू और सूर्योदयकी (पूर्व) दिशासे जिसे प्रकाश मिले, वह पण्डित। बाबूलोग कहते हैं: 'कुरान-बाइबिल भी धर्मग्रन्थ हैं और वेद भी धर्मग्रन्थ है। तीनोंमें क्या फरक है?' हम तो कहीं फरक नहीं मानते।' एक-अद्वितीय ब्रह्म जानते-मानते हैं, पर आपको फरक बतानेके लिए यह फरक बताते हैं।

'ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। ज्ञानका नाश नहीं होता। ज्ञानके बिना किसी वस्तुकी सिद्धि नहीं और ज्ञानके अतिरिक्त कुछ वस्तुसत्ता है नहीं'—यह सिद्धान्त कुरान-बाइबिलने बताया है? ज्ञान पुरुषसिद्ध नहीं है। पुरुषको सिद्ध करनेवाला, पुरुषका प्रकाशक है। ज्ञान स्वयंप्रकाशक है। कालमें आदि-अन्त, देशमें पूरब-पश्चिम, मैं-तू ज्ञानसे सिद्ध होता है। यह ज्ञानकी ब्रह्मरूपता, अखण्डता, अद्वितीयता है। 'देश-काल-वस्तुकी सिद्धि और उनका अभाव दोनों ज्ञानकी अद्वयतासे हैं' ऐसा जो माने, उसका नाम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

'वेद' है। ज्ञानका जो स्वरूप माना, वैसा ही वेदने बताया। अभिधानका जो स्वरूप जाना, वही अभिधेयका स्वरूप बताया। वेद भी अनादि-अनन्त, अद्वितीय, स्वयं-प्रकाश एवं अपौरुषेय हैं।

प्रतिपाद्यकी विशेषतासे वेदकी विशेषता है। जिनके चित्तमें वर्तमान इतिहासका प्रभाव है कि : 'पहले जड़ था, धीरे-धीरे चैतन्यका विकास हुआ', उनके चित्तमें यह बात नहीं बैठेगी। पहला मत है : 'पहले ज्ञान था, बादमें प्रपंचका विकास हुआ।' दूसरा मत है : 'पहले जड़ था, बादमें प्रपञ्चका विकास हुआ।' आज यह दूसरा मत सर्वमान्य है। जड़को सृष्टिके मूलमें माननेवाले पैसेके लिए मनुष्यका संहार करते हैं। जड़से मार्क्सवाद, डार्वीनियन थ्योरी, हैकलेवाद, जड़ाद्वैतवाद निकलता है।

जो चेतनकी प्रधानता मानते हैं, वे वस्तुकी प्रधानतासे अधिकारीमें प्राधान्य नहीं मानते, अधिकारीकी प्रधानतासे वस्तुको मानते हैं, यह वेदका नियम है। पहले सिपाही बनो, तब चौराहेपर खड़े होकर मोटर रोको; नहीं तो तुम्हें सिपाही पकड़कर ले जायगा। इसमें क्रिया और वस्तुकी प्रधानता नहीं, अधिकारीकी प्रधानता है। मनुष्य नहीं, जीव; जीव नहीं, ईश्वर और ईश्वर नहीं, चैतन्य प्रधान है। सारे सनातन-धर्मका इसमें सार है। धर्म, उपासना और योगके सिद्धान्तमें जीवकी प्रधानता है। धर्ममें क्रियाकी, व्यवहारमें जड़ताकी, शरणागतिमें ईश्वरकी और तत्त्वज्ञानमें ? 'हम न तुम, दफ्तर गुम !' मैं-तुममें, यहाँ-वहाँ-में, अब-तबमें भी वही है, दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

'अनुत्पन्न, स्वयंप्रकाश, अनन्त, सर्वविभासक, अद्वितीय ज्ञानसे जो वस्तु मालूम पड़ती है, वह ज्ञानसे अन्य नहीं है, वह ज्ञानका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaipamsi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ही विवर्त है।' वेदके रहस्यको प्रकट करनेवाले इस सिद्धान्तका प्रतिपादन वेद या वेदके आधारपर बने शास्त्र करते हैं, अन्य कोई ग्रन्थ या गुरु-सम्प्रदाय नहीं। सनातनधर्ममें आचार्यंकी प्रधानता नहीं है, प्रधानता संविधान की है। आपका राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री आदि संविधानके अनुसार न चलें तो? यह हिटलरवाद-नाजीवाद नहीं हैं। इसमें एक व्यक्तिकी प्रधानता नहीं है। व्यक्तिवादकी प्रधानतासे चलनेवालोंको ज्ञानका कर्ता-आविष्कर्ता व्यक्तिको मानना पड़ेगा। विज्ञानका आविष्कर्ता होता है, स्वयंप्रकाश ज्ञानका कोई भी आविष्कर्ता नहीं होता। सनातन-धर्ममें कोई पन्थ चलानेवाला नहीं होता। जैसे: कबीरपन्थ, राधा-स्वामीपन्थ, रैदास-पन्थ।

आचार्यंकी कसौटी क्या है? 'ज्ञान अनुत्पन्न, अनन्त स्वयंप्रकाश, अखण्ड, अद्वितीय है'—वेदकी = सनातनधर्मकी इस पद्धतिको आचार्य स्वीकार करता है या नहीं? 'गांधीजी, नेहरूजी, शास्त्री-जीने यह कहा है, तो मानना पड़ेगा' ऐसा नहीं। यदि उन्होंने भी संविधानके विरुद्ध कहा है, तो वह मान्य नहीं है। बुद्धको ईश्वरका अवतार सनातन-धर्ममें मानते हैं, पर उनकी बातको संविधान नहीं मानते। क्यों?

वेद निन्द्य निन्दित भयो जगत बुद्ध अवतार।

यह किसी व्यक्तिका मनोभाव नहीं है। किसीने दस बरस गंगा-किनारे, समुद्र-किनारे या जङ्गलमें बैठ लिया और कहा कि 'हमने यह नया शिगूफा खोज निकाला है', तो नहीं चलेगा। यह तो तत्त्वज्ञान है।

न जायते म्रियते वा विपश्चित्। विपश्चित् = जो इस तत्त्व-को जान लेता है। विप्रकृष्टं चिन्वति इति विपश्चितः। जो सम्पूर्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

नामरूपके अत्यंताभावसे उपलक्षित चैतन्य है, उस चैतन्यको जानकरके नामरूप और उसके अभावको उस चैतन्यसे अभिन्न जान गया, उसका नाम है विपश्चित् । वह तो स्वयं ब्रह्म है । इसलिए न जायते म्रियते । जैसे ब्रह्मकी उत्पत्ति-मृत्यु नहीं ।

अब यह मूल उपनिषद् प्रारम्भ हुई । नचिकेताने यमराजसे पूछा था : 'वह कौन-सी चीज है जो धर्मसे न उत्पन्न होती है, न अधर्मसे नष्ट होती है, उसका किसी भी कारणसे उल्लास-ह्रास नहीं होता, जिसपर किसीका असर नहीं पड़ता ?'

उसी अशेष-विशेष-रहित वस्तुका आलम्बन और प्रतीक दोनों रूप ॐकार का निर्देश किया, जो परब्रह्म और अपर ब्रह्म दोनोंका प्रतीक है । मन्द जिज्ञासुके प्रति यह उपदेश किया गया, जिससे अपर ब्रह्म भी मालूम पड़ जाय । अब ॐकारालम्बन आत्माका साक्षात् निर्धारण करनेके लिए कहा जाता है :

न जायते म्रियते वा विपश्चित् ।

शरीरपर बाल पैदा होते हैं । बालकी सेवा न करो तो कैसा-कैसा हो जाता है ? शरीरमें पानी और मलसे छिद्र भर जायँगे और खाज होगी । जो चीज पैदा होती है, वह अनित्य होती है और अनित्य वस्तुके साथ अनेक प्रकारके विकार लगे रहते हैं । जो जुड़ेगा, वह बिछुडेगा; जो पैदा होगा, वह मरेगा; जो जलेगा, वह बुझेगा । इनमें सबसे बड़े दो विकार हैं : शुरूका जन्मना और आखिरका मर जाना । इनके बीचमें पैदा हुआ तो है, परन्तु वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते—बढ़ा, बदला और क्षीण हुआ मालूम पड़ता है । सब चीजोंके साथ यह बात होती है । आत्मदेवके साथ न जन्म है और न मृत्यु ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajpayee Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

बुद्धि द्वारा केवल शून्य जाना जायगा। यान्त्रिक-सत्य जड़ है, बौद्ध-सत्य शून्य है। उसमें थोड़ी श्रद्धा-भावना मिलाकर जानोगे तो तुम्हें ईश्वरका पता लगेगा। यह भावुक सत्य है। जिसमें बुद्धि, यन्त्र या श्रद्धाका विस्तार नहीं, अनुभाव्य वस्तुका तिरस्कार करके, शून्य और जड़ताको काटकर श्रद्धासे मानी हुई ईश्वरताका निषेध करके यदि तुम निषेधावधि अपने अनुभवको देखोगे, तो वह अनुभव केवल ब्रह्म निकलेगा। यह प्रत्यक्‌चैतन्याभिन्न ब्रह्म अनुभव-सत्य है। जन्मना-मरना मालूम पड़ना अनुभवसे जुदा नहीं होता। अनुभव ही जन्मता-मरता-सा, अन्य-सा है। कल्पनावच्छिन्न और कल्प्यावच्छिन्न चेतन्य एक हैं। अनुभवका तिरस्कार करके केवल शुद्ध अनुभवको रहने दो, वह तुम हो, ब्रह्म हो। विपश्चित् वही है।

वह न किसीसे पैदा हुआ, न उससे कोई पैदा हुआ! विचित्र है। बनारसमें बुलानाला-नीचीबागमें सड़क परसे निकलते थे तो एक जगह पढ़ा : 'ईश्वर सर्जनहार है। हमारी शरणमें आओ, मैं तुम्हें शान्ति दूँगा।' ईश्वर सर्जनहार है—कैसा? कुम्हार घड़ा बनाता है, वैसा? वह तो घड़ा बनाकर बाजारमें भेज देता है। पैसा लिया कि फिर घड़ेके साथ उसका कोई रिश्ता ही नहीं! क्या इसी प्रकार ईश्वर विश्वसृष्टिका निमित्त-कारण है अथवा वह उपादान-कारण भी है? उसकी ईश्वरता बिगड़े तब सृष्टि बने? न तो ईश्वरता किसीसे पैदा हुई, न सृष्टि उससे पैदा हुई। ईश्वर अनिर्वचनीय है।

अनिर्वचनीय—संस्कृतभाषाके माध्यमसे पढ़नेवालेको बात समझमें जल्दी आ जाती है। दूसरी भाषाके माध्यमसे समझनेवालोंका ध्यान खींचना पड़ता है। जैसे कि अनिर्वचनीय, अज्ञेय, अचिन्त्य इन शब्दोंके अर्थमें फरक है। पाश्चात्य वैज्ञानिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आत्माको 'अज्ञेय' कहते हैं। आँखसे उसे देख नहीं सकते, मनसे उसके बारेमें सोच नहीं सकते, बुद्धिकी वहाँतक गति नहीं है। आईन्स्टीनके मतमें 'ईश्वर अज्ञेय है।' काण्टके मतमें 'आत्मा अज्ञेय है।' उनमें और वेदान्तके 'अनिर्वचनीय'में कोई बराबरी, तुलना है या नहीं? सबसे परे-परे करके हाथ जोड़ लिया है!' है, पर सबसे परे। है, पर हम समझते नहीं!' इसका अर्थ अनिर्वचनीय नहीं है।

'अनिर्वचनीय'को जो 'कुछ परे' कहते हैं वे 'अनिर्वचनीय'का वेदान्तमें क्या अर्थ है, यह नहीं जानते। वाङ्मनस = बोलती हुई वाणी और सोचता हुआ मन अन्तःकरण। मौन वाणी और शान्त अन्तःकरण इन दोनोंका प्रकाशक साक्षादपरोक्ष होते हुए भी दोनोंका विषय न होना, वह कोई दूसरा नहीं, तुम खुद हो।

वाङ्मनसागोचरत्वे सति, वाङ्मनसयोः साक्षात् प्रकाशत्वात्।

वाणी और मनका विषय न होकर, वाणी और मनको देखने-वाला! जो लालटेनसे दिखाई न पड़े, लालटेनको देखे। मन, बुद्धि, आँख ये सब बाहरकी चीजोंको देखनेके लिए लालटेन हैं, लेकिन ये जिससे दीखते हैं, उसका नाम क्या है? अनिर्वचनीय शब्दका अर्थ होता है: वाङ्मनसाऽगोचरत्वम्।

वाणीसे बोलनेमें, मनसे सोचनेमें जो चीजें आती हैं वह नहीं, मन-वाणीकी शान्ति नहीं, मन-वाणी नहीं, सबका साक्षी होकर उनका अविषय होना अर्थात् हम खुद वह हैं और मन-वाणीको जानते हैं। 'है या नहीं?' न 'है' कह सकते हैं और न 'नहीं है' कह सकते हैं। ऐसा नहीं। यह तो दुनियादारीकी बात है।

सत्त्वासत्त्वाभ्याम् अनिर्वचनीयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आकाशकी नीलिमा अनिर्वचनीय है; क्योंकि आँखसे दीखती है तो 'नहीं' कैसे बोलें और नहीं है तो 'है' कैसे बोलें? 'है' या 'नहीं है' ऐसा ठीक-ठीक न बोल सकनेके कारण आकाशकी नीलिमा अनिर्वचनीय है। 'आत्मा अनिर्वचनीय है या नहीं है,' ऐसा बोलनेमें अयोग्य होनेके कारण नहीं, मन-वाणीका द्रष्टा होकर मन-वाणीका विषय न होनेके कारण। इसलिए बताया कि किसी दूसरी भाषामें 'अनिर्वचनीय' का पर्याय 'अज्ञेय,' 'अचिन्त्य मिलता हो तो वह नहीं। दर्शनमें अज्ञेयवाद, अचिन्त्यवाद, दूसरे-दूसरे वाद हैं। सम्पूर्ण भक्तोंके लिए ईश्वर अज्ञेय-अचिन्त्य है क्योंकि वह 'अन्यत्वेन' अन्य है। वेदान्तीका आत्मा 'स्व' है; अर्थात् अपना आपा साक्षात् है, अपरोक्ष है। वह स्वर्गादिके समान न परोक्ष है और घटादिके समान न प्रत्यक्ष। यही एक ऐसा आश्चर्य-का विषय है कि मनुष्यको ध्यान आता ही नहीं कि मैं हो हूँ और वेदान्त इसका ध्यान दिलाता है।

विपश्चित् = विप्रकृष्टं चिनोति। गुह्यसे गुह्य वस्तुको इसने जान लिया : 'मैं द्रष्टा हूँ, दृङ्मात्र, मैं ब्रह्म हूँ।' परमात्मा देशसे होकर भी देशको जाननेवाला है, वह दिशाएँ नहीं हैं। पहले वह था और बादमें रहेगा, कालका वह प्रकाशक है। जवानी-बचपन-बुढ़ापा वह नहीं, इनसे न्यारा और इनको जाननेवाला है। शरीर धर्मसे सुखी और अधर्मसे दुःखी बना, 'मैं तो बना ही नहीं—'न जायते।' धर्मका सम्बन्ध मुझ द्रष्टा साक्षी चैतन्य आत्मासे नहीं है। दो आदमी आपसमें लड़ें, माथा फूटे, सजा हो, गोली चले, साक्षीपर उसका कोई प्रभाव नहीं। साक्षात् द्रष्टा माने साक्षी। कानूनमें साक्षी आर्थात् गवाह कौन? 'जो कहे कि हमने कानसे यह बात मित्रसे सुनी' तो उसकी गवाही गलत कही जायगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipramaitri Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आँखने देखा और मुझको बताया तो भी नहीं, कानने सुना, नाकने सूँघा, जीभने खट्टा-मीठा खाया तो साक्षी नहीं। इन इन्द्रियोंने चुगली की। संसारके बारेमें चुगलीके आधारपर निश्चय करना अच्छा नहीं है। नेत्रादि अन्तःकरणके अलावा जो हो, सो बताओ। अन्तःकरण बुद्धिसे देखता है? उसमें तो अन्तःकरण रहता ही नहीं। उस समय तुम पापी-पुण्यात्मा, सुखी-दुःखी, रागी-द्वेषी रहते हो? नहीं। सुषुप्ति, जाग्रत्, स्वप्नसे यह विलक्षण है। इनसे तुम मुक्त होते हो, परन्तु तुम खुद ही इन्हें पकड़ते हो :

मानि मानि बन्धनमें आयो।

भूत-भविष्य-वर्तमान सुषुप्तिमें खो जाते हैं, अर्थात् ये वृत्तिके बेटे हैं। तुम भी अपनी वय सौ-पचास वर्षकी मानते हो तो वृत्तिके बेटे हो गये। तुमने अपनेको जन्मने-मरनेवाला माना, तो भी तुम वृत्तिरूप गायके बेटे-बछड़े हो गये। जब तुमने वृत्तिके उदय और शान्तिके साक्षीरूपमें अपनेको जाना तो जन्म-मृत्यु दोनोंसे परे हो गये, क्योंकि वृत्तिमें कालकी कल्पना ही होती है। एक मील देश वृत्तिकी उपस्थितिमें होता है, सुषुप्तिमें नहीं, वैसे ही आयु और वजन वृत्तिमें हैं, सुषुप्तिमें खो जाते हैं। साक्षी तुम्हारा स्वरूप है।

नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

आत्मा न किसीका बेटा है, न बाप है। बाप नहीं तो सेवा करके धर्म कैसे कमाओगे? आजकलके बच्चोंने तो इसे काट दिया। बेटा नहीं तो किसे उपदेश-आदेश करोगे? बेटा मुँहफट है, उसका कोई कर्तव्य नहीं। यदि बाप-बेटेमें फँसे हो, अपनेको उनसे पैदा होनेवाला शरीर मानते हो तब तो दुःख होगा। यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

शरीर तो जड़ है, तुम तो अखण्ड चेतनकी धारा हो, साक्षी ही। जिसका परिवर्तन न होता हो, वह चेतन। बदलते हुओंको जानना उसका काम है। वह कहाँ जानता है बाहर या भीतर? पहले या पीछे? बाहर-भीतर, पहले-पीछे दोनों उसका जानना ही है। क्या चीज जानना है? चीजका होना, न होना दोनों उसमें भासता है। वह न किसीसे उत्पन्न होता है, न किसीका उत्पादक है। वह स्फुरण-मात्र है। उसमें प्रतीतिमात्र प्रपञ्च, अपना यह अन्तःकरण, दुनिया, ईश्वर, विद्या-अविद्या सब अद्वैत-चैतन्यमें आकाशमें नीलिमाके समान केवल आभास या स्फुरण-मात्र है।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं
पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

अज = स्वयं न जायते इति, अन्यरूपेण न जायते इति। जो स्वयं न किसे उत्पन्न हो, जिसका अन्य रूपमें परिणाम न हो, वह अज है। सर्वधर्मसमन्वय—बहुतसे धर्म जीवात्माकी उत्पत्ति मृत्यु मानते है, और बहुतसे नहीं भी मानते। जैनधर्ममें बढ़ना-घटना मानते हैं, बौद्ध-धर्ममें आत्माकी उत्पत्ति नहीं मानते, उच्छेद मानते हैं। मुसलमान और ईसाई-धर्ममें आत्माकी उत्पत्ति मानते हैं, पर उच्छेद नहीं मानते। कैसे होगा समन्वय? इतना ही अर्थ मिलेगा कि रोगीकी दवा की जाय, दुःखीपर दया की जाय, मूर्खको शिक्षा दी जाय। मुसलमानकी दाढ़ी और हिन्दूकी चोटी रखकर समन्वय नहीं होगा। दोनोंको साथ मुड़ा दो, यह भी नहीं। अपनी-अपनी परम्पराके अनुसार चलते हुए आगे बढ़ना होगा।

हमारे एक मित्रने कहा: 'सब दर्शन एक ही बात बोलते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaipamani Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

"श्रीरामकृष्ण परमहंस कहते थे कि 'चार अन्धे इकट्ठे हो गये। उनके सामने हाथी रखकर पूछा गया : 'हाथी कैसा ?' जिसने उसका पाँव पकड़ा उसने बताया : 'हाथी पेड़ जैसा है।' सूँड़ पकड़नेवालेने उसे मूसल जैसा बताया। पीठपर हाथ रखनेवालेने उसे पहाड़-सा बताया। कान पकड़नेवालेने उसे सूप जैसा बताया। ये चारों अन्धे थे। किसीको भी हाथीका ज्ञान नहीं था जो जितना छूता, उतना बताता। कोई अपनेको अन्धा नहीं मानता था! वैसे कोई दर्शन अपनेको अधूरा नहीं मानते, वे लट्ठ लेकर लड़नेको तैयार हो जाते हैं।

सांख्य आत्माको अकर्ता बताता है।

न्याय आत्माको कर्ता बताता है।

वैशेषिक आत्माको कर्ता बताता है।

मीमांसा आत्माको कर्ता-अकर्ता दोनों बताता है।

वेदान्ती कहता है : 'आत्मा न कर्ता है, न अकर्ता, वह शुद्ध ब्रह्म है।']

इसका अभिप्राय यह है कि कहाँतक आपकी बुद्धि वस्तुको समझ सकती है? वस्तुमें प्रवेश कर सकती है? बुद्धिमें कितनी सूक्ष्मता है? साक्षी कर्ता-भोक्ताका है या अकर्ता-अभोक्ताका भी? परिच्छेद-सामान्यके अत्यन्ताभावसे उपलक्षित और उसका साक्षी।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः। यह किसीसे उत्पन्न नहीं होता। अजः यानी? खुदाने 'कुन्' कहा और वह पैदा हो गया? नहीं, वह बना नहीं। जीव या ईश्वरने संकल्प किया और बना? नहीं! अपने आपको समझो। परमात्माका जितना वर्णन है, वह दूरवाले परमात्माका नहीं है। 'अजः नित्यः शाश्वतोऽयम्'—वृद्धि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection Vaipanasi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

और क्षयसे वर्जित वह साक्षी है, शाश्वत है, एकरस है। वह बढ़ता-घटता नहीं। घड़ा तो बनता-मिटता है और नया-नया घड़ा बनता है।

यह तो पुराण है अर्थात् पुरापि नव एव इति पुराणम्। पहले, आगे, आज तीनों कालमें वह नित्य-नूतन, ज्यों-का-त्यों है। 'अजन्मा, नित्य, बिना बाप-बेटेका' यह तो ईश्वरका वर्णन है। ईश्वरमें तो जन्म-मरणकी प्राप्ति नहीं है तो क्यों बोले 'न म्रियते ?' आपत्ति-विपत्ति आये तो उसका निवारण अनिवार्य हो जाय, परन्तु आपत्ति-विपत्ति प्राप्त ही न हो तो ? परन्तु जिस ईश्वरको न देखा, न जाना, दूर सातवें आसमानमें छिपा है, उसके बारेमें कहना कि : 'ईश्वरका जन्म-मृत्यु नहीं,' यह कैसे सम्भव है ? यह आकाशादिरूप अनात्मरूप प्रतीत होता है न ? यह पैदा हुआ नहीं है प्रतीतिमात्र है। है-है नहीं, जानेवाला नहीं, यह ज्यों-का-त्यों दीखता हुआ परब्रह्म परमात्मासे पृथक् नहीं है।

न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

किसीने तुम्हें एक चांटा लगा दिया, तो शरीरपर लगा दिया, आत्मापर नहीं ! 'न हन्यते इति अहम्' यह अहंकी व्युत्पत्ति है। अहम् = न हिनस्ति, न जहाति, न जिहीते' अर्थात् जो कभी छोड़े नहीं, जिसे पानेके लिए कभी प्रयत्न करना न पड़े, जो कभी किसीके नीचे आकर छोटा न बने, जो मरे नहीं। ये ऐसे देवता हैं जिसके आगे ईश्वर भी आकर दर्शन देता है, जाता है, फिर आता है। दृश्यको इन्हींके सामने रहना पड़ता है। शरीरकी मृत्यु होनेपर यह मरते नहीं। अज, अमर, शाश्वत, पुराण, शुद्ध ऐसा यह अद्वितीय आत्मा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vyapari Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

१६. आत्माकी असंगता

संगति :

नचिकेताने यमराजसे प्रश्न यह पूछा था कि 'ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसपर धर्म-अधर्मका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ? जितने जन्म-मरण होते हैं, उनपर धर्म-अधर्मका प्रभाव पड़ता ही है। धर्मके अनुसार उत्तम और अधर्मके अनुसार अधम योनि मिलती है। जलमें द्रवतारूप धर्म है, तो वायुके सम्बन्धसे उसमें तरंगें उठती हैं। यदि जलमें द्रवत्वरूप धर्म न होता, तो उसमें वायु-सम्बन्धसे तरंगें कैसे उठतीं ? बीजमें अंकुरित होनेका धर्म न होता, तो उसमें-से अंकुरकी उत्पत्ति कैसे होती ? संसारमें जितनी आकृतियाँ बनती हैं, वे धर्माधर्मके अनुसार ही बनती हैं।

एक आत्मा, एक ब्रह्म या एक प्रकृति है, तो उससे एक औरत-पुरुष, पशु-पक्षी कैसे बन गया ? एक चीजमें इतनी किस्में इतने प्रकार-भेद, असंख्य चीजें कैसे ? जितने बीज हैं, उन सबमें उनके पूर्वकर्मके धर्माधर्मके रूपमें संस्कार रहते हैं और वैसी उनके शरीरकी उत्पत्ति होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

संसारमें कार्य-कारणभाव भी देखनेमें आता है। माँ-बाप न हो तो बेटेकी उत्पत्ति कैसे होगी? माटी न हो तो घड़ा कैसे बनेगा? कुम्हार न हो तो कौन घड़ा बनायेगा? पहले बचपन होता है, फिर जवानी आती है। वह कौन-सी वस्तु है जिसपर काल, कार्य-कारण या धर्माधर्मका असर नहीं पड़ता? इसका सीधा उत्तर था: 'धर्माधर्मके अनुसार ब्रह्मका जन्म नहीं, उसमें कार्य-कारणभाव नहीं, उसमें भूत-भविष्य नहीं।' ऐसा कह देना तो वैसा ही हुआ, जैसे 'पड़ोसीके घरमें आज यह-यह खाना बना है।' बनानेलायक हो तो तुम भी अपने घरमें बना लो, नहीं तो उससे तुम्हारा क्या प्रयोजन?

'ब्रह्म ऐसा-ऐसा है' यह बात कही गयी। ठीक है, तुम भी ब्रह्म बननेकी कोशिश करो। यदि कोशिश करनेपर भी नहीं बन सकते, तो बताना बेकार गया। प्रश्न पूछा गया था वैसा और बताया गया 'यह जो तुम्हारी आत्मा है उसका धर्माधर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं।' इसका अर्थ है, आत्मा ही ब्रह्म है। यह तो बड़ा प्रयोजनीय हो गया।

एक होती है क्रिया, तो एक होती है विक्रिया। घड़ेको थापीसे और जेवरको हथौड़ेसे पीटकर बनाना पड़ता है। लेकिन शरीरमें जो बचपन, जवानी या बुढापा आता है, वह लाना-बनाना नहीं पड़ता; अपने आप आता है। अपने आप होनेवाले परिवर्तनको विकार बोलते हैं। संस्कृत भाषामें किसी भी विकासको विकार ही बोलते हैं। लोग बोलते हैं, बच्चेका विकास हो रहा है, जवानीकी ओर जाता है और जवानीसे बुढ़ापा आयेगा, तो विकार कहेंगे। काले बाल होंगे तो विकास कहेंगे; सफेद बाल होंगे तो विकार कहेंगे। दार्शनिक लोग बचपन और काले बालको भी विकार ही बोलते हैं; क्योंकि यह बुढ़ापेकी भूमिका ही है। बकरेको माला पहनाना, चन्दन लगाना, खिलाना-पिलाना, आदर-सत्कार करना मौतकी ओर एक कदम उसके बढ़नेका लक्षण होता है। इससे उसकी कोई उन्नति नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaniprasth Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

हुई, राजगद्दी नहीं मिली। यदि पहलेसे यह पक्का किया जाय कि 'आज तुम्हें राजगद्दीपर बिठाकर फिर मार डालेंगे' तो वह मौतकी ओर एक कदम ही होगा। इस प्रकार संसारमें जिसे विकास कहते हैं, वह विकारकी ही ओर बढ़ना है।

जो चीज मरनेवाली होती है, वह फूल जाती है। यह 'सोज' रोग है। जान-बूझकर बनायें तो 'क्रिया' और अपने आप बने तो 'विक्रिया'। पहली-पिछली अवस्था आगे-पीछे हो तो कालका सम्बन्ध हुआ। इन सबसे विलक्षण आत्मदेवको १८वें मन्त्रमें अनिर्वचनीय बताया गया; क्योंकि प्रत्यक्‌चैतन्याभिन्न ब्रह्मतत्त्वका अपरिज्ञान यानी ज्यों-का-त्यों रहता हुआ ही यह ज्ञान, यह भान-सा मालूम पड़ता-सा है। कुछ मालूम करता-सा है, जाननेवाला-सा है, जाना जानेवाला-सा है। ज्ञानस्वरूप अखण्डमें ही यह ज्ञाता-ज्ञेयका विवर्त हैं।

अब उन्नीसवें मन्त्रद्वारा बताते हैं कि आत्मा न मारता है, न मारा जाता है। जो इसे इस रूपमें जानता है, वह अज्ञानी है।

हन्ता चेन्मन्यते हन्तु ँ हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नाय ँ हन्ति न हन्यते॥१९॥

यदि मारनेवाला आत्माको मारनेका विचार करता है और मारा जानेवाला उसे मारा हुआ समझता है, तो वे दोनों ही उसे नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा न तो मारता है और न मारा जाता है॥ १९॥

गीतामें भी श्लोक है : न हन्यते हन्यमाने शरीरे। कठोपनिषद्के ये दोनों मन्त्र (१८ और १९) सिद्धान्तके श्लोक हैं। अपनेको मरने-मारनेवाला अर्थात् कर्मका विषय और कर्ता समझनेवाला अज्ञानी है। इसी कारण कर्मके फलस्वरूप वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipramesh Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अपनेको जन्मने-मरनेवाला तथा अज्ञानसे कर्ता मानता है। कर्ता माननेसे अपनेको कर्मका सम्बन्ध मान लेता है।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥ —गीता

ज्ञानी पुरुष जानता है कि मैं अजन्मा, अविनाशी हूँ। उसमें न जन्म है और न मरण। गलत जानकारीके कारण तुम अपनेको जन्मने-मरनेवाला मानते हो। तुम्हें गलत जानकारी दी गयी है कि तुम कर्मसे लिप्त हो और जन्मने-मरनेवाले हो। सच्ची जानकारी होनेपर भ्रान्ति मिटेगी, तुम अपनेको जन्मने-मरनेवाला नहीं मानोगे। असलमें तुम साक्षी हो।

अज्ञानवश मनुष्य जैसे अपनेको कर्ता-भोक्ता मान लेता है, वैसे दूसरेको भी कर्ता-भोक्ता मान लेता है। स्वयं नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त और साक्षी होनेपर भी अपनेको और दूसरेको कर्मका कर्ता-भोक्ता और विषय समझकर राग-द्वेषसे प्रेरित हो दूसरोंको दोस्त-दुश्मन मानने लग जाता है।

उभौ तौ न विजानीतो नायंहन्ति न हन्यते।

तुम्हारे कर्मका या अन्यके कर्मका तुमपर या अन्यपर लेश भी असर नहीं होता। अज्ञानवश देहसे तादात्म्य कर लेना ही संसारका मूलकारण है। इसी गलतीसे शरीरके धर्म-अधर्म, अवस्थाएँ, सुख-दुःखको अपना मान लिया जाता है।

ज्ञानकी प्रधानतासे उपनिषद हैं। आचार्यकी भी इससे कसौटी होती है। शंकराचार्यजी नहीं कहते कि 'हमारा ध्यान करो, हमने यह निकाला है' या किसीके सिरपर हाथ रखकर ध्यान नहीं कराते। वे ज्ञानको शक्तिका कार्य नहीं मानते। शक्तिपात ज्ञानका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कार्य नहीं और न वे इसके प्रतिपादक ही हैं। मूर्ति भी शंकराचार्यकी नहीं है। आचार्यवादी मत-मतान्तरसे प्रभावित होकर सौ-पचास वर्षके भीतर उनकी मूर्तियाँ बनी हैं। यह ज्ञान सिरपर हाथ रखकर नहीं होता, यह तो प्रमाता-प्रमाण-प्रमेयकी परीक्षा है। बहुत-से लोग शक्तिपातपर विश्वास करते हैं, जो उपनिषद्के सिद्धान्तके विरुद्ध है। उपनिषद्का प्रमाण है : दशमस्त्वमसि। यह व्यक्तिमूलक ज्ञान नहीं है कि दुहराओ। यह ध्यान, उपासना, मान्यता नहीं है, किसीका दान किया हुआ नहीं है, उदारता नहीं है। यह तो यथार्थ है, सत्य है। यह आत्मदेव न तो कुछ करते हैं, न किसीके द्वारा निर्मित होते हैं।

१८ और १९ वें मन्त्रोंमें दो बातें कही गयी हैं :

(१) विकारका निषेध : जीवमें स्वाभाविक या प्राकृत परिवर्तनका नाम विकृति है। जेसे : व्यष्टि और समष्टिमें बचपन, जवानी, बुढ़ापा, जन्म-मरण। व्यष्टि-समष्टिका भेद भी व्यष्टिमें तादात्म्यके कारण है, अन्यथा नहीं। इस स्वाभाविक परिवर्तन, विकारके साथ आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा अज, नित्य, पूर्ण, एवं स्वयंप्रकाश है। स्थूल-सूक्ष्मके हननसे इसका हनन नहीं होता। यह देहत्रयसे, व्यष्टि-समष्टिसे, और कृताकृतसे विलक्षण है। इसके द्वारा आत्मामें विकारका निषेध किया गया है।

(२) कर्मका निषेध : आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रयत्नपूर्वक जो क्रिया की जाती है, उससे भी आत्मा खुद कर्मसे घिसते-घिसते न तो जन्मता-बदलता है, न स्वयं प्रयत्न करके ही जन्मता-मरता है।

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुम्। यदि यह स्वयं अभिमान करे कि मैं इसे मारूँगा या यह मुझे मारेगा, तो वह झूठा अभिमान है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipranet Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जबतक एक क्रियाका कर्तापन और विषय है, तबतक सभी क्रियाओंका कर्तापन और विषय रहेगा तथा तबतक इसका हत्यारापन नहीं छूटेगा। बाध्य-बाधकभाव बना ही रहेगा।

उभौ तौ न विजानीतः।—ये दोनों अज्ञानी हैं। अपने आत्माको नित्यशुद्ध बुद्ध-मुक्त ब्रह्मको न जाननेके कारण तुम स्वयं पाप-पुण्यसे निर्लिप्त नहीं जानते। अज्ञान ही अपनेको कर्ता-भोक्ता-संसारी, परिच्छिन्न-जीव और ब्रह्मानुभूतिसे वंचित करनेवाला कारण है: इसलिए तत्त्वज्ञान द्वारा इस अज्ञानको ही निवृत्त करना चाहिए।

केवल तीन ही स्थितियां हैं: या तो तुम साँपको सच मानो या रज्जुका अस्तित्व ही न मानो तो ठीक है। तुम अपनी भ्रान्तिमें परिपूर्ण हो। सच्चा जड़दर्शी, भूत-भौतिकदर्शी वह है जिसकी दृष्टिमें 'चैतन्य' नामकी कोई मूल धातु नहीं है। सर्प ही सर्प है, रज्जु-नामकी कोई चीज नहीं है। सर्प ही संसार है। नोटका बण्डल, सोना-चांदी खाना-पीना सब संसाररूप हैं।

दूसरी बिलकुल सच्ची दृष्टि है: यह रज्जु ही रज्जु है। अन्य कुछ नहीं, चैतन्य ही चैतन्य है। एक ही चीज है, उसका नाम बेवकूफने सर्प रखा है। तत्त्वज्ञानी जानता है कि वह रज्जु है। एक आत्मदेव अखण्ड, परिपूर्ण, चैतन्य हैं। वहाँ न कभी साँप पैदा हुआ, न है, न होगा। एक तत्त्वदर्शी, चैतन्यदर्शीकी यह दृष्टि है। बीचमें जितने हैं, वे गड़बड़ाध्यायी हैं।

गड़बड़ाध्यायी यानी क्या? एक फकीरी बात है। एक आदमीको साँप ही साँप दीख रहा था। दूसरेने कहा: 'यह तो रस्सी है, साँप नहीं।' उसने सोचा—'यह है तो साँप, बताते हैं रस्सी, तो रस्सीमें साँप लिपटा हुआ होगा। बिना रस्सीके साँप कैसे लटकता?' अवश्य कोई चैतन्य 'आधार-अधिष्ठान सहारेके रूपमें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equinomous Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

होगा ? उसमें यह लम्बायमान—'दाल भातमें मूसकचन्द'—रस्सीमें मिलजुलकर लटकता है। सर्पमें रस्सी व्यापक होगी, सर्पका आधार होगी रस्सी।

ये बेचारे पहचानते तो हैं नहीं, सोच रहे हैं कुछ-का-कुछ! असलमें साँप नहीं, रस्सी ही है। तत्त्वज्ञके लिए रस्सी है, मूर्खके लिए साँप है। बीचमें थोड़ी अपनी इन्द्रियोंकी मानी, थोड़ी ज्ञानीकी मानी जो सुन रखा था और दोनोंकी खिचड़ी पका दी। जबतक मूर्खता है तबतक जड़ता है, नहीं तो एकमात्र चिन्मात्र वस्तु है। डॉक्टर बीमारी दूर करनेके लिए जो मिक्स्चर देते हैं, उसमें व्याप्य-व्यापक, आधार-आधेय, कार्य-कारणभाव नहीं है! सर्प नियम्य और रस्सी नियन्ता हो, ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है; एक मात्र ब्रह्म है! या तो अज्ञानी लोग मानते हैं ऐसा, या ज्ञानी लोग मानते हैं, ऐसा ही है; बीचकी स्थिति नहीं है। सब भ्रान्तिसे युक्त हैं। जड़ मूलतः चैतन्य नहीं है और चैतन्य मूलतः जड़ नहीं बनता। चैतन्य यदि परिवर्तनशील और जड़ हो जायगा तो वह चैतन्य नहीं, जड़ है। यदि चैतन्य ज्यों-का-त्यों है, नहीं बदलता, तो देश-काल-वस्तुके भेद-परिच्छेदकी कल्पना 'मैं हूँ' की कल्पना वैसी ही झूठी है, जैसी सीपमें चाँदी। रजतांश और इदम्-अंशका विवेक हो, तो बोध होगा कि इदम्-अंश सच्चा है और चाँदी झूठी है। जो अपनेको क्रिया-विक्रियामें फँसाये हुए हैं, वे दोनों नहीं जानते : उभौ तौ न विजानीतः।

संसारमें जितना सुख-दुःख, पाप-पुण्य, राग-द्वेष, आवागमन, परिच्छिन्नता और भेदभाव है, सबके मूलमें अज्ञान है। इसी अज्ञानको मिटानेवाला वेदान्त है। अपने आत्माको समझो : नायं हन्ति न हन्यते। यह आत्मा न मारता है और न मारा जाता है।•

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaipayee Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

२०. वीतशोक द्वारा आत्मदर्शन

संगति :

उन्नीसवें मन्त्रमें आत्माकी अमरता, उसका अकर्तापन और अभोक्तापन बताकर यह कहा गया कि आत्माको कर्ता-भोक्ता जाननेवाले अज्ञानी हैं और ज्ञानी स्वयं आत्मस्वरूपमें एकरस स्थित होनेके कारण कर्म करता हुआ भी कर्मसे अलिप्त रहता है।

बीसवें मन्त्रमें 'इस आत्माको कौन जानता है, जाननेसे क्या होता है, किस प्रक्रियासे जानता है और क्या जानता है ?' इन बातोंका वर्णन किया जा रहा है।

अणोरणीयान् महतो महीया-
नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुप्रसादान् महिमानमात्मनः ॥२०॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajpayee Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

यह अणुसे भी अणुतर और महान्‌से भी महत्तर आत्मा जीवकी हृदयरूप गुहामें स्थित है। निष्काम पुरुष अपनी इन्द्रियोंके प्रसादसे आत्माकी उस महिमाको देखता है और शोकरहित हो जाता है ॥ २० ॥

यह आत्मदेव कैसे हैं? अणुसे भी अणीयान्। साँवा, चावल, गेहूँ, जवके भीतरसे एक शक्ति निकलती है। 'भाति'—मालूम पड़ता है तो शक्ति है। डॉक्टर लोग परीक्षा करके बता देते हैं कि इसमें क्या चीज है और कहाँ-कहाँसे शक्ति आती है। इन सबमें अणुशक्ति आती है। भाष्यमें 'साँवा' का नाम लिया गया है—'सूक्ष्मा, श्यामाकादेरणुः।' महात्मा लोग छोटी-छोटी चीजोंको इकट्ठा करते और अपनी जीविका चलाते हैं; क्योंकि इनमें शक्ति है। अणुमें परमाणु है और परमाणुमें शक्ति है। यह शक्ति कहाँसे आयी? चैतन्यसे—जिस शक्तिसे अणु टूटते, फूटते और जुड़ते हैं।

'अणीयान् = अतिशयेन अणुः।' अणुसे भी अणु, अत्यन्त सूक्ष्मतर। अणुका संचालन, स्फोट, संयोजन-वियोजन जिस शक्तिवैचित्र्यसे होता है वह शक्ति उस अणुसे भी अणु, अत्यन्त सूक्ष्म है जो तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र या ध्यानसे भी पकड़ा नहीं जाता।

प्रश्न होना स्वाभाविक है कि तब तो वह नन्हा-मुन्ना होगा?

नहीं, वह तो 'महतो महीयान्'—महान्‌से भी महान् है। अणुमें तो परिच्छेद होता है, उसमें नहीं। वह परम सूक्ष्मतम है, नन्हा नहीं, परिच्छिन्न नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

एक ही वस्तु अणु भी है और महान् भी। पृथ्वी और आकाशसे भी महान् है।

ये बातें कैसी ?

ये दो बात नहीं हैं। यह आत्मतत्त्व जिस वस्तुके रूपमें भासता है, उसी रूपमें है। अणुवत् और महद्वत् दोनों वही है। 'रस्सी सर्पवत् है' माने वही सर्पकी पूँछ, पेट, फन, सिर, जीभ, आँख और हिलना-फुफकारना है। किन्तु रस्सीका ज्ञान हो गया तो कुछ नहीं है। आत्मदेव जिस आकारमें भासता है, वही हो जाता है। साँवा, पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्र सब दीखते हैं; पर हुआ कुछ भी नहीं।

आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्। सभी नाम, रूप, वस्तु उसकी उपाधि हैं और ब्रह्मासे लेकर तृणतक सब उसीमें अध्यस्त हैं। सम्पूर्ण अध्यस्त वस्तुका अधिष्ठान होनेके कारण वही सबका अधिष्ठान है और सम्पूर्ण प्राणियोंकी हृदय-गुहामें निवास होनेके कारण वही आत्मा है।

मुझको क्या तू ढूंढ़े बंदे, मैं तो तेरे पासमें।

ब्रह्मासे लेकर चींटीतक सबकी हृदय-गुहामें वही परमात्मा है। जन्तु=तुच्छ वस्तु। जायते इति जन्तुः—केवल पैदाभर होता, किसी काम नहीं आता, पैदा हुआ और मरा—ऐसे जन्तुकी हृदय-गुहामें भी वही परमात्मा है। 'मैं' पदका यही अर्थ है। ब्रह्मा-विष्णु-महेशका मैं, साकार, निराकार सब वही है। अन्तर्यामीका असली 'मैं' वही है।

एक झूठा 'मैं' होता है। एक दिन एक सेठको घाटा लगा तो उसका लाख, दो लाख रुपया चला गया। वह बोला : 'अरे, मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

मर गया।' उसने झूठ ही धन जानेको अपना मरना समझा। किसीके हाथमें पक्षाघात हुआ तो बोला: 'मैं मर गया।' तुम देह नहीं हो। मिथ्या ही मान लिया कि 'मैं मर गया।' बेहोश हो गये तो कहते हैं: 'आदमी मर गया' और होशमें आये तो कहते हैं: 'जिन्दा हुआ।' ये सब एक कक्षामें हैं। असली मैं सबका वही है। श्रीशंकराचार्यने भाष्यमें कहा है:

तमात्मानं दर्शन-श्रवण-मनन-विज्ञानलिङ्गम्।

अर्थात् इस शरीरमें जो भी देखनेवाला द्रष्टा, सुननेवाला श्रोता, करनेवाला कर्ता, मनन करनेवाला मन्ता, जाननेवाला विज्ञाता है वह वही है। देखनेवाला आंखसे देखता है, पर उसका असली मैं कौन है; वैसे ही श्रोता, कर्ता, मन्ता, विज्ञाताका असली 'मैं' कौन है? ये सब द्रष्टा, श्रोता, कर्ता, मन्ता, विज्ञाता आत्माके लिंग हैं। प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, ऐतरेय-उपनिषद् और वेद— सबमें 'लिंग' शब्दका प्रयोग मिलता है। आगका लिंग धुआं है। स्त्री और पुरुषके भिन्न-भिन्न प्रकारके शरीर हैं। ऐसा बाह्य लिंग या चिह्न आत्माका नहीं है। यह न अनुमानसे सिद्ध है, न अनुमानका साधक है। अपने आपमें ही जो ऐसा-ऐसा मालूम पड़ता है, वह आत्मतत्त्व सबमें एक है। वही असली मैं है।

आत्मतत्त्वको देखनेसे क्या होता है, वह क्या है? यह कहते हैं: तमक्रतुः पश्यति। अक्रतु देखता है। क्रतु = 'यह करेंगे तब यह पायेंगे' मनमें यह बात भरी हो। जैसे: 'व्यापार करेंगे तो आमदनी होगी, यज्ञ करेंगे तो स्वर्गप्राप्ति होगी,' ऐसे अपने कर्तापनके आधारपर कर्मकी साधनताको स्वीकारकर फलकी जो आकांक्षा की जाती है, वही 'क्रतु' है। दुनियामें सब ऐसे ही कर्ता-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitization: eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

भोक्ता हैं। अनमिली चीज पानेकी इच्छा करना ही अज्ञान है। चाह शान्तिसे बैठने नहीं देती। उसमें कर्तापन भरा है। जिसके ये तीनों भ्रम कि 'हम अधिकारी हैं और यह करेंगे तो यह पायेंगे' कट गये हैं उसका नाम है, 'अक्रतु'।

तुम मानते हो कि वहाँ जानेपर ईश्वर मिलेगा, दिलमें नहीं; गंगा-किनारे मिलेगा, बदरीनाथ गये बिना नहीं मिलेगा। ऐसा मानने-जाननेवाला कहा करता है कि 'हे ईश्वर! मेरे दिलमें रहनेवाला तू मुझे पसन्द नहीं। हमसे हजार कोसपर रहनेवाला ईश्वर मुझे पसन्द है।' ईश्वरके एक हिस्सेको पसन्द करना या पसन्द न करना दोनों अपराधकी कक्षामें आते हैं।

त्वद्यात्रया व्यापकता हता ते,

तुमसे मिलनेके लिए मैंने यात्रा की और तुम तो मेरे दिलमें बैठे हो, उधरसे मैंने अपनी आँखें हटा लीं। मैंने कहाँ देखा कि तुम मेरे दिलमें हो?

ध्यानेन चेतःपरता हता ते।

तुम तो मुझसे मिले बैठे हो और मैं विरही होकर तुम्हारा ध्यान करता हूँ। अपना प्रीतम अपने दिलमें साक्षादपरोक्ष है, तब ध्यान कैसा?

स्तुत्याऽनया वाक्-परता हता ते,

तुम्हारे बारेमें बोल-बोलकर अपनी जानकारीमें तो मैंने तुम्हारी तारीफ कर दी, पर वास्तवमें तुम्हारी निन्दा ही कर डाली। अनन्तपति, प्रधानेश्वर और कारण-प्रधानका जो पति है, उस प्रधानाधिष्ठानको हमने जरा-सी बात कह दी! जैसे पृथिवी-पतिको दो खेतका मालिक बताना, ब्रह्माण्डपतिको कौड़ीका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

मालिक बताना। ईश्वरके स्वरूपमें एक ब्रह्माण्ड एक सरसोंके दानेके बराबर भी नहीं है। अतः जो वाणीसे परे है, उसे वाणीसे बोल-बोलकर छोटा बना दिया। इसलिए—

क्षमस्व शम्भो त्रिविधापराधाः।

शम्भो! हमें माफ करो! तुम हमें सोते समय भी छोड़कर दूर नहीं जाते, पर हम तुम्हें जागते समय भी छोड़ दूर चले जाते हैं।

अक्रतुः = जितने हमसे भिन्न विषय हैं—देखे और अनदेखे, उन सबकी ओरसे बुद्धि हटाकर जिसकी गोदमें बुद्धि रहती-सोती या जन्म लेती है, उसमें स्थित होना 'अक्रतु' या अकाम होना है।

धातुप्रसादात् = थोड़ा धातुका प्रसाद चाहिए। इन्द्रियाँ, मन और प्राण धातु हैं; क्योंकि ये ही शरीरको धारण करते हैं। इनका प्रसाद अर्थात् निर्मलता चाहिए। जैसे स्त्री रूठे तो मायकेमें, होटल या क्लबमें चली जाय; पुरुष रूठे तो मित्रके घर चला जाय; ऐसे ही हमारी ये इन्द्रियाँ जब संसारके विषयोंके साथ सम्बन्ध जोड़ती हैं तो रूठी हुई हैं, निर्मल नहीं हैं। चित्त प्रसन्न नहीं, आंखमें आंसू हैं, तभी तो अपना घर, आत्माको छोड़ दूसरेसे मिलने जाती हैं। 'धातुप्रसादात्' यानी अन्तःकरण, मन, वाणी, इन्द्रियाँ सब शुद्ध हों। 'शरीरस्य धारणात् धातवः'—शरीरको धारण करनेके कारण मन आदि धातु कहलाते हैं।

रास्तेमें होली खेले तो रंग उड़ा; कपड़ा बिगड़ा तो बदल दिया, स्नान किया। लेकिन क्या उससे हम सचमुच अशुद्ध हो गये? ब्राह्मणत्व, हिन्दुत्व, संन्यासत्व, मनुष्यत्व, जीवत्व कहीं चला जाता या नष्ट हो जाता है? सभी ज्यों-के-त्यों ही रहते हैं। मल आया तो प्रक्षालन कर दिया। आत्माकी स्थिति भी ऐसी ही है। शरीर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

चाहे जनमे या मरे, बालक, जवान, अधेड़, बूढ़ा कुछ हो, वह ज्यों-का-त्यों बना रहता है :

एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य
न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्।

कर्मसे उसकी वृद्धि-ह्रास नहीं होते। जिसने इस प्रकार अपनी महिमा जान ली कि मैं ऐसा परब्रह्म परमात्मा हूँ, तो क्या हुआ ?

अक्रतु पुरुष अपने मन-इन्द्रियोंकी निर्मलतासे अपनी महिमाको जानकर निष्काम हो गया। कामना-लोभ, कर्मफलसे मुक्त होकर वीतशोक हो गया। वीतरागता भी स्वरूप-ज्ञानमें ही होती है। बाहरी वीतरागता दो कौड़ीकी भी कीमत नहीं रखती। उसमें तो बनिया ही फँसता है। आप यदि बिना खाटके सो सकते हैं तो विरक्त हैं ? शास्त्रमें आया है—

जपदम्भस्तपोदम्भो ध्यानदम्भस्तथैव च।

जपदम्भ—घरमें नहीं, बाहर माला फेरेंगे, लोगोंको दिखायेंगे। तपोदम्भ—घरमें कोई न हों तो खा लेंगे, नहीं तो बतायेंगे कि हम तप करते हैं। ध्यानदम्भ—भरी सभामें पीठकी रीढ़ सीधीकर आँखें बन्दकर बैठ गये तो लोग समझेंगे कि ये घरमें भी ध्यान ही करते होंगे। पर वहाँ तो स्त्रीको डाँटते हैं, नौकरको गाली देते हैं !

सर्वे निःस्पृहदम्भस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

लेकिन सबसे बड़ा दम्भ क्या है ? वीतराग, वीतलोभ-काम-स्पृह होना बहुत बड़ा दंभ है। निर्दम्भ वस्तु है वीतशोक होना—चाहे दुनियामें कुछ हो जाय, अपने हृदयका शोकग्रस्त न होना। यह जीवनमें आना चाहिए। यह निर्दम्भ वीतशोकता अपनी महिमाके ज्ञानसे, आत्मज्ञानसे प्राप्त होगी। तब उसे संसारका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vajiram Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कोई धर्म-अधर्म, देश-काल, वस्तु-द्रव्य कोई अपना स्पर्श नहीं कर सकता।

यह हमारे वीतशोक होनेकी पद्धति है। किन्तु जो अक्रतु नहीं होगा, वह वीतशोक भी नहीं होगा। उसकी नजर घूम-फिरकर अपने ही नोन-तेल-लकड़ीपर जायगी। संसारमें सत्यके विपरीत ले जानेवाली कामना है। मनुष्य सच बोले तो उसके मनके मुताबिक भोग नहीं होगा, संग्रह नहीं होगा। इसीलिए वह झूठ बोलता है। कामनापर चोट पड़ती देखकर आदमी ईमानदारी और सत्यसे विचलित हो जाता है।

बचपनमें हमें हमारे पितामह दो हजार वर्षसे भी पुरानी एक संस्कृत पुस्तक 'कथासरित्सागर' सुनाते थे। उसमें बढ़िया-बढ़िया कहानियाँ हैं। एक कहानी है :

"दो मित्र यात्रा कर रहे थे। रास्तेमें बड़ा भारी जंगल पड़ता था। उसमें शेर रहते थे। रात बितानेके लिए वे पेड़पर चढ़ गये। दोनों बारी-बारीसे सोते और जागते। पेड़पर ही दूसरा जगनेवालेकी गोदमें सिर रखकर सो जाता। जब एक मित्र सो गया तो पेड़के नीचे एक शेर आया और जगनेवाले मित्रसे बोला : 'तेरी गोदमें सिर रखकर जो सोया है, वह तेरा दुश्मन है। उसे नीचे ढकेल दे, मैं खा जाऊँ!'

मित्र : 'यह तो मेरे विश्वासपर सो रहा है।'

शेर : 'वह तुझे बड़ा धोखा देगा!'

मित्र : 'धोखा देगा तो मेरा मित्र ही देगा न? मित्रके हाथों धोखा खाना अच्छा है। वह मारेगा तो मरेंगे, पर तुम्हारे हाथों मरनेको राजी नहीं!'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अन्तमें शेरने उसे खजानेका प्रलोभन दिया, फिर भी उसने अपने मित्रको नीचे नहीं ढकेला।

दूसरेकी बारी आयी तो शेरने उसे भी वही बात कही। वह शेरकी बातोंमें आ गया। उसने अपने मित्रको नीचे ढकेल दिया। नीचे ढकेलते ही उसने जगकर देखा तो सामने शेर खड़ा था। वह पागल-सरीखा हो गया। शेर उसे खाने चला तो वह बोला : 'हट्-हट्, छूना मत हमें! अब हम तुम्हारे खाने लायक नहीं रहे। मित्रने मेरे साथ द्रोह किया, अब मैं जिंदा कहां हूं? मैं तो एकदम मुर्दा बन गया। मुझे छूना नहीं।'

आखिर शेर भी छिटक गया।

वाचा विचलितं येन सुकृतं तेन हारितम्।

वह सोचने लगा—हमारी रक्षाका वादा करके हमारा मित्र टल गया! उसके पुण्य जल गये, तो हमारे पुण्य भी जल गये। मैं अब किसी कामका नहीं रहा।' फिर वह पागल हो गया और कैसे-कैसे अच्छा हुआ, इसका भी उसमें सुन्दर वर्णन है।

संसारमें मनुष्य कामनाके वश होकर ही व्यभिचार, चोरी, हिंसा करता है; मोही और लोभी बनता है। उसकी पीठ ईश्वरकी ओर तथा मुंह संसारकी ओर रहता है। छोटी-छोटी चीजोंको पकड़कर बैठता है। वह ईश्वरको क्या जाने? उसे स्वर्ग, ब्रह्मलोक, राजभोग चाहिए। पर इससे परमात्मा नहीं मिलता। परमात्माके पास जानेका रास्ता मौतसे गुजरता है। दृष्ट-अदृष्ट सभी विषयोंसे जिसकी बुद्धि उपरत हो गयी है, वही इस पथपर चल सकता है। नचिकेता परमात्माके पास जानेके लिए मृत्युके पथसे गुजर रहा है। उसके बाद कोई वस्तु है, तो केवल परमात्मा ही है।

कामान् यत् कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijaymani Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

(शरीरका कुछ ठिकाना नहीं, आज रहे, कल न रहे। फिर भी मनुष्य छोटी-छोटी चीजोंको पकड़नेमें उलझा हुआ है। धर्म और ईश्वरकी ओरसे उसने पीठ फेर ली है, उसे अपना साथी नहीं बनाया। लेकिन क्या उसके साथ दुनियाके रिश्तेदार, पैसा, कुर्सियाँ जायेंगी?)

अब तो हमारा सम्पर्क सम्प्रदायवादियोंसे छूट गया है। पहलेकी बात है। एकबार महात्माओंमें चर्चा छिड़ी : 'पाप प्रारब्धसे, ईश्वरकी प्रेरणासे या मनुष्यके करनेसे होता है? मनुष्यमें पापका संकल्प कहाँसे आता है?' मैं सब छोड़ आया हूँ न? प्रारब्ध तो पाप-पुण्यका फल है। फल तो केवल भोगपर्यवसायी होता है। प्रारब्ध सुख या दुःखरूप भोग दे सकता है। उससे पाप-पुण्य नहीं होता। ईश्वरको क्या गरज है कि वह किसीसे दुश्मनीकर उसे नरकमें भेजे, पाप करवाये? प्रारब्ध या ईश्वर दोनोंमें-से एक भी पाप नहीं करवाता, पापका फल देता है। 'प्रारब्धसे कोई झूठ बोलता है' ऐसा कहनेवाला मूर्ख है। उसे प्रारब्ध क्या है, यह मालूम ही नहीं है। प्रारब्धसे दुःखी हुआ जाता है, 'पर मैं दुःखी हूँ' यह अभिमान मूर्खतासे होता है। ज्ञान हो या न हो, प्रारब्ध दुःख नहीं देता, वह भले ही मर जाय।

'तो हम पाप क्यों करते हैं? कौन उसका प्रेरक है?'

केवल विषयासक्ति। किसी सेठसे भिखारीने कहा : 'बाबा, चार पैसा दे दे!'

सेठ : जा जा, नहीं देते!'

भिखारी : 'ओ, दे दे ना!'

सेठ : 'हमारे पास है ही नहीं!'

वह ऐसा क्यों बोला कि 'है ही नहीं?' धनसे उसकी आसक्ति है, इसीलिए झूठ बोला।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidic Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥—गीता

पापका बाप काम है। पापके मार्गपर चल पड़नेपर ईश्वरकी ओर पीठ हो जाती है। ईश्वरको देख नहीं सकते। अन्तःकरण शीशेकी तरह निर्मल हो, तो झलाझल चमकता हुआ ईश्वर दीखे!

कोई-कोई आसक्ति न रहते भी आदतवश पाप करते हैं। एक साधु था। रातको सब सो जायँ तो वह सबका कमण्डलु बदल दे। एक दिन वह पकड़ा गया। रोज साधुओंमें झगड़ा होता था। उससे पूछा गया: "तुम ऐसा क्यों करते हो?" वह बोला: "हम पहले चोर थे। साधु हुए तो चोरी छोड़ दी, पर तुम्बाफेरी नहीं छूटी।" वह लेता-चुराता कुछ नहीं था, उसकी आदत ही बिगड़ गयी थी।

परमात्माके दर्शनमें सिवा विषयासक्तिके कोई बाधा नहीं है। लोग कहते हैं: "हमें पुत्रासक्ति नहीं, धनासक्ति, भोगासक्ति नहीं है!" लेकिन ये समझते ही नहीं कि "आसक्ति क्या है? ईश्वरका स्वरूप क्या है?"

सारांश, इस विस्तृत विवेचनका सार यह है कि परमात्मा छोटे-से-छोटा है और बड़े-से-बड़ा भी है। जैसे: स्वप्नमें चींटी दीखे या हाथी, वह हमारा ही स्वरूप है, वैसे ही जाग्रत्में एक तृण हो या एक पहाड़, शत्रु हो या मित्र, कच्चे या पक्के, ईमानदार-बेईमान, साहूकार-चोर—सब अपना स्वरूप, मैं अर्थात् परमात्मा है। 'सब परमात्मा है' इसका दर्शन सबके लिए संभव नहीं है। है वही, पर सब उसको पहचान नहीं पाते। उसको वही देख पाता है जो स्वार्थी नहीं है। पाप-पुण्य, राग-द्वेष सुख-दुःख, आना-जाना, परिच्छिन्नता सब जिसमें कट जाते हैं, वह परमात्मा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

२१. सर्वरूप परमात्मा-स्वरूपका वर्णन

संगति :

दृष्ट-अदृष्ट, लौकिक-पारलौकिक दोनों प्रकारके बाह्य विषयोंसे जिसकी बुद्धि उपरत है, वह धातुप्रसाद अर्थात् इन्द्रियाँ, मन और अन्तःकरणकी निर्मलताके कारण आत्माका स्वरूप देखता है, जो पाप-पुण्य, राग-द्वेष, सुख-दुःख, आना-जाना सबसे विलक्षण है—२०वें मन्त्रमें इसकी स्पष्टता की गयी। अब इक्कीसवें मन्त्रमें बताते हैं कि परमात्मा सदा-सर्वदा सर्वत्र विद्यमान है, क्योंकि सब वही है; अतः आना-जाना संभव ही नहीं है।

> आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।
> कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥२१॥

वह स्थित हुआ भी दूरतक जाता है, शयन करता हुआ भी सब ओर पहुँचता है। मद (हर्ष) से युक्त और मदसे रहित उस देवको भला मेरे सिवा और कौन जान सकता है ? ॥ २१ ॥

यमराज ललकारकर बोलते हैं : 'ये महाशय ऐसे हैं कि बैठे रहें और दूर चले जायँ, सोते रहें और सब जगह चले जायँ, यह कैसी पहेली है ? तुम बैठे हो और आँख सड़कपर चली जाती है, आँख जहाँ है वहीं रहती है या सड़कपर चरने चली गयी ? दुनियाँदार लोग टेढ़े होते हैं। सड़क नहीं जाती, वह तो अपनी ही जगहपर रहती है ! गाड़ी होगी सो चलेगी और नहीं चलेगी तो गाड़ी नहीं !

> गाड़ीको चलती कहें, पके दूधको खोया।
> रंगीको नारंगी कहें, देख कबीरा रोया ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaimanet Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ईशावास्योपनिषद्में कहा है :

तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् ।

अर्थात् दूसरे सभी दौड़नेवालोंका अतिक्रमण करके वह एक जगह स्थिर खड़ा है, अर्थात् स्थिर रहकर भी दौड़नेवालोंके आगे है। मन यहाँसे विलायत चला तो हाथ जोड़ा : "हे भगवन्, तुम तो अन्तर्यामी, प्रकाशक और प्रेरक होकर हृदयमें बैठे हो। अब हम विलायत जाते हैं।' दो सेकेण्डमें वहाँ पहुँचा तो देखता है, परमात्मा वहाँ भी मौजूद है। देखकर बोला : "नमस्कार, आप यहाँ कब और कैसे आ गये ?"

परमात्मा बोले : "मैं तो तुमसे पहले ही यहाँ आ पहुँचा।

आसीनो दूरं व्रजति ।

आत्मा यहाँ भी है और वहाँ भी। उसे जाना नहीं पड़ता। परमात्मा पहलेसे सर्वत्र मौजूद है, जैसे हमारी आँख सड़कपर चली जाती है।

आर्यसमाजी शीशा लेकर दिखाने आये कि क्या तुम झूठ बोलते हो ? तुम्हारी आँख सड़कपर चली गयी ? देखो शीशेमें, आँख जहाँकी तहाँ है। वह चलकर सड़कपर नहीं गयी, अपनी ही जगह रहकर सड़कको देखती है। कैमरेसे सूर्य-चन्द्रका फोटो ले लेते हैं। क्या कैमरा सूर्यलोक-चन्द्रलोक गया था ? नहीं, अपनी जगह रहकर ही वह फोटो लेता है। असलमें आत्मदेव अपनी जगहपर ज्यों-के-त्यों रहते हैं। मनकी, आँखकी शक्लें बदलती हैं और मनमें, आँखमें होनेके कारण उनकी सब स्थितियोंका वे अपनी समझते हैं। नाक गुलाबकी गंधमें चली गयी ? नासिका तो जहाँकी तहाँ है। वह जाय तो कट जाय। गंधकी ओर वृत्ति चली गयी, यही नाकका जाना है। 'दूरं व्रजति'—आत्मदेव अपनी जगहपर बैठे हैं; मन, नेत्र, नाकमें गतिका भाव वृत्तिके कारण हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Gurukul Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।

जब मन-इन्द्रियाँ सो जाती हैं, तब आत्मदेव इनसे अपना तादात्म्य छोड़ देते हैं। तब जाने-आनेका ज्ञान रहता है; पर किसी विशेष आकारमें नहीं है। सामान्य-विज्ञानरूप हो गये। सामान्य-विज्ञान सर्वव्यापी है। उसमें न विषय है, न विषयका अभाव और न शब्दादि अनुभव ही। आजकल तो व्यापारी, डॉक्टर, इंजीनियर बने पैसा कमानेके लिए। संस्कृतमें 'तर्कसंग्रह' बच्चोंकी किताब है। वैसी ही छोटी पुस्तक है : 'वेदान्त-परिभाषा, अर्थ-संग्रह।'

एकबार हम काशी-विश्वविद्यालय जा रहे थे। वहाँ शास्त्रार्थ होनेवाला था। काशीमें पण्डितराज राजेश्वरशास्त्री बहुत बड़े विद्वान् हैं। वे हमें पंडितराज बोलते हैं। हम लोग इक्केपर बैठे जा रहे थे। एक दस-ग्यारह वर्षके बालकसे वे पूछ रहे थे : "बेटा, संस्कृतमें शास्त्रार्थ करेगा ?"

वह बोला : 'हाँ'।

पंडितजीने कहा : "मेरे एक प्रश्नका और उत्तर दे दो। सुषुप्ति-कालमें ज्ञानका अभाव हो जाता है या नहीं ?"

बच्चेने कहा : "हाँ।"

पंडितजी : "तो अब सुषुप्तिकी याद कैसे आयेगी ?"

बच्चा : "चाचाजी, मैं 'ज्ञानका अभाव' बोल रहा हूँ। वहाँ अत्यंताभाव नहीं, विशेषाभावसे अभिप्राय है। उस समय ज्ञान-विशेष होता है, यानी शब्द-स्पर्श-रूपादिका अभाव, जो अलग-अलग चीजोंका अभाव होता है। ज्ञान-सामान्यका अभाव सुषुप्तिमें नहीं होता है।"

पंडितजी : "शाबाश बेटे, चल, शास्त्रार्थमें बैठा दूँ।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

विचारमें अक्लकी आवश्यकता पड़ती है। तब नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा, बुद्धि नया-नया मार्ग निकालती है। वह न्याय-शास्त्रका विद्यार्थी था, जाकर न्यायशास्त्रके शास्त्रार्थमें बैठ गया। उसने ललकार दिया : "आ जाओ, कर लो हमसे शास्त्रार्थ !" हमारे साथ रहनेवाले प्रज्ञानानंदजी काशीके ही गौड़ ब्राह्मण हैं। इनको वेदकी पूरी संहिता याद थी। ललकार देते थे : 'आओ, हमसे कोई जटा-घनका पाठ करो।'

शयानो याति सर्वतः। घन सुषुप्तिमें रहनेवाला ज्ञान विशेष-ज्ञान न होनेके कारण सर्वव्यापी है। वह आनन्दरूप है या नहीं ?

कस्तं मदामदं देवम्। संसारका आनन्द उसमें नहीं है। वह स्वयं आनन्दरूप है। आनन्दके दो प्रकार हैं, एक विषयके साथ संबंध करनेपर होनेवाला, दूसरा बिना विषय-संबंधके होनेवाला है। भोगियोंको बढ़िया मोटर, सुन्दर पत्नी, बैंक-बैलेंस आदि विषयोंका आनन्द मिलता है। वे चिकनी चमड़ी, घुंघराले बाल, और बड़प्पनके मदमें आनंद खोजते हैं। मद एक सौ छब्बीस प्रकारके हैं। उनमें एक पत्नीका सुन्दर होना भी है। इसपर शारदातनयके 'भावप्रकाशन'में एक श्लोक है :

उत्तमाङ्गना-परिष्वङ्गजन्यो मदः। बाहरी वस्तु और संग्रहसे मनुष्यको नशा या मद होता है।

साधुका नशा निराला होता है : 'जब लंगोटी-कमंडलु अपने पास है तो क्या होती है दुनिया ?' जब चाहे तब फटकार दिया : 'हमारे पास कुछ नहीं।' यह त्यागका मद है।

आत्मदेवमें ये दोनों नशे नहीं, इसीलिए वे अमद हैं। दुनियाके लोग भांग-गांजा, अफीम, शराबका उधार मज़ा लेकर कहते हैं : 'हम मज़ा लेनेवाले हैं।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

एक आदमीको बीस-पचीस वर्ष पहले देखा था, दस वर्ष पहले भी देखा। उसकी एक आंख सीधी आसमानपर रहती थी, धरतीपर नहीं। पैसेके नोटके बलपर दूसरेको अपने बराबर न समझना उधार लिया हुआ नशा है। परमात्मामें वह नहीं है।

हर्षा=अमद। सृष्टि रहे, बने, बिगड़े, उसमें सृष्टिका कोई आवेश-अभिनिवेश नहीं। परन्तु परमात्मामें 'स्वरूपमद' है जो कभी चढ़ा नहीं और न कभी उतरा ही। वह किसीसे उधार लिया हुआ नहीं रहता। सारी सृष्टि उसमें आये तो समा जाय, न आये तो उसकी जरूरत ही मालूम न पड़े।

वाचस्पति मिश्र परमात्माका सोते आदमीका-सा वर्णन करते हैं: 'कोई आदमी सोये तो नाकमें थोड़ी घरघराहट होती है। वेद परमात्माके नाककी घरघराहट है।'

'उससे तो अर्थ निकलता है?'

'लोक अर्थकी कल्पना कर लेते हैं। सांस थोड़े ही बताती है कि हमारा यह अर्थ है।'

एकबार हमारे घरमें सत्संगके लिए बहुत मेहमान आ गये। खाटें खतम हो गयीं तो एक आदमी हमारी खाटपर सो गया। उसका नाम था चन्द्रशेखर! वह जातिका कायस्थ था।

पिछली साल उसकी मृत्यु हुई। नींदमें उसकी सांसके साथ ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय की ध्वनि निकलती थी।

एक मित्र हमारे घरके दरवाजेपर आये तो घोड़ेसे गिर पड़े। बात सन् १९३०-३१ की है। गांधीजीके हुक्मसे घर परके नंबर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vraj Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

मिटा दिये थे। जिन-जिनने नंबर मिटाये, उन-उनको सजा होती थी। एक डिप्टी कलेक्टर और हमारे मित्र इसकी जांच करने आये थे। हमसे पूछ रहे थे : 'किसने नंबर मिटाये ? क्या-क्या हुआ ?'

उस वक्त मित्र घोड़ेसे गिर गये तो छः घंटे बेहोश रहे। बेहोशी में मैं लगातार उनके पास बैठा था। उनका शरीर उछलता तो मुँहसे निकलता : हरि ॐ तत्सत्, हरि ॐ तत्सत्। अभ्यास बनाना हो तो ऐसा।

हाँ, भगवान्‌की सांसकी घरघराहटका नाम है वेद : निःश्वसितमस्य वेदाः। अपनी घरघराहट सुनकर ईश्वरकी आंख खुल गयी तो क्या देखते हैं ? सामने पांचों भूत हाथ जोड़कर खड़े हैं ! फिर हँसी आ गयी ! मुस्कराहटके साथ इतने सारे प्राणी बन गये ! वे बोले : 'यह क्या तमाशा है ?' उन्होंने आंख बन्द कर ली तो मिट गयी सृष्टि। इसका सारांश है :

(१) परमात्माके नामकी घरघराहट है : वेद।
(२) परमात्माकी आंख खुलना है : पंचभूत।
(३) परमात्माकी मुस्कराहट है : चौरासी लाख योनियां।
(४) परमात्माकी आंख बन्द होना है : प्रलय।

यह परमात्माका वर्णन है, व्यक्ति-विशेषका नहीं।

देवम् = स्वयंप्रकाश। भगवान्‌का दर्शन करने कहीं जाना हो तो विष्णुकांचीमें जायँ। वहाँ त्रिविक्रमका मन्दिर है। इतनी बड़ी मूर्ति है कि बांससे मशाल जलाकर, ऊपर उठाकर दिखानेपर दीखती है। तो क्या परमात्माका दर्शन हमें मशाल, लालटेन या टार्च लेकर करना पड़ेगा ? नहीं, वह तो स्वयंप्रकाश है। उसको देखनेके लिए किसी

RajGuru Math, Shivalaya, Guru Mandir, Sonwal Evam Rama Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

रोशनीकी आवश्यकता नहीं। न पाँच इन्द्रियोंकी आवश्यकता है और न मन-बुद्धिकी। वह दूसरेकी रोशनीमें रोशन नहीं होता! उसीकी रोशनीसे सब रोशन होते हैं। जिज्ञासुको उसका जल्दी दर्शन नहीं होता, इसका कारण है—बहुत-से लोग अपनी आँखोंकी रोशनीमें, दिया और मन-बुद्धिकी रोशनीमें उसे देखना चाहते हैं! जिसकी रोशनीमें मन दीख रहा है, उसको तो देखो! हमारी रोशनीमें मन दीख रहा है तो हम अपनेको देखें!

यस्य आनन्दस्य मात्रामुपजीवन्ति।

'अन्यानि भूतानि यस्य आनन्दस्य मात्रामुपजीवन्ति'—सृष्टिके सभी प्राणी जिसके आनन्दकी एक मात्रा लेकर आनंदित, उज्जीवित हो रहे हैं, जिसके प्रकाशकी एक मात्रा लेकर प्रकाशित हो रहे हैं—ऐसा जो स्वयंप्रकाश, स्वयं आनन्द, स्वयं सत्, स्वयं चित् परमात्मा है; जिसकी सत्ता किसी सत्तामें आकाररूप नहीं है, जिसका ज्ञान किसी ज्ञानसे प्रकाशित नहीं होता, जिसका आनन्द विषयापेक्ष नहीं है, ऐसा स्वयं सत्-चित्, स्वयं-रस, एकरस, आनन्दस्वरूप आत्मा मेरे सिवा कौन है? वही जानने योग्य है!

मदन्यो ज्ञातुमर्हति। मेरे सिवा कौन उसे जाननेका अधिकारी है? वह तो भीतर ही बैठा है। मेरे 'मैं' को मेरे सिवा कौन जानेगा? पहले मृत्युरूप हो जाओ। सारे दृश्य प्रपंचका निषेध कर दो और निषेधावधि शेषसे वर्तमान तुमसे यानी यमराज, मृत्युसे बोलो।

जो अपनेको ब्रह्म कहता है वह अपनेको ब्रह्म नहीं जानता और जो जानता है वह अपनेको ब्रह्म नहीं कहता! एक साधु अपनेको ब्रह्म कहता था। उससे किसीने पूछा: "तुम अपनेको ब्रह्म क्यों कहते हो?"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

साधु : "तुम अपनेको मनुष्य क्यों कहते हो ?"

वह : 'हम मनुष्य हैं, इसलिए अपनेको मनुष्य कहते हैं।'

साधु : 'हम ब्रह्म हैं, इसलिए अपनेको ब्रह्म कहते हैं।'

वह : 'तुम ब्रह्म कैसे ? तुम तो जीव हो !'

साधु : 'तुम मनुष्य कैसे ? तुम तो हिन्दू हो !'

हिन्दू-भाव मनुष्यमें कल्पित है, तो जीव-भाव ब्रह्ममें कल्पित ! ब्राह्मण-हिन्दू मनुष्य है या नहीं ? जो अपनेको मनुष्य जाने वह मनुष्य कहे, ब्रह्म जाने वह ब्रह्म कहे ! एकबार अज्ञान निवृत्त हो गया, तो वह अपनेको ज्ञानी नहीं, ब्रह्म कहता है ! ज्ञानका प्रयोजन पूरा हुआ तो ज्ञान-अज्ञान दोनों कट गये। दोनों कल्पित हुए ! बिना हुए ही मान रहे थे।

एक आदमी डण्डा लेकर दौड़ा। दूसरेने पूछा : "क्या करता है ?"

उसने कहा : "मैं पीपलमें रहनेवाला भूत हूँ। तुम्हें मारनेके लिए आया हूँ।"

दूसरा आदमी पहले तो घबड़ाया। पीछे पासमें पड़ा पत्थर उठाकर बोला : "मैं हनुमान् हूँ ! तुम क्या समझते हो ?"

अब इधरसे आया भूत और उधरसे आया हनुमान् ! हनुमान-जी तगड़े पड़े, और भूत कमजोर ! अब वे सावधान हो गये। हाथ जोड़कर बोले : "कृपा करो महाराज, माफ करो, माफ करो !"

दूसरेने पूछा : "कहाँ है भूत ?"

वह : "वह तो गया।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरा : "अच्छा तो हमारा हनुमान् भी गया ! भूतको भगानेके लिए हनुमान्‌जी आये थे—न भूत आया था, न हनुमान्। दोनों भावावेशमें थे। अज्ञान भूत है तो ज्ञान हनुमान्‌जी। ज्ञान अज्ञान-दूरकर स्वयं शान्त हो जाता है। परब्रह्म परमात्मा ज्यों-का-त्यों रहता है।

कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति।

यमराज कहते हैं : "मेरे सिवा ऐसा कोई नहीं जो स्थिति-गति-मति, नित्य-अनित्य आदि परस्पर विरुद्ध अनेक उपाधियोंमें तत्-तत् उपाधिवान् भासे।

विरुद्धधर्मवत्त्वाद्विश्वरूप इव चिन्तामणिवदवभासते।

जैसे चिन्तामणिको कहो कि 'सोना चाहिए' तो सोनेका खजाना मालूम पड़ेगा। सोना उठा लो तो चिन्तामणि ज्यों-का-त्यों रहेगा। चाँदी, हीरा जो माँगों, सो देकर भी वह वही रहेगा। इसी प्रकार यह परमात्मा तत्-तत् वासना-उपाधिके अनुरूप पूर्ण विश्वके रूपमें भासता है, पर है वह चिन्तामणि। श्रीशंकराचार्यने भाष्यमें 'चिन्तामणि'का प्रयोग किया है। वल्लभाचार्यजी तो 'चिन्तामणि' का प्रवेश करते ही हैं। वल्लभ-सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें चिन्तामणि, कामधेनु, कल्पवृक्ष शब्दोंका वैसे ही प्रयोग होता है जैसे वेदान्तियोंमें अद्वैत-सम्प्रदायमें रज्जु-सर्प चलता है। वे अविकृत दृष्टान्तोंको पौराणिक दृष्टान्तोंको ग्रहण करते हैं। जैसे चिन्तामणि तत्-तत् मनोरथको पूर्ण करनेवाले तत्-तत् रूपोंमें भासता है, वैसे ही तत्-तत् वासना-स्थिति-गति, नित्यानित्य आदि विरुद्ध उपाधियोंके कारण परमात्मा विश्वरूप भासता है। इसे मेरे सिवा उसे अन्य कौन जान सकता है ?"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vamanrao Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

२२. पुरुषका हर्ष-शोकसे मुक्त हो जाना :

संगति :

दु:ख मिटानेका उपाय मरे हुए आदमीको लौटाना नहीं है। इस बातको न समझनेवाले व्यक्तिको झूठा ही सन्तोष करना पड़ता है। तुम चाहते हो कि दूसरा आदमी तुम्हारे अनुकूल हो जाय। दो बीज-संस्कारमें से दो मन निकला हुआ है। पैसेसे खरीदा हुआ जमूरा भी अपना स्वार्थ पूरा होनेपर तुम्हारा नहीं रहेगा। स्वातन्त्र्यसे तुम्हें अपने जीवनका विकास करना पड़ेगा। जो अनुकूल है, वह प्रतिकूल होगा। जो है, सो बिछुड़ेगा। 'जो चाहे सो हो' यह तो ईश्वरका संकल्प है। मनुष्यके लिए तो यह दु:खी होनेका मार्ग है। परमात्मा अपना आपा है। उसके स्वरूपको जानना सुखी होनेके लिए आवश्यक है।

चिन्तामणिसे चावल, लड्डू, रोटी, नोट जो मांगो, सो देकर भी स्वयं उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। परब्रह्म परमात्मामें बिना कोई परिवर्तन हुए, बिना कोई विवर्त हुए सम्पूर्ण प्रपंच प्रतीत हो रहा है।

विश्वरूप इव परमात्मा चिन्तामणिवत् अवभासते अलम् अन्येन व्याख्यानेन। दो मणियां हैं, ऐसी व्याख्या न कर एक विश्वरूप

RajGuru Math, Shivalaya, Gurudev Collection, Vairmani Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मणि है और एक चिन्तामणि तथा परमात्मा दोनोंके समान प्रकाशित हो रहा है' ऐसा न कहकर यह कहा गया : चिन्तामणिवत् विश्वरूप इव परमात्मा अवभासते।

परमात्मा एक जगहपर बिलकुल स्थिर बैठा रहता है। और दूर-दूर तक यही है, क्योंकि इन्द्रियोंके विशेष-ज्ञानका छोटा या बड़ा होनेका इसपर कोई प्रभाव नहीं है। शयानो याति सर्वतः अर्थात् जिस समय सम्पूर्ण इन्द्रियाँ सो जाती हैं, उस समय भी देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न यह आत्मदेव ही जाग्रत रहते हैं।

अब २२वें मन्त्रमें साधन-साध्यकी विशेष रूपसे चर्चा की जा रही है।

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥२२॥

जो शरीरमें शरीररहित, अनित्योंमें नित्यरूप है उस महान्, सर्वव्यापक आत्माको जानकर बुद्धिमान् शोक नहीं करता॥ २२॥

सब शरीरोंमें एक शरीररहित वस्तु है। बल्ब हजार जल रहे हैं : लाल, पीले, हरे। सबमें बिजली एक है। एक यन्त्र पंखेके रूपमें हवा फेंकता है तो एक रोशनी देता है। एक चीजको गरम करता है तो एक ठंडा करता है। एक आवाजको पकड़ता है तो एक उसे बढ़ाकर फैलाता है। ये सब क्रियाएँ बिजलीमें नहीं यन्त्रमें हैं। भिन्न-भिन्न यन्त्रोंकी अलग-अलग शक्ल-सूरतें भी बिजलीमें नहीं हैं। विविध रङ्गोंवाली रोशनी नहीं है, बल्बके ये रङ्ग हैं। बैटरी या पावरहाउसमें बिजली पैदा नहीं होती। बिजली नामका एक तत्त्व सारी सृष्टिमें व्याप्त है। पंखेसे हवा पैदा नहीं होती, सारे कमरेमें व्याप्त हवाके हिलनेसे हवा लगती है; मौजूद हवाका ही स्पर्श पंखा करता है। इसी प्रकार पानीमें, हवामें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaijnanik Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

बिजली मौजूद है, उसे पावरहाउस काम करनेके लिए प्रकट कर देता है। दियासलाईकी सींकमें आग डाली नहीं जाती, पहलेसे विद्यमान आग प्रकट हो जाती है। रोनेवाले घटना घटित होनेसे तुरन्त नहीं रोते, दिलमें भरा रोना समयपर जाहिर हो जाता है। वैसे ही हृदयमें भरी हँसी मौकेपर फूट पड़ती है। वाणीको कोई बनाता नहीं, पहलेसे मौजूद वाणी ही प्रकट होती है। इसी तरह आत्मदेव, परब्रह्म परमात्मा सबके शरीरमें पहलेसे ही मौजूद हैं। सांप बिच्छू, मनुष्य, पशु-पक्षी—वे सब टूटने-फूटनेवाले यन्त्र हैं।

शरीरेषु। धात्वर्थ बताता है कि शरीर टूटने-फूटनेवाले हैं। 'शीर्यते इति शरीरम्' हाथमें खून आना बन्द हो जाय तो वह लटक जायगा। कपड़ेकी मिलमें मैंने देखा, कपड़ा बनता जा रहा है। एक धागा टूटा तो मशीन बन्द हो जाती है।

गीतामें शरीरको वस्त्र बताया है। इसके लिए दिल नहीं बिगाड़ना चाहिए। कपड़ेसे अधिक मूल्यवान् हमारा दिल है। आज-कलके लोगोंका यह प्रयत्न होता है कि कपड़ा न बिगड़े, दिल भले ही बिगड़ जाय। वेशभूषामें 'मैच' न हो तो दिल 'मैच' न करे। जैसे पीपलका पत्ता सूखता, सड़ता है वैसे ही यह शरीर भी सूखता-सड़ता, बिगड़ता है।

'शरीरेषु' यह सप्तमी-बहुवचन है। शरीर अनेक हैं और आत्मा एक। शरीर नष्ट होता है, आत्मा नष्ट नहीं होता। शरीर भले ही जन्मे-मरे, आत्मा अजन्मा है; क्योंकि वह अशरीर है। आदमीको यह खयाल ही नहीं आता कि मैं शरीरसे विलक्षण हूं।

अनादिकालसे अबतक कितने शरीर इस आत्मदेवने पकड़े और छोड़ दिये हैं। हम ध्यान लगाकर भी आये-गये अपने चेलोंका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipramasit Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्यान नहीं लगा सकते। यह शरीर उत्तम चेला है, क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय हमारी आज्ञा मानती है। जो हुकुम न माने वह 'चैला' है (जलानेकी लकड़ी), 'चेला' नहीं। वस्त्रके लिए भी 'चैल' शब्दका प्रयोग होता है। लक्ष्मीको गन्दा कपड़ा पसन्द नहीं। वृन्दावनमें पण्डित तुलसीरामजी एक श्लोक बोलते थे :

> कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं
> बह्वाशनं निष्ठुरभाषिणं च।
> सूर्योदये चास्तमिते च शायिनं
> विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिम्॥

सिद्धान्त है : आभिमानिकमेव सशरीरत्वम्। इस शरीरमें तुम अशरीर हो। हम अपनेको शरीर मानते हैं यह केवल अभिमान है। एक सेठ हिन्दुस्तानमें रहते हैं और अपनी सम्पत्ति विदेशमें रखकर अपनेको करोड़पति मानते हैं। पड़ोसीके घर या बैंकमें पैसा रखकर अपनेको धनी मानना झूठा अभिमान है। ब्लैक-मारकेटवाले सरकारसे चोरी करके पैसा रिस्तेदारके पास रखते हैं और बादमें रोते हैं, क्योंकि रिश्तेदार पैसा देनेसे इनकार कर देते हैं। जब-तक वे मना न कर दें, तभीतक अभिमान रहता है। उनका पैसा तो महीनों पहलेसे ही गायब हो गया रहता है, पर पता लगनेपर रोते हैं।

आभिमानिक यानी चीज अपनी न होनेपर भी उससे अपनापन जोड़ना। यह शरीर भी तुम्हारा पैदा किया नहीं है। यह न तुम्हारे जिलाये जीता है, न तुम्हारे रखे रहता है। इसपर तुम्हारा कोई वश नहीं है। यदि वश हो तो मत टूटने दो, दाँत-बालको सफेद मत होने दो, आँख-नाकसे कीचड़ मत निकलने दो। शरीरपर आभिमानिक स्वत्व है कि यह मेरा है, जैसे गोद लिये बेटेपर

RajGuru Math, Shivalal Gurumauli Collection, Varanasi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

स्वत्व होता है। इसीको 'औरस स्वत्व' कहते हैं। अपने रजोवीर्यसे उत्पन्न बेटेसे तो 'धात्विक सम्बन्ध' होता है।

तुम दूसरेकी मोटरके मालिक बन बैठे हो। यह तो छिन जायगी, रहेगी नहीं। भले ही वह उदार हो, ज्यादा दिन तुम्हारे पास रहने दे, पर जिसकी है, ले जायगा जरूर! डाक्टर लोग कोशिश करते हैं कि यह शरीर दो सौ, चार सौ वर्ष रहने लग जाय, पर आबादी बढ़ने न पाये। हम लोग बूढ़े हों, पर कोई नया पैदा होकर पचीस वर्षका नौजवान न हो। ये खूसट लोग स्वयं तो ज्यादा दिन जीना चाहते हैं और नयी आनेवाली विभूतिपर रोक लगाते हैं। उन्हें मृत्यु पसन्द नहीं! अरे, नयी-नयी विभूतियोंको आने दो। नये तिलक, नये गांधी, नये शङ्कराचार्य आयें। सहज स्वभावसे समयपर जो मरते हैं, उनको मरने दो! परन्तु इस ढंगसे तो डाक्टरोंकी जीविका नहीं चलती। एक दिन यह देह शीर्ण हो जायगी। उसकी जीवनी-शक्ति जीर्ण होती जाती है। उसमें स्वत्व आभिमानिक है।

सन् ३०-३१ में बिहारमें दिनमें एक बजे बड़ा भारी भूकम्प आया था। उस समय एक भी चिड़िया पेड़पर नहीं थी, सब पेड़ छोड़कर आसमानमें उड़ती थीं। उन्हें भूकम्प होनेका पूर्वाभास मिल गया था। पेड़ गिरनेका संकेत मिला तो वे वह अपना घोंसला छोड़ उड़ गयीं। परन्तु हम यह जानते हुए भी कि यह शरीर नहीं रहेगा, उसका मोह नहीं छोड़ पाते।

संसारमें सबसे बड़ा दुश्मन कौन है? हमारे जीनेसे जिसके स्वातन्त्र्यमें, लाभमें कमी होती है, वह चाहता है कि यह मर जाय। हमारे मरनेसे जिसका फायदा होनेवाला है, वह चाहता है कि 'हम मर जायँ, जिससे वह मालिक बन सके। हमने बच्चोंको अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बापके बारेमें यह कहते सुना है कि 'यह मरता नहीं।' यही दुनियाकी रीति है। आप साधु, ब्राह्मणको पाँच रुपया दो। वह सोचेगा—हमारा यजमान जिन्दा रहेगा तो पाँच रुपया मिलेगा, मर जायगा तो उत्तराधिकारमें कुछ नहीं मिलेगा।

पंचभूतसे बने इस स्थूल शरीरमें शक्ति, संकल्प, शान्ति, अहम् अर्थात् कर्तापन और भोक्तापन है। ये पाँच कोष हैं। हाथ स्थूल है, अन्नमय कोष हैं। उनमें हिलनेकी क्रिया प्राणमय कोष है। हिलानेकी इच्छा मनोमय कोष है। हिलानेका अभिमान विज्ञानमय कोष है। हिलाते समय या क्रिया शान्त होनेपर सुख या तकलीफका अनुभव होना आनन्दमय कोष है। ये पांचों परतें हैं। पांचोंमें आत्माकी बिजली दौड़ती है।

तुम स्थूलको छोड़ो, क्रियामें आ जाओ। क्रियाको छोड़ो, संकल्पमें आ जाओ। संकल्पको छोड़ो, विज्ञानमें आ जाओ। विज्ञानको छोड़ो, शान्तिमें आ जाओ! अन्तमें शान्तिको भी छोड़ दो, तुम उसके साक्षी हो। यदि शान्तिको भी न छोड़ोगे तो वह और दुःख देगी, क्योंकि वह हर समय नहीं रहती, आने-जानेवाली है, पतिव्रता नहीं है। आत्मा पांचों कोषोंमें रहकर भी खुद शरीर नहीं है। अपने स्वरूपके अज्ञानसे देहमें, पंचकोषमें अहंपनेकी भ्रान्ति हो रही है। इस भ्रान्तिको छोड़कर अपने अशरीर-स्वरूपमें स्थित होओ! तुम किसीके माँ, बेटा-बेटी, या पति-पत्नी नहीं हो।

संसारी गृहस्थ-लोग हमसे पूछते हैं: 'आप क्यों कभी पातिव्रत्यका उपदेश नहीं करते? बेटोंको माँ-बापकी सेवा करनेको क्यों नहीं कहते? लोगोंको सत्यनारायणकी पूजा करनेको कहिये। करवा-चौथ बीत गयी और आपने गणेशजीकी पूजाकी बात ही नहीं की?' यह बात पण्डित-पुरोहितके लिए है। सम्बन्ध द्वारा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Digitized by Vardhman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सुखी होनेकी पद्धति संसारमें है और सम्बन्धके त्याग द्वारा कर्म-त्याग और भोगत्याग द्वारा सुखी होनेकी पद्धति साधुकी है।

सम्बन्ध अपने देहसे छोड़ें अर्थात् देहको मैं-मेरा न समझें। 'मैं देह हूँ' यह बोध नहीं, मूर्खता है; जैसे पत्थरके टुकड़ेको हीरा समझना। जौहरी पत्थरके टुकड़ेको हीरा नहीं समझेगा। मांसपिण्ड और कफ-वात-पित्तका लौंदा मैं, बाप-बेटा ये सब मरनेके लिए बनते हैं। इनके मरनेसे दुःखी होना बिलकुल अस्वाभाविक है। भ्रम है कि मैं शरीर हूँ और शरीरके सम्बन्धी मेरे। 'शरीर, बेटा, भोग ब्रह्म है' ऐसा कहनेसे ज्ञान नहीं होगा। पहले इनको काट दिया जाता है। अधिष्ठानमें इनको मिथ्या जान लिया जाता है, तब ब्रह्मातिरिक्त कुछ नहीं होता। चोटीं-चींटेमें फरक नहीं होता। वैसे पण्डित-पण्डितानीमें भी नहीं होता। परन्तु जहांतक अद्वय ब्रह्मबोध न हुआ, तबतक साधनका तिरस्कार उचित नहीं।

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्। सारी वस्तुएँ अवस्था-हीन हैं, कोई चीज टिकनेवाली नहीं। सारी सृष्टिमें जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति, बचपन-जवानी-बुढ़ापा आते-जाते हैं। क्या दुनियाको पकड़-कर रखोगे ? पूर्वजन्मका जो शत्रु तुम्हारा स्वजन बनकर आया है, वह तुम्हारे सारे संग्रह-परिग्रहको छीन ले जायगा।

अवस्थान-रहित पदार्थ यानी अनित्य। चाहे शरीर कोई भी हों—स्त्री, पुरुष, देवता-दानव, पशु-पक्षी, पितर—उन सभी शरीरोंमें एक अशरीर अवश्य है। उसे न जाना तो साढ़े तीन हाथवाली, सौ-पचास वर्षवाली, डेढ़-दो-मनवाली एक आकृतिकी पकड़ नहीं छूटेगी। पहले आत्माको शरीरातिरिक्त जानकर देव-मनुष्य, पशु-पक्षी आदि शरीरोंमें होनेवाली अहंपनेकी भ्रान्तिको काट देना चाहिए। अपने निरुपाधिक आत्माके ज्ञानसे उपाधिका तिरस्कार करो। उसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपाधिके कारण तुम अपनेको वह मान रहे हो। स्फटिक-मणि लाल नहीं है; लालिमा सांसर्गिक है यह जानना चाहिए। ब्रह्मासे तृणतक जितने शरीर हैं, उनसे 'मैं' विलक्षण है। जाग्रतादि अनित्य, आने-जानेवाली अवस्थाओंसे मैं विलक्षण है। व्यवहारमें आपेक्षिक नित्य यदि कुछ है, तो उसका नाम 'धर्म' है। दिनभरमें हजार बार भय, शोक, हर्ष किसके लिए करते हो? बन्दरकी तरह पैसेको पकड़ रखनेवाले अपनेको इतना बुद्धिमान् समझते हैं कि आत्माका हनन करते हैं और पैसेको पकड़ते हैं। बेईमानीसे धन कमाना उनकी दृष्टिमें बुद्धिमानी है। तुम्हारे साथ बेईमानी ऐसी चिपकेगी कि न तो वह इस जन्ममें सुख देगी और न तो अगले जन्ममें ही। पैसा तो चला जायगा, मौत बिगाड़ देगी वह बेईमानी। शान्तिसे मौत नहीं होगी, रो-रोकर चिल्ला-चिल्लाकर मरोगे।

एक आदमीके घरमें दो ही व्यक्ति थे। उसने ईमानदारी-बेईमानी कर जैसे-तैसे गरीबोंसे ज्यादा ब्याज लेकर धनियोंसे कम ब्याज लेकर पैसा इकट्ठा किया। आगे क्या होगा, कब मरेंगे, पैसा कब जायगा इसका, पता नहीं; परन्तु मनीराम ऐसा पैसेको पकड़कर बैठा है कि दिन-रात हाय-हाय मची रहती है। यह शरीर कल तो रहनेवाला नहीं है। अपना आत्मा ही नित्य है, बाकी सब अनित्य हैं। लोकान्तरगामी आत्माके साथ धर्म नित्य है, आपेक्षिक फलप्रद है। कूटस्थ नित्यके साथ आत्मा है। सब स्थितियाँ, सारी दुनिया बदलती जाती हैं। स्वप्नका दोष जाग्रत्में नहीं होता, जाग्रत्का स्वप्नमें नहीं और जाग्रत्-स्वप्नका सुषुप्तिमें नहीं! फिर भी हम पकड़कर बैठे हैं!

महान्तम् विभुमात्मानम्। अपनेको अविकारी समझो। तुम अविकारी ब्रह्म हो, नित्य हो, सब शरीरोंमें अशरीर हो, बदलने-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

वालोंमें निर्विकार हो, तुमसे बड़ा कोई नहीं है। क्यों अपने महत्त्व को छोड़ते हो ?

एक बच्चा था। उसके पास मिठाई थी। दूसरेने कहा : 'हमको भी मिठाई दो !' पहले बच्चेने मुट्ठी दबायी : 'तुमको दे देंगे तो हम क्या खायेंगे ?' बापने कहा : 'बेटा, हमारे घरपर बहुत सारी मिठाई है, हम तुमको मँगा देते हैं, यह तुम इसको दे दो न ! यह बच्चा भी खुश हो जायगा।'

बच्चेको अपनी महत्ताका पता ही नहीं कि घरमें कितनी मिठाई है। बाप कितनी मँगा सकता है वह एक पेड़ेके लिए लड़ाई करता है! उसका हक भी छीन रहा है। बड़े-बड़े घरोंमें बच्चोंको अपनी महत्ताका पता न होनेके कारण आपसमें वे लड़ते हैं। वे चाहें तो अपने लिए मनों मिठाई आ सकती है!

तुम महान् हो ! यह घर, यह धरती तुम्हारे लिए छोटे हैं। तुमको जरूरत पड़े तो कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी सम्पत्ति तुम्हारे लिए आ सकती है।

यं यं कामं मनसा संविभाति।

तुम अपने संकल्पकी शक्तिको नहीं जानते। सम्राट्ने राजकुमारको कहा : 'खिलौनेकी मोटरके लिए तुम रो रहे हो ? यह नहीं जानते कि तुम लाखों मोटरोंके स्वामी हो ? राजकुमार हो, महान् हो।'

महत्त्व भी सापेक्ष होता है—एकसे एक महान् होता है। गांवका चौकीदार भी गाँवमें महान् है। वह रोब जमाता है। 'हम तुम्हारी शिकायत कर देंगे, थानेमें !' सिपाही, थानेदार, सुपरिण्टेण्डेण्ट, प्रांतका गृहमन्त्री, देशका गृहमन्त्री—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इनमें सबसे ऊपरी या महान् कौन है? प्रधानमन्त्री या राष्ट्रपति? मिट्टी, पानी, आग, वायु या आकाश?

लेकिन 'महान्तं विभुम्' तुम्हारी महत्ता परिच्छिन्न नहीं है, तुम विभु हो! तुम रस्सीको चाहे सांप, माला, दण्ड, दरार कुछ भी समझो, रस्सी उन सबमें व्याप्त है। या तो तुम अपनेको सांप समझनेकी मूर्खता करो या रस्सी समझो! परिच्छिन्न, शरीरधारी, अल्प, हीन, जीव समझो या विभु परमात्मा।

संसारमें गलती होती है मनके दोषसे :

> स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
> मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः।

टाल्स्टायकी एक बहुत बढ़िया कहानी है। "एक गरीबका नियम था : 'रोज जितना मिले, उससे खा लेना!" एक दिन उसे एक पैसा ज्यादा मिल गया। उसका सारा काम हो गया, फिर भी एक पैसा बच गया, खर्च नहीं हुआ। उसे गांठमें बांधकर उसने सोचा—कल किसीसे पूछकर अच्छे काममें खर्च कर देंगे!

दूसरे दिन वह खाता-पीता रहा उसने पड़ोसियोंसे पूछा : 'कौन-सा काम अच्छा है?

उन्होंने कहा : 'एक पैसेके लिए क्या अच्छा काम ढूँढ़ोगे? दे दो किसी गरीबको!'

अब वह सबसे पूछने लगा : 'तुम गरीब हो? तुम गरीब हो?' पर कोई अपनेको गरीब न माने!

किसीने कहा : 'जाओ पण्डित, ब्राह्मणसे पूछ आओ।'

वहाँ गया तो उन्होंने बताया : 'धनका क्या उपयोग किया जाय, इसकी व्यवस्था देनेके लिए दो रुपये चाहिए।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

वह बोला : 'हमारे पास तो एक ही पैसा है।'

पण्डित बोला : 'गरीबको दे दो।'

इतनेमें उसने सुना कि हमारा राजा दूसरे राज्यपर चढ़ाई कर रहा है उस राज्यका धन लूटनेके लिए! उसने सोचा—पैसेके लिए वह जा रहा है तो निश्चय ही गरीब होगा। कितने लोग इसमें लड़ेंगे-मरेंगे! यह लोगोंको मारकर, सताकर, झूठ बोलकर, पैसा लूटना चाहता है तो वह जरूर गरीब होगा। वह जाकर रास्तेमें बैठ गया।

जब वहाँसे राजा साहबका रथ निकला तो उसने अपना एक पैसा उठाकर उसकी गोदमें रख दिया।

राजाने पूछा : 'यह क्या ?

वह बोला : 'मैं कई दिनोंसे पैसा देनेके लिए गरीबकी खोजमें था। आज आप मिल गये तो दे रहा हूँ, ले लो।'

राजाने पूछा : 'मैं गरीब ?'

वह बोला : 'मैंने सुना है कि आप पड़ोसीपर आक्रमण करने जा रहे हैं। इस युद्धमें कितने लोगोंका शोषण होगा, बेईमानी होगी, लोग मरेंगे! किसलिए ? पैसेके लिए! तो तुम्हारे-सरीखा गरीब इस सृष्टिमें और कोई नहीं है।'

राजाको यह सुनकर ज्ञान हुआ : 'राम, राम, मैं तो बड़ा भारी अन्याय करने जा रहा था, मात्र पैसेके लोभमें!' गरीबके एक पैसेने दो राष्ट्रोंके युद्धको बचा लिया।'

तुम्हारी महत्ता कैसी है, इसे समझो! तुम स्वयं ब्रह्म हो! तुम सबके आत्मा हो। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड, उनमें रहनेवाले ब्रह्मा-विष्णु-महेश, सम्पूर्ण प्रकृति-विकृति, कार्य-कारणरूपमें भासमान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vijayanagar Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर्ता-कर्म, भोक्ता-भोग्य, द्रष्टा-दृश्य तुममें अध्यस्त है। तुम महान् और विभु हो। अपने आपको जानो!

मत्वा धीरो न शोचति। बुद्धिमान् पुरुष अपने इस स्वरूपको जान लेता है, तो उसके पास शोक क्यों जायगा? सीपका जानकार उसमें चमकती चाँदीके लिए नहीं रोयेगा। इस ब्रह्मरूप शुक्तिमें विश्वप्रपंचरूप रजत भास रहा है। जैसे मरुस्थलमें यह प्रपंच भास रहा हो!

रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानुकर वारि।

श्रीशंकराचार्य कहते हैं :

आत्मग्रहणं स्वतोऽनन्यत्वप्रदर्शनार्थम्ः
आत्मशब्दः प्रत्यगात्मविषय एव मुख्यः।

अर्थात् 'मैं' पदका अर्थ बतानेके लिए ही यहाँ आत्मा-शब्दका प्रयोग किया गया है। अपने लिए ही आत्मशब्दका अर्थ मुख्य होता है। जब मनुष्य जान जाता है कि 'मैं ऐसा हूँ' अर्थात् सजातीय-विजातीय-स्वगतभेदशून्य, देश-काल वस्तुसे अपरिच्छिन्न, अद्वितीय, स्वयंप्रकाश, सर्वाधिष्ठान, सर्वावभासक मैं ही हूँ, तब उसके लिए शोकोपपत्ति नहीं होती : न ह्येवंविधस्यात्मविदः शोकोपपत्तिः।

ऐसे आत्माको कैसे पहचाने? किसीके पास दो हीरे हों और वह उनको पहचानना चाहता हो, तो जबतक दोनों सामने रहेंगे, दोनोंको नहीं पहचान सकेगा। एकको गौरसे देखेगा तो एकको पहले पहचानकर बादमें दूसरेको भी पहचान लेगा! दो उंगलियाँ भी एक साथ नहीं दीखतीं और तुम एक साथ प्रपंच और ब्रह्म दोनोंको देखना चाहते हो? अतः प्रपंचसे दृष्टि हटाओ, तब ब्रह्मकी पहचान होगी। ब्रह्मकी पहचान हो जानेपर प्रपंचको देखना तो फलदृष्टि है, साधनदृष्टि है अतएव प्रपंचपरसे दृष्टि हटाओ और ब्रह्मको देखो। *

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijnath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

२३. परमात्माकी अभिव्यक्तिके दो रूप

संगति :

वाइसवें मन्त्र साधनदृष्टि और फलदृष्टिकी व्याख्या की गयी। अब २३, २४ और २५ मन्त्रों द्वारा साधनके लिए कहा जाता है।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः—विना गुरुके केवल वेद पढ़नेसे आत्मोपलब्धि नहीं होगी। वेदके साथ-साथ गुरु भी चाहिए। हमने यह बात देखी कि शास्त्र पढ़कर आदमी यह तो जान सकता है कि आत्मा, ब्रह्म एक हैं; परन्तु व्यक्तिगत जीवनमें जो स्वातन्त्र्य है, वह महात्मा पुरुषके सान्निध्यके विना नहीं आता। साधु पण्डितकी बातें हम जानते हैं। गृहस्थ-पण्डित तो एक ओर वेदान्त सुनता है, दूसरो ओर पत्नी और बच्चोंको सम्भालता है। इधर 'आत्मा ब्रह्म है' जानकर घर जाता है तो उधर रूठी हुई घरवालीके पाँव छूने पड़ते हैं!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

एक बार बाणभट्ट रातभर अपनी पत्नीको मनाते रहे। वे बोलते : 'देवी, मैं प्रणाम करता हूँ; अब तो खुश हो जाओ। प्रणाम करनेपर तो मान छोड़ देना चाहिए।' प्रातःकाल उनके साले कविता सुनाने आ गये। बाहरसे उन्होंने सुना कि बहन रूठी हुई है, और बहनोई मनावन कर रहे हैं। उन्होंने बाहरसे ही डरकी ऐसी बात कह दी कि बहन सुनकर पानी-पानी हो गयी !

इन गृहस्थ-पण्डितोंके ब्रह्मज्ञान कैसे हो, जो रूठी पत्नीको मनानेके चक्करमें पड़े रहते हैं !

हमने ऐसे बड़े-बड़े विद्वान्, साधुओंको देखा जिन्होंने सत्संग नहीं किया। अब सिर ठोंककर रह जाते हैं : 'यह हुआ, यह न हुआ।' जबतक जीवन्मुक्त पुरुषका संग न हो, तबतक तत्त्वज्ञान होनेपर जीवनमें व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य कैसे आये। परमानन्द क्या है ? यह नहीं मालूम होगा ! साधन द्वारा आचार्यवान् पुरुष ही इसको कैसे प्राप्त करता है यह २३ वें मन्त्रमें बताया जा रहा है :

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥२३॥

यह आत्मा वेदाध्ययनद्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है और न धारणाशक्ति अथवा अधिक श्रावणसे ही प्राप्त हो सकता है। यह [साधक] जिस [आत्मा] का वरण करता है, उस [आत्मा] से ही यह प्राप्त किया जा सकता है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूपको अभिव्यक्त कर देता है ॥ २३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitization eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

वक्तारम् विद्यात् :—ध्यान कहाँ जा रहा है? ध्यानके साथ मत दौड़ो! कौन बोल रहा है, उसको ढूँढो! जब तुम बोलने लगते हो कि 'यह मोटर है, पुत्र है, धन है, स्त्री है' तो तुम्हारा मन उनके साथ चला जाता है। प्रत्येक शब्दके उच्चारणके साथ जहाँ शब्द ले जाता है, वहाँ वाणीके साथ उठकर मत जाओ! वक्तारामको जानो, वाच्यरामको नहीं। इसीसे श्रोता, द्रष्टा, मन्ता, विज्ञाताको जो कानोंसे सुन रहा है, आंखोंसे देख रहा है, नाकसे गन्ध ले रहा है, जिह्वासे स्वाद ले रहा है, वाणीसे बोल रहा है—भीतर बैठकर उस अपने आपको जानो।

वक्तारम् विजिज्ञासत, वाचं न विजिज्ञासत। वक्ताके बारेमें जिज्ञासा करो, जो जिह्वाके मूलमें बैठकर जिह्वाको बोलनेको शक्ति प्रदान करता है, बुद्धिके मूलमें बैठता है और उससे बुद्धि शक्ति ले लेती है। वाचक शब्दोंकी जिज्ञासा मत करो। वे तुम्हें भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें ले जायँगे!

अयमात्मा—यह आत्मा है। यश्च इह विषयान् अत्ति—जो जाग्रत्-कालमें इन्द्रियोंमें मन द्वारा बैठकर विषयोंका भोग करता है। यश्च स्वप्नावस्थायां सर्वान् विषयान् आधत्ते। जो स्वप्नावस्थामें सारे विषयोंका भीतर-ही-भीतर आधान कर लेता है। यश्च सुषुप्तौ अवस्थायां आप्नोति व्याप्नोति जो सामान्य-ज्ञानके साथ एक होकर वह सम्पूर्ण विश्व-सृष्टिमें व्याप्त हो जाता है। यच्चास्य सन्ततो भावान्—जो देशकाल-वस्तुके परिच्छेदसे परिच्छिन्न नहीं होता; अयमात्मानं विजिज्ञासत उस आत्माके बारेमें जिज्ञासा करो, जाननेकी इच्छा करो।

'अयम् आत्मा' है बिल्कुल साक्षादपरोक्ष। तुम अपनेको है तो जानते हो, पर यह है तुम्हारा कितना बड़ा है, यह नहीं जानते!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaijanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस भूलको मिटानेके लिए 'तत्त्वमसि' महावाक्यकी जरूरत है। कोई कहे कि 'यह परमात्मा नहीं है, परमात्माका अंश है' तो इस बातको माननेमें तुम बिलकुल मत हिचको। कई वेदान्ती लोग लड़ने लगते हैं! लड़ो मत, उससे पूछो: 'माना कि हम परमात्माके अंश हैं, पर उस अंशकी नाप तो बताओ!' वह कितना लम्बा-चौड़ा है? उसकी वय क्या है? उसका वजन कितना है? यदि एक अंश नाप लिया जाय तो परमात्माको नापना आसान हो जायगा! तब अंश नहीं, परमात्मा ही नाप लिया जायगा! इसका अर्थ होगा कि अंश परिच्छिन्न तो परमात्मा भी परिच्छिन्न हो जायगा! परमात्माका अंश तो परमात्मा ही होता है। अनन्तका अंश अनन्त होता है! किसी संख्याके जोड़का नाम अनन्त नहीं है!

बहुतोंका जोड़ कुल-सर्व होता है। अनन्त, अपरिमित, अदेश, अकाल बहुतसे फुटों-इंचोंके जोड़का नाम नहीं। अनन्त देशातीत है। क्षणों, घण्टों, महीनों, वर्षों, मन्वन्तरों, कल्पोंका नाम अकाल नहीं है। अकाल यानी कालातीत है। बहुत-से कणोंके जोड़का माशे, तोले, छटाँक, मन, टनके जोड़का—नाम परमात्मा नहीं है। इसलिए परमात्माका अंश भी परमात्मा है। सान्तका अंश सान्त ही होता है। इसीलिए युक्ति बतायी—'अयमात्मा'

कोई कहेगा: 'हमें गुरु-वेदकी आवश्यकता नहीं है, अपने आप विवेक करके हम अनुभव करते हैं कि हम अनन्त, परिपूर्ण परमात्मा ब्रह्म हैं! छोड़ो वेदको, गुरुको, श्रद्धाको, लकीरकी फकीरीको!' हम मान लेते हैं कि तुमने अपने विवेक-विचारसे पूर्ण सत्यका अनुभव कर लिया! पर अब जरा उस पूर्ण सत्यके अनुभवका उल्लेख तो करो! तब ये कहेंगे: 'ठीक नहीं बता सकते।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vidyamani Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'क्यों ठीक नहीं बता सकते ? नहीं जानते इसलिए या जानते हो और नहीं बोल पाते ? नहीं जानते और नहीं बोल पाते तो अज्ञानी हो। जानते हो और नहीं बोल पाते तो जीभसे बोलकर मत बताओ, मन ही मन अपने अनुभवकी एक रूपरेखा बनाओ !'

यदि तुमको यह अनुभव हुआ कि 'एक मैं हूँ और एक दूसरा' तब तो आधे तुम और आधा वह ! तुम्हें पूर्णका अनुभव नहीं हुआ न ? पहले हम और पीछे वह या पहले वह और पीछे हम, तो अधूरे हुए। यदि तुममें ब्रह्म है तो 'ब्रह्म-कम तुम' हुए और यदि ब्रह्ममें तुम हो तो 'तुम-कम ब्रह्म' हुआ। अन्ततोगत्वा जब तुम अपने अनुभवको नापोगे, जाँचोगे तो उसका स्वरूप होगा : 'अहं ब्रह्मास्मि।' मैं अद्वितीय, परिपूर्ण, स्वयं चैतन्य ब्रह्म हूँ।

संस्कृत, अंग्रेजी किसी भी भाषामें सोचकर तुम अपने मनमें पूर्ण ब्रह्मका निरूपण करो तो अन्ततोगत्वा तुम्हारे अनुभवका स्वरूप यही होगा। 'मेरे सिवा अन्य कोई नहीं है, मैं ही मैं है ! यदि मेरे सिवा सत्य है तो सत्य अधूरा है। यदि सत्यके सिवा मैं हूँ तो मैं अधूरा हूँ ! सत्य, ज्ञान, आनन्द दो नहीं हो सकता ! घूम-फिरकर तुम वैदिक मतमें प्रविष्ट हो गये : 'अहं ब्रह्मास्मि'

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः। यह आत्मा प्रवचनसे ज्ञात नहीं हो सकता। यह सही है कि प्रवचन करनेवाला बुद्धिसे सोचकर करता है, वह मूर्ख तो है नहीं ! मूर्ख क्या प्रवचन करेगा, जिसकी बुद्धिमें पहले वस्तु आरूढ़ हो नहीं हुई ? 'प्रोच्यते इति प्रवचनम्'—प्रकृष्ट उक्तिका नाम प्रवचन है। मिथ्या यानी विपरीत बातका प्रतिपादन न करे, तब वह प्रवचन होगा। जिसको सत्य, अर्थका ज्ञान होगा, वही प्रवचन करेगा। कोई निदिध्यासन करके आये और प्रवचन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करने लगे तो ? निदिध्यासनसे परमात्माकी उपलब्धि नहीं होती। ध्यानसे संस्कार बनता है। देवी, मत्स्य, कच्छप, गणेश, विष्णु, सूर्य, शिव, राम, कृष्णका ध्यान होता है। ध्यान-सहकृत ज्ञान ध्यानके आकारको अपनेमें पकड़ लेता है। ध्यानजन्य संस्कारसे ध्येयाकारका साक्षात्कार होगा, केवल ध्यानसे नहीं! वैसे ही केवल प्रवचनसे आत्माकी उपलब्धि नहीं होगी! अज्ञानसे ही आत्मा खोया हुआ है, केवल ध्यानसे उसका साक्षात्कार कैसे होगा? मननसे होगा ?

न मेधया मेधा यानी बुद्धि। मेधा दूसरेको काटनेके लिए तो बहुत उपयोगी है। चारों ओर अज्ञानान्धकारका जाल फैला हुआ हो तो उसको काटनेके लिए मेधा है। (इसको बुद्धि, मनीषा, धिषणा, प्रज्ञा, शेमुषी, मति भी कहते हैं। 'मेधा' वह बुद्धि है, जो शास्त्रका श्रवण करके उसके परम तात्पर्यको धारण करे।)

बीस-पचीस वर्ष पहलेकी बात है। श्री करपात्रीजी महाराजका भाषण वृन्दावनमें मिर्जापुरवाली बड़ी विशाल धर्मशालामें होता था। हजारों आदमी सुनते, तारीफ करते: 'कितनी ऊँची बात सुनायी ?' हम किसीसे पूछते: 'वे क्या कहते थे?' वे बोलते: 'भाई, यह बात बहुत ऊँची, बहुत बढ़िया थी, परन्तु हमारी समझकी थोड़े ही थी।' हम एक चुटकुला सुना दें तो श्रोता लोग हमें आकर बता दें कि आपने आज यह बात कही थी!

सारांश: शास्त्र धारण करनेवाली मेधासे भी आत्माकी उपलब्धि नहीं होगी। शास्त्रार्थ, व्यापार, राजनीति या व्यावहारिक निपुणतामें मेधा काम देगी। आत्मा बुद्धिका दांव-पेच नहीं है।

न बहुना श्रुतेन: बहुत श्रवण-निदिध्यासन करनेसे, निदिध्यासनपूर्वक प्रवचन करनेसे भी इस आत्माका ज्ञान नहीं होता! एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदमी व्याख्यान दे रहा था : 'आकाशकी नीलिमा कितनी गहरी है।' उसने इस बारेमें सुन भी बहुत रखा था। इसी नीलिमासे तो लोक-परलोक, स्वर्ग-ब्रह्मलोक निकलते हैं। यह नीलिमाके विषयमें ध्यान-श्रवण कर रहा था। गहराई तो है ही नहीं। क्या सुनकर आया? एक आदमी मृगतृष्णाके जलका औसत निकाल रहा था। सुनकर भी जितना समझते हैं, जितने संस्कार हैं, वहाँतक प्रतिभा काम देती है!

वस्तुका ठीक-ठीक साक्षात्कार होनेके लिए क्या होना चाहिए? यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।

हमलोग संक्रान्तिपर हरिद्वार गये थे। एक बड़े बूढ़े पुराने, वृद्ध, विद्वान् वेदान्ताचार्य वहाँ हैं। सम्भवतः वे व्याकरणाचार्य हैं। सतहत्तर वर्षका उनका शरीर है—दृढ़, गौरवर्ण! उन्होंने भरी सभामें ललकार दिया : 'क्यों शंकराचार्यके सिवा किसी अन्य आचार्यने उपनिषद्पर व्याख्या नहीं की? ब्रह्मसूत्रपर तो सब व्याख्या करते हैं। ब्रह्मसूत्रको श्रुतियोंका ही तात्पर्य बताते हैं। फिर मन्त्रशः, शब्दशः क्यों किसीने उपनिषद्की व्याख्या नहीं की।'

आचार्योंका ऐसा खयाल था कि यदि हम श्रुतियोंके अर्थको गड़बड़ायेंगे तो हमें पाप लगेगा। उन्होंने कहा : 'जिनको यह खयाल था कि हम तो श्रुतिके सच्चे अर्थको जानते हैं, उन्होंने तो श्रुतिके एक-एक शब्द, वाक्य, मन्त्रका अर्थ करके बता दिया। जिनको डर था कि हमें श्रुतिके सच्चे अर्थके साथ अन्याय करना पड़ेगा, उन्होंने कहा : 'शब्दकी व्याख्याके चक्करमें मत पड़ो।'

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः। 'यमेव स्वात्मानमेष साधको वृणुते प्रार्थयते' जब इस साधकके मनमें केवल एक ही आकांक्षा होती है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection Digitized by eGangotri. RajGuru Math Collection, Jalgaon Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'मैं ही मुझको मिलूँ'। किससे ब्याह करोगे जब वरमाला अपने ही गलेमें पड़ती है? भोग चाहेगा, उसके गलेमें वरमाला कैसे डालोगे? एक कन्या किसीके गलेमें वरमाला डालेगी, यदि दाम्पत्य-जीवन, भोग, सुख, सांसारिक जीवन उसे चाहिए। यहाँ तो ऐसा जिज्ञासु साधक चाहिए, जो दूसरेके गलेमें वरमाला न डाले, अपने ही गलेमें डाले। अर्थात् 'मैं'के साक्षात्कारके सिवा और कुछ चाहता ही नहीं हो। केवल आत्मोपलब्धि चाहता है।

तेन वरिज्ञा लभ्यः। ऐसा विचित्र वरण करनेवाला चाहिए। स्वयंवरमें ऐसी अद्भुत कन्या चाहिए जिसको अपने आपमें ही रति, तृप्ति और तुष्टि हो। ब्रह्मविद्या आत्मरति, आत्मतृप्ति, आत्मतुष्टि चाहनेवालेको प्राप्त होती है जिसके ज्ञानका उल्लास स्वाभिमुख है, पराभिमुख नहीं है, जो अपने आपमें नाचता है, दूसरेको देखकर नहीं। जिसकी जीभ दही-बड़ा देखकर नाचती है, नाक इत्र-गंधसे, आंख बाहरी रूपसौन्दर्यपर नाचती है, उसने तो उसके गलेमें वरमाला डाल दी। इस आत्माका साक्षात्कार उसे होता है जो—**एष साधकः यमेव स्वात्मानम् वृणुते तेन वरिज्ञा स्वयमात्मा लभ्यः।** अर्थात् अपने आपके रूपमें इस आत्मदेवका साक्षात्कार करता है।

तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्। उसीका यह आत्मा है, दूसरेका नहीं और उसीके प्रति वह अपना विवरण करता है। आत्मा अपनेको ढँककर बैठा है। जब वह देखता है कि अपने आपके सिवा अन्य कुछ नहीं चाहिए, और कोई नहीं है तो अपनेको निरावरण कर देता है, दूसरेके सामने नहीं। वह तो अपने सामने ही स्वयं नंगा है। मुण्डकोपनिषद्में भी यह मन्त्र आया है।

तनूं स्वाम्=अपना यथार्थ, पारमार्थिक, सच्चा स्वरूप।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुण्डकमें लिखा है : 'तेन' यानी वर्णेन। यहाँ 'तेन' का अर्थ है 'वरित्रा'। एक ही आचार्यके दोनों भाष्य हैं। श्री शंकराचार्यको दोनों में फरक क्या लगा? मुझे अपने स्वरूपके सिवा और कुछ चाहिए ही नहीं, यह केवल आत्मवरण है। अनात्म-प्रत्ययका तिरस्कार अर्थात् 'नेति-नेति' करके स्वरूप-साक्षात्कारमें दृढ़ निष्ठावान्को ही प्राप्त होता है। वरण यानी आत्मवरणकी दृढ़ निष्ठा। वहाँ साधनके प्रसंगमें आता है, इसलिए कहा गया कि वरणसे प्राप्त होता है। यहाँ साधनका नहीं, आत्माके वरणका प्रसंग है—

स्वयम् च तत्त्वं स्वयमेव लभ्यम्।

भक्तिदृष्टिसे-जिसे तुम ईश्वर मानते, कहते हो, वह तुम्हारे साढ़े-तीन हाथके भीतर है या नहीं। तुम्हारा माना हुआ ईश्वर, जगत्का कारणरूप, जगत्को बनानेवाला ईश्वर इस शरीरके भीतर है या नहीं? नहीं है तो वह व्यापक नहीं, उपादान नहीं, सर्वात्मा नहीं, शरीरी नहीं—न देहशरीरी और न जीवशरीरी। इस तरह भक्तिके दृष्टिकोणसे भी परमात्मा हमारे शरीरके भीतर है। तब वह क्यों नहीं मिलता?

सो सर्वेषां भूतानाम् मधु। जो पृथिव्यां तिष्ठन् पृथ्वीं यं-यति॥

वह जो पृथ्वीमें रहकर पृथ्वीका, शरीरमें रहकर शरीरका, चित्तमें रहकर चित्तका नियमन करता है वह अन्तर्यामी मधु, अमृत आत्मा तुम्हारे शरीरके भीतर है या नहीं? एष ते आत्मा अन्तर्यामि अमृतः। यदि है तो उसका दर्शन क्यों नहीं होता? क्यों तुम इस मन्दिरमें विराजमान परमेश्वरको छोड़कर भटक रहे हो? न हि गृहे नष्टं वने मृग्यते—घरमें चीज मौजूद हो, खो गयी हो तो कोई वनमें ढूँढ़ने नहीं जाया करता! क्यों इस ऐश्वर्यशाली ईश्वरको, मधु-अमृत, परम-प्रेमास्पद आत्माको छोड़कर बाहर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Jalgaon. RajGuru Math Collection, Varanasi Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ढूँढ़ने जाते हो? अन्तर्यामी परब्रह्म परमात्मा नित्य ही हमारी बुद्धिवृत्तिका प्रेरक बनकर रहता है : धियो यो नः प्रचोदयात्। और यहीं मौजूद है। ढूँढ़नेवाले आश्चर्य हो कर देते हैं!

श्रीमद्भागवतकी टीकामें दृष्टान्त दिया है :

त्वमात्मानम् परं मत्वा परमात्मानमेव च।
आत्मा पुनर्बहिर्मृग्यः अहोऽज्ञजनताज्ञता॥

देखो यह पढ़ो-लिखी ज्ञानी जनताकी अज्ञता! तुम अपने आत्मा हो। उसे दूर मान लिया और ये देहादि जो आत्मा नहीं है उन्हें मान लिया कि आत्मा है।

एक बुढ़िया माई रास्तेपर रोशनीमें कुछ ढूंढ़ रही थी। एक सज्जनने पूछा : 'माई, क्या ढूंढ रही है?'

वह बोली : 'सुई?'

सज्जन : 'खोयी कहाँ?'

बुढिया : 'घरमें।'

सज्जन : 'घरमें सुई खोयी तो यहाँ क्यों ढूंढती हो?'

बुढिया : 'घरमें अन्धेरा है, सड़कपर रोशनी है, इसलिए यहाँ ढूँढने चली आयी?'

परमेश्वरको ढूँढनेवाले इन लोगोंको अपने भीतर अंधेरा मालूम पड़ता है और बाहर सूर्यकी रोशनीमें ढूँढ रहे हैं! परमेश्वर बैठा है हमारे हृदयमें, उसको लिये-लिये भटक रहे हैं और उसे भी भटका रहे हैं। गलेमें बांध लिया शालग्रामको और ढूंढने जा रहे हैं नेपालमें।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'एष आत्मा अन्तर्यामी प्रेरणया यमेव साधकं वृणुते—यह आत्मा निर्मल-बुद्धिमें बैठकर अन्तर्यामी बनता है, प्रेरणा देता है। परमात्मा बोलता-हँसता, चलता-फिरता है। 'यमेवैष वृणुते।' एष = आचार्य द्वारा। 'यमेव वृणुते' = जिसके ऊपर अपनेको प्रकट करना है, उसके सामने वह गुरु बनकर आता है :

आचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति।

परमात्मा अपनेको दो प्रकारसे जाहिर करता है : एक गुरु रूपमें, 'दशमस्त्वमसि'—तू दसवाँ पुरुष है और दूसरा, चैत्यवपुषा—'अहं दशमोऽस्मि'—जो तुमको बताता है कि 'तुम ब्रह्म हो', उसके सामने परमात्मा अपनेको प्रकट कर रहा है। आचार्य कहता है : 'आओ, आओ शिष्य, हम तुम्हारा अज्ञान मिटा दें! जो मैं सो तुम!' शिष्य संसारी मनोवृत्तिका होगा तो सोचेगा, : 'बाबा, यह दरिद्र मैं धनी। कहीं यह मैं-तुम करके हमारे पैसेमें हिस्सेदार न बन जाय!' ऐसे लोग चेले नहीं, चैले हैं!

स्वगतिं व्यनक्ति : शरणागतिके सम्प्रदायोंमें भी केवल ज्ञान ही मानते हैं। स्वत्व-परत्व, स्वतत्त्व-परतत्त्व, नियम्य-नियन्ता, भोक्ता-भोग्य, आश्रित-आश्रय, शरीर-शरीरी—केवल इसके ज्ञानको ही शरणागति मानते हैं? आचार्य इसे प्रकट कर देता है और अपने हृदयमें दृढ़ निश्चय हो जाय, चाहे विचार द्वारा, श्रद्धा द्वारा या वेदशास्त्रादि पुराणों द्वारा, क्योंकि स्थूल भौतिक यन्त्र या समाधि द्वारा भी इसके लिए उस सत्यपर हमारे संस्कार-विकार, आकार-प्रकार भेदपर असर नहीं होता; क्योंकि ये चारों भेद प्रकृतिके राज्यमें हैं, परमात्माके राज्यमें नहीं। परमात्मा हृदयमें स्वयं आविर्भूत होकर चैत्यवपुषा—बोल दे कि 'यह मैं हूँ' अथवा गुरु रूपसे : 'तू है।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२४. आत्मवरण

संगति :

यह आत्मा न वेदाध्ययनसे, न धारणावती बुद्धिसे, और न श्रवणसे ही प्राप्त होता है। आत्माको वरण करनेवाला साधक स्वयंको स्वयं द्वारा ही उपलब्ध करता है। तब यह आत्मा अपनेको उसके प्रति निरावरण-कर देता है—२३वें मन्त्र द्वारा बतानेके बाद अब २४वें मन्त्रमें कहा जाता है कि 'साधकको परमात्माकी प्राप्ति कैसे होती है ?' :

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥२४॥

जो पापकर्मोंसे निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं, जो असमाहित है और जिसका चित्त शान्त नहीं है, वह इसे आत्मज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता ॥ २४ ॥

(शास्त्रकी चाहे कितनी भी जानकारी हो, केवल प्रज्ञानेन न आप्नुयात्—केवल जानकारीसे यह नहीं मिलता। उसके साथ-साथ साधकमें और गुण भी होना चाहिए) परमात्मा नेकनामीसे नहीं मिल सकता, दानसे भी नहीं। जो बेईमानी करता है, वह धनको कीमती समझता है। नहीं तो वह दूसरोंको ठगकर झूठ बोलकर क्यों धन चाहता ? वह दिलको बिगाड़ता है और धन कमाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। उसके मनमें दिलकी कीमत नहीं है। दूसरा आदमी ईमानदारीसे धन कमा रहा है, उसे भी धनकी कीमत है। दान-परोपकार करनेवालेके चित्तमें भी धनकी कीमत है। देनेवाला पैसेको पहाड़ समझता है। धन देकर उसे लेनेवालेको वह दबा देता है। जब कीमत धनमें नहीं, परमात्मामें रहे, तब कहीं परमार्थकी यात्रा हो सकती है।

संसारी मनुष्य भगवान् और गुरुसे विमुख होकर भी धन चाहता है। अपने बाल-बच्चे, मकान, और नामको महत्त्व देता है। यह अनात्ममें आत्मबुद्धि है। पैसा-पुत्र छोड़ो मत, पर देखो महत्त्व-बुद्धि कहाँ है—सांसारिक पदार्थोंमें या परमात्मामें ? परमात्माकी ओर कैसे चलना होगा ?

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।

(१) दुश्चरितात् अविरतः पुरुषः प्रज्ञानेन एनं न प्राप्नुयात्।

(२) अशान्तः प्रज्ञानेन एनं न प्राप्नुयात्।

(३) असमाहितः प्रज्ञानेन एनं न प्राप्नुयात्।

जो दुश्चरित्रसे उपरत नहीं होता, उसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। दुश्चरित यानी दुष्ट लोगोंका चरित्र। दुश्चरित व्यक्ति प्रतिषिद्ध काम ही करता है। जैसे कानूनके खिलाफ काम करनेवाला राज्यका अपराधी है, वैसे वेदविहित धर्मके विपरीत चलनेवाला दुश्चरित्र है। जो विहित है, उसको न करनेवाला भी दुश्चरित्र है। ये दो बातें हुईं। चौराहेपर खड़ा सिपाही दूसरेको लूट लेता है तो निषिद्धाचरण हुआ। चौराहे पर उसकी ड्यूटी हो और मोटरोंको हाथ न दे—विहित कर्तव्य न करे तो भी अपराधी है। कोई मांस-भक्षणादि निषिद्ध कर्म करे और संध्यावंदनादि विहित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vijaymohan Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर्म न करे तो ? असलमें मनुष्य जबतक वस्तु, गुण या इन्द्रियमें सुख मानकर अपनी मनमानी अमुक स्थितिमें सुख समझता है तबतक वह किसी विशेष वस्तुका ही प्रेमी है, निर्विशेषका प्रेमी नहीं। धनकी वासनाकी प्रबलतासे आदमी मर्यादा छोड़कर बेईमानीसे कमाता है। दूसरा वासनाको काबूमें रखकर ईमानदारीसे कमाता है। उसमें भी पैसेमें महत्त्वबुद्धि तो है, पर इतनी नहीं कि अपनी आत्माका सत्यानाश करके पैसा कमाये।

परमात्माकी ओर चलनेमें तो निर्विशेषका प्रेमी होना पड़ता है। असावधानीसे पाँवके नीचे चींटी आकर मर जाय या रातको खटमल-मच्छर हाथ पड़नेपर मर जाते हैं, तो वह पाप नहीं हुआ। उनको मारनेमें रति नहीं है। विरत यानी रुचि न होना। मनुष्य खाये-पिये, पहने; पर उसकी रुचि कहाँ है ? स्त्रीकी रुचि कहाँ ? यारमें ! पुरुषकी रुचि ? दूकानमें सारा काम करे, पर बच्चेमें पत्नीकी पतिमें ! जबतक आदमी दुश्चरित्र न छोड़े तबतक विद्या-बुद्धि काम नहीं देतीं।

नाशान्तः। मनमें बुराइयाँ नहीं, पर काम-क्रोध, मोह-लोभ आते हैं। पराये घरकी ओर इन्द्रियाँ झाँकती रहती हैं। इन्द्रिय-लौल्य, शम-दमसे सम्पन्न नहीं है।

अशान्तः प्रज्ञानेन एनं न आप्नुयात्। अशान्तको विद्या-बुद्धिसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती।

नासमाहितः शम, दम तो हो; पर मन चंचल हो, काम-क्रोध हो, इन्द्रियोंमें चंचलता न हो, पर अनेकाग्रमना या विक्षिप्तचित्तको परमात्माका साक्षात्कार नहीं होता, क्योंकि वह कहीं भी एक जगहपर जमता नहीं। चित्त समाहित होना अर्थात् जैसे मुर्देको दफना देते हैं वैसे मनको अपने हृदयदेशमें दफना ही देना चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाधिमें रहो। कोई कहे : 'हमारा मन तो खूब समाहित होता है, फिर भी वेदान्त-श्रवणसे ज्ञान नहीं होता!' कई लोगोंको अपने सद्गुणका भी भ्रम होता है। जब वे दूसरोंसे कहें कि 'आप हमारा दोष दिखाओ, हमें अपनेमें तो नहीं दीखता' और यदि बता दें तो हमेशाके लिए दुश्मन हो जाते हैं!

वृन्दावनमें हमारे पास एक जिज्ञासु थे। वे बहुत कहते रहे कि 'हमें हमारे दोष दिखाओ, हम सुधारें।' हम कहते : 'भगवान्की सृष्टिमें क्या गुण और क्या दोष? तुम भी भगवान्के स्वरूप हो। हम क्यों अपनी वृत्ति बिगाड़ें, दोषाकार करें?' फिर भी हठ पकड़ कर बोले : 'नहीं, बताइये।' जब बहुत दिनोंतक आग्रह किया तो मैंने बताया : 'पाँवपर पाँव रखकर बड़ोंके सामने बैठना शिष्टाचारके विरुद्ध है। तुम इस ढङ्गसे मत बैठो।' वे तुरन्त मान गये। उन्होंने अपने पाँव नीचे कर लिये! फिर उठे तो हमने कहा : 'हमारी ओर पीठ करके नहीं जाना चाहिए, यह दोष है।' वे हमारे साथ चौबीसों घण्टे रहते थे। मैंने दिनभरमें बीस-पचीस बातें बतायीं तो बोले : 'आप तो हममें खुचर निकालते हैं।' मैंने कहा : 'गलती है तो सुधारो!' हमारे बतानेपर नाराज होने लगे तो हमने कहा—'अब डरना मत, हम नहीं बतायेंगे!' यदि किसीको एक दिन कह दें कि—'तुम्हारी बुद्धि ब्रह्मज्ञानमें प्रवेश नहीं करती' तो नाराज हो जायँगे।

दोष पूछनेवालेसे हम कहते हैं कि—'अपनेमें दोष न दीखना अभिमान है और स्वयंमें भारी दोष है कि 'हममें कोई दोष नहीं है।' निर्दोष तो केवल नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त ब्रह्म ही है। यदि तुममें ब्रह्मातिरिक्त कोई भी स्थिति है, व्यक्तित्वका अभिमान है तो निर्दोष कैसे? तुम ब्रह्मसे अलग रहकर निर्दोष रहना चाहते हो? ब्रह्मसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vardhaman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलग होना ही दोष है, अविद्या है, अभिमान है। ब्रह्मसे अलग प्रपंचको सत्य मानना और निर्दोष होना, यह कैसे हो सकता है ?'

असमाहिताः समाधि लगी तो निर्दोष नहीं। जंगलमें भजन करने बैठते हैं और दोपहरी हो जाय तो बीच-बीचमें आँख खोलकर देख लेते हैं कि कोई भोजन लेकर आ रहा है या नहीं ? हम भी भजन करते थे तो ऐसा ही होता था। शामको ठंडा हुआ भोजन भी किया और रास्तेकी ओर आँख खोलकर देख भी लिया कि कोई सत्सङ्ग करने आ रहा है या नहीं ?

यह तो दृष्टान्त है। इसका दार्ष्टान्त क्या है ? हम नहीं मानते कि चित्त दस बीस मिनट, आधा घण्टा या एक घण्टा एकाग्र रहता है। आपके सन्तोषके लिए भले ही कह देते हों। श्री उड़ियाबाबाजी कहते थे : 'यदि किसीका चित्त बारह मिनट एकाग्र रह जाय, तो वह समाधिकी दशामें चला जाता है।' बीचमें कई चीजें आती-जाती हैं। 'यारकी याद होती रहे तो एकाग्रता कही जायगी, चंचलता नहीं ! चित्त सो जाय तो उसे चित्तका दोष नहीं मानते !' असलमें लय-विक्षेप दोनों दोष हैं। भजनके समय ये लोग दिनभरकी, छह महीनेकी योजना करके निकलते हैं और बताते हैं : 'हमने तीन घण्टा एकान्तमें बैठकर भजन किया।' यह सब झूठ है।

चित्त समाहित हो, तब भी परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। क्यों ? समाधिसे उठते हैं : देखते हैं तो 'हममें कोई सिद्धि आयी या नहीं ?' उनके मनमें सिद्धिकी इच्छा है कि 'हम चित्त एकाग्र करें तो देवता आकर दर्शन देगा।' इस बातपर अभिमान करते हैं कि 'हम दो मील दूरकी, कलकत्तेकी वस्तु दिखा देते हैं कि वहाँ क्या हो रहा है; तुम्हारा कौन दोस्त-दुश्मन है ?' यह केवल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaidyanath Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनोराज्य है। कोई कहते हैं : 'परलोकसे आत्मा आयी, हमसे बातें कीं !' वेदान्ती लोग पूछते हैं : 'यह चुड़ैल कहाँसे आगयी ?'

जिनका वेदान्तसे प्रेम होगा, उनको इन सिद्धियोंकी बात अच्छी नहीं लगेगी। 'इन्द्र, वरुण आदि देवताके दर्शन कैसे हैं ?' वेदान्तियोंने अपने बड़े-बड़े ग्रन्थोंमें इसके लिए दृष्टान्त बना रखे हैं :

नष्ट वनितादिवत्। किसीकी बड़ी प्रेयसी स्त्री मर गयी हो, वह एकान्तमें बैठे तो उसे मालूम पड़ता है कि 'वह आगयी, बोल रही है, प्रेम कर रही है। जैसे ताजमहलमें किसीको मालूम पड़ता है कि 'बीबी ताज अभी खिड़कीमें आकर बैठती है।' यह मनका ही खेल है। 'न वहाँ बीबी ताज है, न श्रीमती, न श्रीमान्! मनोराम सब गड़बड़ मचाते हैं। ऐसे साधक एकाग्रतासे उठनेपर उम्मीद करते हैं कि 'हमारे ध्यानमें वह दोस्त-दुश्मन आया, यह सचाई देख लो।' सिद्धिकी यह इच्छा ही अशान्ति है।

एकाग्रचित्त होनेपर भी, बड़ी-बड़ी विद्या-बुद्धि प्राप्त करनेपर भी प्रज्ञानेन एनं न आप्नुयात्।

इससे चार बातें निकलीं। श्रीशङ्कराचार्यने इसका संग्रह इन शब्दोंमें कर दिया है :

यस्तु दुश्चरितात् विरत इन्द्रियलौल्याच्च समाहितचित्तः समाधानफलादपि उपशान्तमानसश्च आचार्यवान् प्रज्ञानेन यथोक्तम् आत्मानं प्राप्नोतीत्यर्थः।

इसका अर्थ है—पापकर्मसे उपरत होकर, इन्द्रियोंकी चंचलता छोड़कर, चित्तको एकाग्र कर, एकाग्रताके फलका भी परित्याग कर आचार्यवान् पुरुष 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यजन्य ज्ञान प्राप्त करता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection Vardhman Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एकाग्रताका फल लौकिक-पारलौकिक दोनों हैं! स्वर्गलोक और पितरलोक, आकाशमें उड़नेकी सिद्धि, पानीपर चलनेकी सिद्धि, देवताके दर्शन, दूसरेके मनकी बात जान लेना, दूरतक देख लेना, दूरकी सुन लेना—ये सब एकाग्रताके फल हैं।

आचार्यवान् : जिज्ञासुका कोई गुरु हो, वह निगुरा न हो। क्योंकि प्रत्यक्चैतन्याभिन्न ब्रह्म बुद्धिकी सँडसीमें नहीं पकड़ा जाता।

बुद्धिकी सँडसी, खुर्दबीन, दूरबीन लेकर जो जीव-जगत् और ईश्वरकी खोज कर रहा है, वह कौन है? गुरुने कहा : 'तू जिसे ढूँढ़ रहा है वही है। जो तुझे पहाड़के भीतर मिलेगा, वही तेरी बुद्धिके भीतर है। सम्पूर्ण पंचभूतके-सृष्टिके परे तुझे जो मिलेगा, वही तेरी बुद्धिके परे बैठकर तुझे देख रहा है वह तू ही है।

आचार्यवान् पुरुषः प्राप। इन्द्रियोंकी चंचलता, यानी विषय-लोलुपता, चित्तकी विक्षिप्तता और चित्तकी एकाग्रताके फलका परित्यागकर सद्गुरुकी शरण लें तब अपनी विद्या-बुद्धिमें भासमान जिसका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, वह 'ब्रह्म तुम स्वयं हो'—ऐसा बोध होता है। शीशेमें कौन देख रहा है? बच्चेको बताना पड़ता है कि शीशेमें तुम ही देख रहे हो। नहीं तो परछाईं देखकर बच्चा रोता है। चिड़िया, पशु अपनी परछाईं शीशेमें, पानीमें देखकर लड़ते हैं। इस अन्तःकरणके शीशेमें तुम्हारी परछाईं दीख रही है। जीव-जगत्-ईश्वरसहित यह दृश्यमान प्रपंच तुम्हारी परछाईं है। वस्तुतः तुम्हारे अतिरिक्त कोई नहीं है। प्रज्ञा द्वारा आचार्यवान् पुरुषको महावाक्यजन्य यह ब्रह्म-ज्ञान होता है। सब आचार्यवान् पुरुषको ज्ञान क्यों नहीं होता? ज्ञान होनेके लिए आचार्यवान् होनेके साथ-साथ ये उपर्युक्त चारों बातें भी आवश्यक हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२५. अधिकारी द्वारा परमात्म-प्राप्ति

संगति :

तेइसवें मन्त्रमें समझाया गया कि केवल प्रशिक्षणसे आत्माकी उपलब्धि नहीं होती। अपने आपका अप्राप्त होना अज्ञान है। केवल न समझनेसे ही वह अप्राप्त है, ज्ञान ही आत्मलाभ है। उसको किसी क्रिया, भावना, ध्यान या स्थिति द्वारा पाना नहीं है। वह तो नित्य-प्राप्त ही है। अप्राप्तिके भ्रमकी ज्ञान द्वारा निवृत्ति ही इष्ट है।

न मेधया न बहुना श्रुतेन।

बाहरकी वस्तुके बारेमें अन्वय-व्यतिरेकसे बुद्धि विचार करती है। मिट्टीसे घड़ा बनता है, यह अन्वय है। घड़ा फूटकर भी मिट्टीमें मिलता है, यह व्यतिरेक है। इस प्रकार कार्य कारण-भावका जहाँ भी ग्रहण होता है, वहाँ बुद्धि काम करती है, अन्यथा नहीं। चाहे मेधा कितनी ही प्रबल हो, बहुत श्रवण करके भी आत्माकी उपलब्धि या साक्षात्कार नहीं होता; क्योंकि जो तुम खुद हो, उसके बारेमें कहानी सुन-सुनकर क्या निश्चय करोगे?

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः।

एक पतिव्रता स्त्रीके लिए भले ही उसका पति दूरसे आ रहा हो, जबतक वह पराया मालूम पड़े, वह प्रेमकी नज़रसे देखनेलायक नहीं है। इसी प्रकार यह आत्मदेव हैं तो अद्वितीय पर जबतक वे अनात्मवस्तुके रूपमें भासते हैं, पराये हैं, वरण करने योग्य नहीं हैं। आत्मदेव देखते हैं कि 'जबतक मैं झूठ-मूठ ही अन्य होकर भास रहा हूँ, तबतक यह हमको नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Vaipramesh Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहता है यह मेरा कितना सच्चा प्रेमी है।' ऐसी प्रीतिका नाम है आत्मवरण।

ऐसे वरणसे आत्माका साक्षात्कार होता है। 'ऐसा वरण करनेवाला अपने आत्माके रूपमें परमात्माका साक्षात्कार करता है', ऐसा मुण्डकोपनिषद्में इसका अर्थ किया गया है।

ब्रह्मसूत्रमें जहाँ इस मन्त्रपर विचार आया है, श्रीशङ्कराचार्यने कई प्रकारसे इस बातको समझाया है : 'वरण द्वारा प्राप्त होना अर्थात् आत्मैक्यानुसन्धान द्वारा प्राप्त होना। वरण करनेवाले द्वारा अपने अभेद रूपसे प्राप्त होना अर्थात् आत्मा और ब्रह्मकी एकताका अनुसन्धान होना। यह कैसे होता है?

भीतर तो परमात्मा अन्तर्यामी नित्यप्राप्त ईश्वर है। वेदान्तीके मतमें भी ईश्वर होता है। कच्चे-नये वेदान्ती इस बातको नहीं समझते। जिसके मतमें हाथ-पाँव, आँख-नाक, दिल-दिमाग़, धरती-सूर्य-चन्द्रमा हैं, इनका अन्तर्यामी संचालक मायोपाधिक ईश्वर है। उस शक्तिशाली, मायाविशिष्ट, प्रभावशाली ईश्वर—जिसकी शक्तिसे सूर्य, समुद्र, धरती अपने स्थानपर टिके हैं, वह सर्वान्तर्यामी ईश्वर हमारे हृदयमें भी है, नित्य-प्राप्त है। उसके प्रसादका अर्थ है, वह हमें भीतर बैठकर वैराग्य, जिज्ञासा, मुमुक्षाका दान करे। हम उसकी आराधना करेंगे तो वह हमें देनेके लिए अवश्य बाध्य होगा; क्योंकि जब हम अन्तर्यामी ईश्वरका ध्यान करेंगे, उसे प्रेम करेंगे तो बाहरके विषयोंका ध्यान टूटेगा। उनसे हमारा राग छूटेगा। हमें वे दुःखस्वरूप मालूम पड़ेंगे। यह उसकी उपस्थिति-भक्तिका प्रसाद है, फल है कि हमें सच्चे पदार्थके लिए जिज्ञासा होगी। गुरु आकर कहता है कि 'तत्त्वमसि'—तू वही है, तब वह जिज्ञासु परमात्माको प्राप्त कर सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitization Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'एष परमात्मा यमेव वृणते'—जिस साधकको परमात्मा पसन्द करता है—'यह हमको मिलें' वही उसको पा सकता है। नहीं तो उसे छिपनेकी इतनी जगह है कि कोई उसे ढूंढ नहीं सकता।

श्रीमद्भागवतका प्रसंग है! हिरण्यकशिपुको क्रोध आया तो वह बोला : 'हमको कहीं ईश्वर मिले तो हम उसको जरूर मारेंगे।' वह हाथमें गदा लेकर उसे ढूँढने निकला। आप निश्चय समझो, यदि उसे ईश्वर मिल जाता तो भले वह ईश्वरको मार न सकता, मटियामेट अवश्य कर देता। किन्तु ईश्वर हिरण्यकशिपुको मिला नहीं, क्योंकि उसके अहमर्थमें वह 'मैं'-में छिप गया।

ईश्वर कहां छिपा है? तुममें ही कोई इन्द्र, विरोचन, प्रह्लाद, हिरण्यकशिपु होता है। सोनेमें प्रेम करनेवाला हिरण्यकशिपु है। स्वत्वकी बलि देनेको तैयार बलि था, तो दूसरोंको दुःख देनेवाला बाण। हिरण्यकशिपुसे बाण तकमें प्रह्लाद और बलि भगवान्‌के भक्त हुए। पसन्द करें कि यह लड़की ईश्वरसे ब्याहने लायक है उसीके द्वारा परमेश्वर मिलता है।

तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।

यह आत्मा ही उसकी वस्तु माने सर्वस्व है। चाहे गुरुकृपा हो या ईश्वरकृपा, चाहे साधकका आत्मवरण हो, आत्मतत्त्वका सर्वाधिष्ठान, सर्वावभासक, स्वयंप्रकाश परमात्माके साथ ऐक्यानुसन्धान ही अज्ञानकी निवृत्तिका उपाय है। एक सौ आठ उपनिषद चाहे कंठस्थ हों, पर आत्मज्ञान न हो, ऐसे विद्वान् हैं।

पुराणोंमें शक्तिमान् ईश्वरका वर्णन प्रधान रूपसे है और निर्विशेष अद्वितीय ब्रह्मका वर्णन संकेत रूपसे है। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य और सुरेश्वराचार्यजीका वार्तिक वेदान्तकी पराकाष्ठा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vamanesh Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। त्रिपुरारहस्यमें वेदान्त दूसरे ढंगका है। तुलसीदासके रामायणकी तरह श्रीमद्भागवतमें वेदान्त समझनेके लिए थोड़ी बुद्धि चाहिए, भक्तिके लिए नहीं। खण्डन-खण्ड-खाद्य वेदान्तका अच्छा ग्रन्थ है। बड़े-बड़े विद्वानोंके लिए भी उसकी टीका करना दुष्कर कार्य है। 'व्याप्यतावच्छेदक, धर्मावच्छिन्न' जैसे शब्दोंके हिन्दीमें वे ही मूल पर्याय दिये जाते हैं। श्री चण्डीप्रसाद शुक्लजी खुर्जाके बड़े विद्वान् थे और काशीमें प्रिन्सिपल हुए, उन्होंने इसपर हिन्दीमें टीका लिखी है। एकबार वे श्रीउड़ियाबाबाजीके पास आये। बाबाने पूछा: "पण्डितजी, आपने जब इसकी टीका कर दी तो आप अपना अनुभव सुनाइये!'

ये काशीके चोटीके पण्डित थे। हाथ जोड़कर बोले: 'हम तो गृहस्थीमें फँसे जीव हैं। हम क्या आपको अनुभव सुनायें? अनुभव आपकी चीज है। हम तो केवल अध्ययन-अध्यापन द्वारा शास्त्रकी रक्षा करते हैं।'

प्रज्ञानेन आत्मानं न आप्नुयात्। केवल पढ़-लिखकर परमात्माका साक्षात्कार नहीं हो सकता।

गंगा-किनारे श्री विश्वेश्वराश्रमजी महाराज नामके एक दण्डीस्वामी रहते थे। श्री करपात्रीजी महाराजने ब्रह्मचर्यावस्थामें, गृहस्थाश्रमावस्थामें और दण्डीस्वामी होनेके बाद भी इनसे विद्याध्ययन किया था। वे पण्डितोंमें इनके लिए बोलते थे: 'षड्दर्शनोंके ये आचार्य हैं।' उनकी जिह्वापर छहों दर्शन नृत्य करते थे: अमुष्य विद्या रसनाग्रवर्तिनी। पण्डित जीवनदत्तजी ब्रह्मचारी इन्हींके पास रहते थे। किसीने इनसे पूछा कि: 'आपको ब्रह्मज्ञान हुआ या नहीं?' वे बोले: 'हम तो शास्त्रोंकी रक्षा करते हैं कि कहीं ये लुप्त न हो जायँ। हम न्याय, वैशेषिक, मीमांसा,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Digitization eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वेदान्त, सांख्य पढ़ा देंगे। ग्रन्थ-ग्रन्थियाँ खोल देंगे।' इतने बड़े पण्डित कि ग्रन्थ-ग्रन्थियाँ खोल देते हैं, पर अविद्या-ग्रन्थि नहीं खोल पाते। इसका कारण क्या है?

यह मन्त्र कहता है : प्रज्ञानेन आत्मानं न आप्नुयात्। जप-ध्यान, पूजा, साधन-भजन करनेसे शरीरमें दिव्यरस उत्पन्न होता है। उपनिषदोंमें वर्णन आता है : 'साधकके शरीरमें-से दिव्य गन्ध निकलती है। आवाजमें मिठास आती है, वर्णमें निखार आता है। परन्तु सारा भजनरस, ध्यानरस, सत्कर्मरस जो इकट्ठा होता है, वह इन्द्रियोंमें लौल्यता आनेपर छेदवाले घड़ेसे बह जानेवाले पानीकी भाँति इन्द्रिय-द्वारसे बह जाता है। उससे उत्पन्न होनेवाली उस विद्युत्-शक्तिका निर्माण नहीं होता, जो चित्तवृत्तिको उठाकर परमात्माके साथ जोड़ती है।

व्यापारीको भोगासक्ति नहीं, अर्थासक्ति होती है, जिसके कारण वह अनेक संकटोंको झेलता है। किसी-किसीको भोगासक्ति और अर्थासक्ति दोनों नहीं होती, कर्मासक्ति होती है। कर्मासक्तिवाला किसी-न-किसी खटपट-आन्दोलनमें उलझा रहेगा।

हमने बचपनमें एक किताब पढ़ी थी। १७-१८ वर्षकी वयमें एक साधुने हमें वह दी थी। उसमें लिखा है : 'संघटन चाहे कितना भी पवित्र क्यों न हो, दस आदमीका मनस्तर कभी एक-सा नहीं रहता। इसलिए संघटनमें सांसारिकता आ जाती है और वह संघटन भ्रष्ट हो जाता है। चाहे वह कितना बड़ा हो, अन्तमें विनाश ही उसका परिणाम होता है।'

आध्यात्मिकताके मार्गपर एक साथ दस आदमी लगातार बराबर-बराबर चलें तो कोई निर्गुण-निराकारका ध्यान करेगा, कोई सगुण-साकारका ध्यान करेगा, कोई योग साधेगा तो कोई

RajGuru Math, Shivalaya, Guru Math Collection, Varanasi. Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञान-प्राप्तिमें लगेगा। सबकी रुचि और वृत्ति अलग-अलग होती है! यह बड़ा विलक्षण मार्ग है। इन्द्रियलोलुपता और मनमें वासना हो और मन एकाग्र किया जाय तो उसका फल होता है देवताका दर्शन—देवताके लोकमें गमन होता है।

दूरदर्शन, दूरश्रवण आदि सिद्धियाँ हमेशा नहीं रहती। अभिमान करते ही ये छूट जाती हैं। आत्माकी प्राप्तिके मार्गमें ये विघ्न हैं। कहीं भी परिच्छिन्न, विनाशशील अनात्मपदार्थमें रुचि बनी रहेगी तो आत्मवस्तुका दर्शन नहीं होगा।

तुम्हें आचार्य मिला या नहीं? आचार्यकी भी यह कसौटी है कि वह स्वयं ब्रह्मको जानता हो और तुम्हें ब्रह्म लखा दे। जो बेटा दिला दे, रोग मिटा दे, मुकदमेमें जीत करा दे, वह संसारका आचार्य है; क्योंकि वह तो डॉक्टर-वकीलके बराबर हुआ। जो आत्मदान करता है, वही सद्गुरु होता है। हमारे 'मैं'को ब्रह्म बनाना है और हमारा मैं हमारी बुद्धिका विषय होता नहीं। सामनेवाला कह दे कि तुम ही ब्रह्म हो, तो संशय-विपर्ययरहित ज्ञान हो जाय। परन्तु बुद्धिमें सन्देह हो तो चेला गुरुकी परीक्षा लेने चला जायगा।

एक चेला गुरुकी परीक्षा लेने गया। गुरु समझ गया तो बोला: 'बेटा, हमारी परीक्षा तुम बादमें लेना, तुम्हारे चित्तमें अभी हमारे प्रति संशय है, तभी न हमारी परीक्षा लेने आये हो? जाओ, तुम हमारी परीक्षामें फेल हो गये। हमें बादमें फेल करते रहना।'

अनात्मपदार्थ संसार खोज करने लायक नहीं है। आत्मपदार्थ ही खोज करने लायक है कि 'मैं कौन हूँ?' परमात्मा मैंके साथ बैठा हुआ है। रामानुज-सम्प्रदायके भक्त लोग मानते हैं कि 'हमारा मैं बाहर है, परमात्मा भीतर है। शरीर जीवका है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके भीतर अहमर्थ जीव है और जीवके भीतर परमात्मा अर्थात् परमात्माका शरीर जीव है।'

भक्ति-सम्प्रदायमें ईश्वर कहाँ है? शरीरमें जीव है, जीवमें परमात्मा है तो 'मैं'के पास पहुँचनेपर परमात्माके पास पहुँच जाओगे। वेदान्ती कहता है: 'इस सारे संसार और बुद्धिको चलानेवाला नियन्ता ईश्वर है।' जरा बाहरकी ओर सबका संचालन करता हुआ और जरा-सा पीछेको हटकर द्रष्टा बनकर वह जगत्-ईश्वर दोनोंको देख रहा है। उसकी दृष्टिमें ही जगत् और ईश्वर दोनों हैं। जीव, ईश्वर और सृष्टि तीनों दृष्टिमात्र हैं और दृङ्मात्र वस्तु आत्म-तत्त्व है। परन्तु दोनोंमें भले ही सामनेकी ओर ईश्वर और पीछेकी ओर जीव हो या सामनेकी ओर जीव और पीछेकी ओर ईश्वर द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया—दोनों रहते एक साथ हैं। इसलिए परमात्माकी प्राप्तिमें अन्तर्मुख होना आवश्यक है। पहले हमारी हिन्दू-संस्कृतिमें जब 'अष्टवर्षा भवेत् गौरी'की विवाह-प्रणाली थी तब पिता लड़कीका हाथ अपने हाथमें लेकर वरके हाथमें समर्पित करता था।

वासनाकी पूर्तिके लिए अपनी पसन्दका ब्याह हो, यह एक बात है और वासनाको कायदेमें करके अन्तमें निवृत्त करनेके लिए ब्याह करना यह दूसरी चीज है। धर्मविवाह और भोगविवाह एक नहीं हैं।

अपने यहाँ पहले यह रीति थी कि आचार्य जीवका हाथ पकड़-कर ईश्वरके हाथमें दे दे। यदि जीव नाबालिग हो, यानी श्रद्धालु, भोलाभाला, विश्वासी, सरल, माँ-बापकी तरह आचार्यपर विश्वास करनेवाला हो, तो आचार्य उसका हाथ लेकर ईश्वरके हाथमें दे दे! शरणागति तो तत्क्षण लाभ देनेवाली है। आचार्य हाथ दे तो उसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

समय ईश्वरकी स्वीकृति हो जाती है। वेदान्ती आठ-नौ वर्षकी लड़की तो है नहीं। वह तो बीस-पचीस वर्षकी धींगरी है। वह कहता है कि 'माँ-बापकी या आचार्यकी कोई आवश्यकता नहीं।' 'तुम्हीं ढूँढो।' यदि दूसरेको ढूँढ़ना होता तो जरूर ढूँढ़ लेते।

जो स्वयं पिता, पति, पुत्र है वह तो स्वयं है। अपना स्वरूप ही अद्वैत है। वहाँ वह यन्त्रका विषय कैसे हो? सर्वका निषेध कर देनेपर जो स्वयं रहता है, उसे लखानेके लिए आचार्यकी आवश्यकता है। इसका विज्ञान ही ऐसा है। किसी-किसीकी बुद्धि ऐसी होती है, जो दुर्लभकी प्राप्तिका आग्रह रखती है; सुलभमें रुचि नहीं रखती। कोई-कोई ऐसे बुजदिल होते हैं, जो दुर्लभकी बात सुनकर विमुख हो जाते हैं। इस झगड़ेको छोड़कर आप जरा अपनेको तौलो। धन और भोग पानेके लिए तो कठिन-से-कठिन साधन करेंगे, कारखाना खोलेंगे, परन्तु परमात्माकी प्राप्तिके लिए 'टें' बोल जायँगे। इसका तात्पर्य है कि परमात्मप्राप्तिके लिए चित्तमें उत्साह नहीं है। यदि उनको परमात्मप्राप्ति सरल बतायो जाय तो तुरन्त जाकर बैठ जायँ कि अब आता है परमात्मा। उनको बतायें कि यह बहुत कठिन कार्य है तो उठ जायँगे, माला फेंक देंगे। ऐसे लोगोंको ईश्वरकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

क इत्था वेद यत्र सः। परमात्मा बिलकुल इदमित्थम् रहता है यह कौन जानेगा? २५वें मन्त्रमें यह बात स्पष्ट की जा रही है। कोई भी पुरुष अनात्माका तिरस्कारकर आत्मज्ञानके लिए उन्मुख, विवेकी, वैराग्यवान्, शमदमादि-साधनसम्पन्न मुमुक्षु, जिज्ञासु इसे जान सकता है। वेदान्तियोंमें यह कहनेकी रिवाज़ है कि यदि कोई कहे: 'ईश्वर कृपा करेगा तब ज्ञान होगा' तो उसे जिज्ञासु नहीं मानते हैं; कहते हैं: 'अभी दर्द पैदा नहीं हुआ।'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vishwamitra Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्योंकि ईश्वर चार जन्म, दस जन्मतक कृपा न करे तो तबतक वह ज्ञानरूप रत्नको छोड़नेके लिए तैयार है। यह क्यों पर्देको नहीं फाड़ देता? क्यों नहीं अंधकारको विदीर्ण कर देता? भूखे शेरकी तरह अपने शिकारपर क्यों नहीं टूट पड़ता? देवताकी कृपाका अभिलाषी मन्द अधिकारी है। क्या कर्म करनेसे, कैसी उपासना और साधनासे परमात्माकी प्राप्ति होती है और वह कैसा परमात्मा है यह अब वर्णन किया जाता है।

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥२५॥

जिस आत्माके ब्राह्मण और क्षत्रिय, ये दोनों ओदन (भात) हैं तथा मृत्यु जिसका उपसेचन (शाकादि) है, वह जहाँ है, उसे कौन [अज्ञ पुरुष] इस प्रकार (उपर्युक्त साधनसम्पन्न अधिकारीके समान) जान सकता है? ॥ २५ ॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों उसके ओदन हैं उनमें रहनेवाली मौत उपसेचन यानी चटनी, मट्ठा और घी है। परमात्मा ऐसा है कि उसमें प्रज्ञाशक्ति-प्रधान ब्राह्मण और प्राणशक्तिप्रधान क्षत्रिय दोनोंका अत्यन्ताभाव है।

हम लोग मानते हैं कि : अग्निसोमात्मकं जगत्। जगत्में केवल दो तत्त्व हैं—अग्नि और सोम। ऋणात्मक और धनात्मक शक्तिकी भाँति अग्निशक्ति सबको भस्म करती है और सोमशक्ति सबका आप्यायन करती है ब्रह्म यानी प्रज्ञा जो सोमात्मक है : सोमोऽस्माकं ब्रह्मणानां राजा। हम ब्राह्मणोंका राजा आप्यायन-शक्ति सोमप्रधान चन्द्र है। सृष्टिमें दो शक्तियाँ हैं : प्राण और रई। इन दोनोंका जो अत्ता है, जिसके सामने हम कुछ नहीं हैं, जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ब्राह्मण-क्षत्रिय दोनोंको मारनेवाला है, जहां दोनोंका अत्यन्ताभाव है, जिसमें न ऋणात्मक शक्ति है, न धनात्मक शक्ति जहां प्राण और प्रज्ञा दोनों नहीं हैं, वह परमात्मा है। ब्रह्म और क्षत्र, प्राण और प्रज्ञा दोनों उपाधि हैं। प्रज्ञाकी उपाधिसे चैतन्यको ब्राह्मण कहते हैं और प्राणकी उपाधिसे चैतन्यको क्षत्रिय।

न सोम है, न अग्नि है, न प्राण है, न रई है; जिसमें इनका अत्यन्ताभाव भी नहीं है, वह एकरस अखण्ड चैतन्य है। जैसे घट हो तो घटाभाव हो; घट हो न हो तो घटाभाव कैसा? वैसे यमराजने कहा : 'नचिकेता! जहां हम भी नहीं, तुम भी नहीं, जहाँ बड़े-बड़े राजा : महाराजा नहीं, जहाँ मृत्यु भी नहीं; भावाभाव दोनोंका अधिष्ठान, दोनोंसे अवच्छिन्न, दोनोंका प्रकाशक, जिसमें दोनों नितांत कल्पित हैं, उस परमात्माको कैसे जानोगे? सांस चलना बन्द होते ही मृत्युके समय बुद्धि समाप्त हो जाती है, वह मृत्यु भी वहाँ नहीं है।'

श्रीशंकराचार्यने तो यहां ब्रह्म-क्षत्रका अर्थ दिया है : सर्वधर्मविधारक, सर्वत्राणभूत और मृत्युको 'सर्वहर' बताया है। ब्रह्मसूत्रमें पहले अध्यायके दूसरे पादके नवें सूत्रमें इस मन्त्रपर विचार किया गया है :

अत्ता चराचरग्रहणात्।

ब्राह्मण-क्षत्रियको भातकी तरह खा जानेवाला, मृत्युको उपसेचन बनानेवाला कौन है? नचिकेताने एक बार कहा : 'निरूपण करो।' ब्रह्मण-क्षत्रियको खानेवाला वही अग्नि तो नहीं है? एक बार नचिकेताने प्रश्न किया : 'मृत्युके अनन्तर क्या रहता है, वह हमको बतायें।'

अस्तीत्येके नायमस्तीत्येके।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vipin Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह जीवविषयक प्रश्न है। यह जीव ही है जो ब्राह्मण-क्षत्रियको खा जाता है?

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद॥

इस मन्त्रमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और मृत्यु तीनोंका भोक्ता जिसे बताया गया है, वह कौन है? अग्नि, जीव या परमात्मा? यहाँ अधिकरणकी चर्चा है। आचार्यने प्रश्न तो उठाया, पर निरूपण नहीं किया; क्योंकि इसका प्रकरण नहीं है। यहाँ अग्नि संबंधी क्या चर्चा है।

यहाँ परमात्माकी प्राप्तिकी चर्चा हैं। जीवकी चर्चा हो कि जीवकी प्राप्ति कैसे होती है? खानेवाला भोक्ता जीव होता है, न खानेवाला अभोक्ता ईश्वर होता है।

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके, छाया तपौ ब्रह्मविदो वदन्ति। ऐसा आगे वर्णन आया। यहाँ तो परमात्माका ही वर्णन है। भोक्ताफलका निषेध, कर्मफलका निषेध है। जीव कर्मफलका भोक्ता है, परमात्मा नहीं। वैसे हो जीवमें पापकर्म और पुण्यकर्मका भ्रम कर्तापनके अभिमानके कारण है, जो फलदाता है। चेतनमें फल लेने-देनेकी योग्यता नहीं है। परन्तु चैतन्य अपनेको भूलकर कर्तासे तादात्म्यापन्न हो अभिमानवश कर्ता मान लेता है और भोक्ता बनता है। परमात्माको तो कभी कर्तापनका अभिमान होता ही नहीं। कर्मका फल परमात्माका या तत्त्वज्ञानीका स्पर्श नहीं करता। वह तो भ्रान्त अज्ञानीको स्पर्श करता है। ज्ञानी जानता है कि नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मासे कर्मके फलका कोई सम्बन्ध नहीं!

सारी श्रुतियोंमें वर्णित है कि जगत्की सृष्टि-स्थिति और प्रलय परमात्माके आयाससे ही होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi. Collection Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति।

सृष्टि-संहार दोनोंका कारण ईश्वर है। यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रियका अर्थ है सारी चराचर सृष्टि। परमात्मा सारी सृष्टिको और उसके भोजनको भी खा जाता है। उसमें भाव और भावाभाव दोनों नहीं हैं, इसलिए यह जीवका नहीं, परमात्माका वर्णन है। वह अग्नि-सोमात्मक जगत्‌का, ब्राह्मण-क्षत्रिय जगत्‌का, रई-प्राणात्मक जगत्‌का अधिष्ठान है। अधिष्ठानके साथ वह सत्य है, स्वयंप्रकाश, सर्वविभासक, स्वतःसिद्ध सर्वका प्रकाशक है।

क इत्था वेद यत्र सः। कौन जानेगा कि वह परमात्मा कहाँ है? अभी है, यहीं है, यही है; भूलमें ही भटक रहे हैं। भूलो मत। इसमें संशय क्या है? पूर्वपक्ष कहता है: इसमें भोक्ता जीवका वर्णन है, उत्तर पक्ष कहता है: इसमें भोक्ता जीवका वर्णन नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण चराचरके भोक्ता, ईश्वरका वर्णन है। इससे सिद्धान्त यह निकला कि परब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि, स्थिति, प्रलयके भाव और अभावसे उपलक्षित अपना प्रत्यक्‌चैतन्य ही है।

विचार करनेकी पद्धतिमें ये पाँच बातें रहती हैं: (१) विषय (वचन), (२) संशय, (३) पूर्वपक्ष, (४) उत्तरपक्ष, (५) दोनोंकी तुलना करके सिद्धान्तरूपमें निष्कर्ष। इन पाँच बातोंसे 'अधिकरण'की रचना होती है। ब्रह्मसूत्रमें भोक्ताधिकरणमें इस श्रुतिकी चर्चा है: अत्ता चराचरग्रहणात्।

इस मन्त्रका अभिप्राय है—'साधन-सम्पन्न होकर सद्‌गुरुकी शरण ग्रहण कर वेदार्थ-विचार करनेपर परमात्माका बोध होगा। संशयसे ग्रस्त, अभिमानसे पीड़ित, संस्काराक्रान्त विषयवासनासे वासित अन्तःकरण द्वारा विचार करनेसे इसका पता नहीं चलेगा। ●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Digitized by Shrimati Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Vairagya Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection, Equipment Heritage Foundation, Jalgaon